हमारा कलंक

[अस्पृश्यता-निवारण पर महात्माजी के लेखों का संग्रह]

महात्मा गाँधी

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-मण्डल,

अजमेर।

दो शब्द

अस्पृश्यता का जन्म कब और कैसे हुआ। इसका सच्चा अन्दाज लगाना तो असम्भव ही है; किन्तु इसका अन्त अब निकट है यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है और इसका अंतिम संस्कार गाँधीजी के हाथ से होगा यह भी स्पष्ट है।

अछूत को क्या-क्या कष्ट है यह अछूत ही जान सकता है। बिना अछूत बने इन दुःखों का अनुभव भी सुगम नहीं।

जाके पाँव न भई बियाई।
सो का जाने पीर पराई॥

किन्तु गाँधीजी पूज्य होते हुए भी न केवल त्यक्तों के कष्टों को जानते ही हैं, उनके दुःखों का स्वयं अनुभव भी करते हैं। "सर्वभूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि" सिद्धान्त के अनुरूप विचरनेवाले गाँधीजी के लिए यह कोई विशेष बात नहीं है।

अपने जीवन में गाँधीजी ने अछूतों के सम्बन्ध में, समय-समय पर, अपनी लेखिनी और वाणी द्वारा जो कुछ लिखा और कहा, उसका यह एक मुट्ठी भर संग्रह है।

संग्रह अमूल्य है और इसके पढ़ने एवं सुननेवालों ने यदि अस्पृश्यता-निवारण में किञ्चित् भी सहायता की तो संग्रहकर्ता का प्रयास सफल होगा। गाँधीजी के विचारों के लिए भूमिका लिखना यह मेरे लिए, धृष्टता है। सूर्य को दीपक क्या दिखाया जाय!

"क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।"

और गाँधीजी के विचारों के सामने मेरे इन दो शब्दों को पढ़ेगा भी कौन? किन्तु

"मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।"

यदि सुई के साथ-साथ धागा भी मणि को वेध सकता है तो क्या आश्चर्य है कि गाँधीजी के विचारों के साथ-साथ मेरे दो शब्द भी निभ जाएँ। जो हो इनके लिखने में मुझे तो सुख मिला ही है।

घनश्यामदास बिरला

प्रकाशक का वक्तव्य

हमें हर्ष होता है कि आज हम महात्माजी के हृदय का सब से उज्ज्वल पक्ष, उनके अस्पृश्यता-सम्बन्धी लेखों के संग्रह के रूप में, हिन्दी पाठकों को भेंट कर रहे हैं। इसमें केवल साहित्य-सेवा हमारा लक्ष्य नहीं है; इस दृष्टि से हम इसे जनता के सामने रख भी नहीं रहे हैं। विचार के लिए, तथा महात्माजी के विचारों के अनुसार काम हो, इस दृष्टि से इसे जनता के सामने हम रख रहे हैं। जिसमें हिन्दू-समाज, अस्पृश्यता के अमानुषी पाप से मुक्त होकर फिर संसार को 'आत्मवत् सर्व-भूतेषु' का दिव्य संदेश दे सके, जिसमें भाई का भाई के प्रति तिरस्कार और उपेक्षा का भाव दूर हो और हम हरिजनों की सेवा के महत्व को समझ सकें, इस दृष्टि से ही हम यह संग्रह हिन्दी-भाषी जनता के सामने रख रहे हैं।

इसके अधिकांश लेख हिन्दी-नवजीवन तथा गुजराती पुस्तक 'हिन्दूधर्म नी कसौटी' से लिये गये हैं। दोनों की प्रामाणिकता में संदेह नहीं। दो-एक लेख 'गाँधी-शिक्षण' ('धर्म'-भाग) से भी अनुवादित किये गये हैं। अनुवाद-योग्य लेखों का समय

पर अनुवाद कर देने के लिए मण्डल श्री शंकरलाल वर्मा का कृतज्ञ है।

महात्माजी का प्रायोपवेशन का निश्चय जैसे आकस्मिक रूप में हमारे सामने आया वैसे ही हमें इस पुस्तक की एकाएक आवश्यकता का अनुभव हुआ था पर कई आवश्यक कठिनाइयों के कारण पुस्तक के प्रकाशन में कुछ देर हो गई। एक प्रकार से इस देर से लाभ ही हुआ है। क्योंकि इससे हमें महात्माजी द्वारा दिये गये हाल के आठों वक्तव्यों को भी पुस्तक में समावेश करने का अवसर मिल गया। इस दृष्टि से पुस्तक, जहाँ तक हो सका है, 'अप-टू-डेट' हो गई है।

पू० महात्माजी ने अधिक महत्वपूर्ण कार्यों में अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी समय निकाल कर 'यरवदा मन्दिर' से इस विनम्र-प्रयास पर जो आशीर्वाद भेजा है उसके लिए उनके प्रति शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करना असम्भव है।

पाठक देखेंगे कि पुस्तक का मूल्य भी बहुत कम—लगभग लागत ही रखा गया है। यह इसलिए कि महात्माजी की दिव्यवाणी का प्रचार अधिक से अधिक भाई-बहनों में हो सके और उनका सन्देश घर-घर पहुँचे।

—मन्त्री

सम्पादकीय

वसे तो अस्पृश्यता-निवारण का प्रश्न वर्षों से देश के सामने है।
न्तु महात्मा गाँधी के उपवास के कारण इस समय यह जितना व्यापक
गया है, उतना पहले कभी नहीं हुआ था, अवश्य ही महात्माजी का
ह उपवास सीधे अस्पृश्यता-निवारण अथवा छुआछूत को मिटाने के
म्बन्ध में नहीं था, जैसा कि सब जानते हैं, इसका तात्कालिक उद्देश्य
प्रधान मन्त्री के अछूतों के पृथक् चुनाव के निर्णय में परिवर्तन कराना
न्तु कोई भी सत्ता लोकमत के दबाव के बिना अपने किसी निर्णय को
दलने के लिए तैयार नहीं होती। उस लोकमत के तैयार करने में इस
पवास ने जादू का-सा असर किया। २६ सितम्बर तक केवल सात दिन
क उपवास रहा किन्तु इतने थोड़े-से समय में ही वह व्यापक लोकमत
ागृत हुआ कि अन्त में प्रधान मन्त्री को निर्णय बदलने को बाध्य
ना पड़ा।

यह लोकमत तात्कालिक उद्देश्य सिद्ध हो जाने पर अब मूल प्रश्न
स्पृश्यता निवारण की ओर झुक पड़ा। इसका एक कारण महात्माजी
ी वह चेतावनी भी है,जो उन्होंने अपना उपवास समाप्त करते हुए दी थी
ौर जिसे अब उन्होंने और भी स्पष्ट कर दिया है,कि हिन्दू-जाति को इतने
र ही सन्तोष न मान लेना चाहिए; उसका कर्त्तव्य इतने पर ही समाप्त
हीं हो जाता; उसे अपने सिर से अस्पृश्यता के इस कलंक को सदैव
लिए धो डालना है; यदि उसने ऐसा न किया और यह कलङ्क फिर
ी बना रहा तो वे इसके लिए फिर आमरण उपवास का निश्चय कर
कते हैं। जानने वाले जानते हैं कि महात्माजी की यह निरी धमकी नहीं
। वे कभी थोथी धमकी नहीं देते। वे जिस बात को जैसा अनुभव करते
वैसा ही कहते हैं। और इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि यदि हिन्दू-
माज अब भी अपने अज्ञान को दूर न कर अपने सिरसे इस कलङ्क को
ोने में शिथिल रहा तो उन्हें फिर वह भीषण संकल्प करना पड़े।

जैसा कि भारत मन्त्री के नाम लिखे पत्र में महात्माजी ने लिखा है, अछूतजातियों का प्रश्न उनके लिए साधारण प्रश्न नहीं है। बचपन से ही इस प्रश्न पर उनकी पूरी दिलचस्पी रही है, और एक से अधिक अवसरों पर उनके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व लगा दिया है। यही कारण है कि सन् १९२० के महासभा के प्रस्ताव और सन् १९२१ के अपने देश-व्यापी असहयोग-आन्दोलन में उन्होंने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए जो मुख्य चार शर्तें रक्खी थीं, उनमें एक प्रधान शर्त देश को अस्पृश्यता अर्थात् छुआ-छूत के इस कलङ्क से मुक्त करने की थी। देश के अनेक राजनीतिज्ञों ने इस सर्वथा सामाजिक प्रश्न को इस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश कराने का विरोध किया। किन्तु दूर-दर्शी महात्मा गाँधी के लिए यह प्रश्न उतना ही महत्त्वपूर्ण था, जितना कि स्वयं स्वराज्य और इसलिए उन्होंने इसे महासभा–कांग्रेस–के मुख्य प्रोग्राम में सम्मिलित कराके ही छोड़ा और तब से, जब तक वे जेल की चहारदीवारी में बन्द नहीं कर दिये गये, शायद ही कोई ऐसा प्लेटफार्म या सभामञ्च बचा होगा, जिस पर उन्होंने इसकी चर्चा न की हो। और इसीलिए लन्दन की गोलमेज सभा में जब उन्होंने इन अछूतों को हिन्दू-जाति से अलग किये जाते देखा, तो इसमें उनकी अपरिमित हानि देखकर वहाँ स्पष्ट शब्दों में यह चेतावनी देदी कि उनके इस प्रकार अलग किये जाने की योजना का विरोध करने वाला यदि मैं अकेला भी रहा तो भी अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर इसका विरोध करूँगा। और आज सारा संसार जानता है कि अवसर आने पर किस प्रकार सचमुच उन्होंने अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर उसका विरोध किया। उनका वह प्रण पूरा हुआ; और इस बार उनके प्राणों की रक्षा हो गई। किन्तु यदि हिन्दू समाज ने अपनी जड़ता दूर न की, उसकी शिथिलता एवं अज्ञान के कारण छुआछूत का यह अभिशाप दूर न हुआ और महात्माजी को फिर दूसरा उपवास करना पड़ा तो इस बार उनके प्राण बचना कठिन हो जायगा।

पर केवल महात्माजी के प्राण बचाने की दृष्टि से ही नहीं वरन् इसका पूर्ण विचार करके कि अस्पृश्यता पाप है और हमें इससे मुक्त होना है, हमारा धर्म है कि हम इस बात का पूरा ध्यान रक्खें कि हमारी ओर से अपने कर्त्तव्य-पालन में किसी प्रकार की शिथिलता न हो।

अवश्य ही धर्म ऐसी वस्तु है जिसके सामने हमें संसार के बड़े से बड़े प्रलोभन को ठुकरा देना चाहिए, अपनी आत्मा के सिवा संसार की बड़ी से बड़ी सत्ता के सामने भी सिर न झुकाना चाहिए। किन्तु छुआछूत का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। यदि हममें यह भ्रम, यह अज्ञान कि छुआ-छूत धर्म का एक अंग है, अब भी बना हुआ है, तो अब हमें उसे अपने हृदय से निकाल फेंकना चाहिए। यों तो इस अज्ञानपूर्ण ससार में धार्मिक कहे एवं समझे जाने वाले अगणित व्यक्ति होंगे किन्तु ऐसे लोग बहुत मुश्किल से मिलेंगे, जिन्होंने अपने जीवन को धर्ममय बनाया हो। यदि श्रुतिका 'नास्ति सत्यात्परो धर्म' तथा 'अहिंसा परमो धर्म' सत्य हैं, तो वर्त्तमान समय में तो महात्माजी से बढ़ कर क्रिया—धार्मिक कदाचित ही कोई दूसरा हो। अतः यदि उन्हें ज़रा भी इस बात का युक्तिसंगत प्रमाण मिलता कि वस्तुतः अस्पृश्यता धर्म-संगत है तो वे प्राण देकर भी उसकी रक्षा करते। महामना मालवीयजी का सनातन धर्म—प्रेम किससे छिपा हुआ है। उन जैसे कर्मनिष्ट ब्राह्मण आज कल के ज़माने में कदाचित अंगुलियों पर गिने जाने जितने ही मिलेंगे। वे कहते हैं – "कोई भी धर्म-शास्त्र अस्पृश्यता की आज्ञा नहीं देता। यदि अस्पृश्यता-निवारण धर्म के विरुद्ध बात होती तो कम से कम मैं महात्माजी की इच्छा के विरुद्ध जाकर भी इस आन्दोलन का विरोध करता। सहिष्णुता और दया हिन्दूधर्म का आधार स्तम्भ है।" यदि अस्पृश्यता धर्म का अंग होती तो गौराङ्ग महा-प्रभु, चैतन्य, बुद्ध भगवान आदि ने सहस्रों-लाखों अस्पृश्यों को अपने में न मिलाया होता; भगवान महावीर ने प्रेम की वर्षा न की होती गुरुनानक ने अमृत न चखाया होता। कोई धर्म ऐसा नहीं है जो अपने भाइयों से घृणा

करना सिखाता हो फिर हिन्दू भाई तो, विउँटो ही नहीं सर्प-जैसे विषधर प्राणी और बड़-पीपल एवं पर्वत-नदी आदि जड़ पदार्थ तक को पूज्य दृष्टि से देखने वाले, उनकी पूजा करने वाले हैं। उनके धर्म में अपने ही भाई से घृणा करने की बात को स्थान मिल ही कैसे सकता है? यदि अछूतपन का धर्म से सम्बन्ध होता, तो मर्याद पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र जिन्होंने मनुष्यों के सामने धर्म की मर्यादा रखने के लिए ही अवतार लिया था, शबरी के जूठे बेर किस प्रकार खाते, और किस प्रकार गीता का उपदेश करने वाले भगवान् कृष्ण विदुरजी के घर का शाक ग्रहण करते? आप कहते हैं मन्दिरों में अछूतों के आजाने से मन्दिर अपवित्र हो जाते हैं। लेकिन क्या आपने कभी यह भी सोचा है जिस भगवान के दर्शन करने से पापी पाप से मुक्त हो जाते हैं, वे भगवान् अपने भक्त अछूत के सामने आने से उस की परछाईं-मात्र से अपवित्र कैसे हो जायँगे?" ऐसा विचार करना भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता में अविश्वास करना है और इसलिए अपने मनमें नास्तिकता को स्थान देना है। यदि कोई डाक्टर या वैद्य किसी रोगी को उसके रोग की दवा दे और कहे कि इस औषधि में रोग को दूर करने की पूरी शक्ति है, इसके सेवन से रोग अवश्य दूर हो जायगा, किन्तु यदि तुमने इसे हाथ से छू लिया, या इस पर तुम्हारी परछाईं पड़ गई, तो यह दूषित अथवा अपवित्र हो जायगी और इसलिए इसकी रोग-नाशक शक्ति नष्ट हो जायगी, तो क्या आप उस डाक्टरय वैद्य की बुद्धि को सही-सलामत समझेंगे? यदि नहीं तो आप उस व्यक्ति की बुद्धि को सही सलामत कैसे कहेंगे, जो एक ओर तो कहता है कि भगवान् पतित-पावन हैं, और दूसरी ओर जब कोई पतित भगवान् के दर्शन करने आता है, तो यह कहकर अपने मन्दिर के द्वार बन्द कर लेता है कि इसके मन्दिर में आने से मन्दिर अपवित्र हो जायगा, भगवान् अपवित्र हो जायँगे!

फिर आज जिन मन्दिरों और कुओं को आप अछूतों के स्पर्श से

अपवित्र मानते हैं, उन्हें बनाया किसने ? क्या इनके लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि उच्च कहे जाने वाले वर्ग के लोग मज़दूर बन कर काम करने आये थे ? इन अछूतों के परिश्रम से ही तो ये सब बने हैं ? तब जिन वस्तुओं को उन्होंने स्वयं बनाया, बन चुकने पर, उनके छूने से वे अपवित्र कैसे हो जायँगी ? सारांश जहाँ तक बुद्धि, युक्ति एवं तर्क का सम्बन्ध है अस्पृश्यता अथवा अछूतपन का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। और इसलिए हमें चाहिए कि हमारे मन में अभी तक जो भ्रम घुसा हुआ है, उसे अब एकदम दूर करके अपने सदियों से अलग किये हुए अछूत भाइयों को गले लगावें।

इसका यह अर्थ नहीं है कि हम उनके साथ एक दम खान-पान अथवा विवाह-शादी का व्यवहार आरम्भ कर दें। यह बात तो आज ऊँची जाति के कहाने वाले हिन्दुओं में भी नहीं है। महात्माजी ने कभी इस बात पर ज़ोर नहीं दिया। यह तो आपके मन मानने की बात है। महात्माजी जो कुछ चाहते हैं, और इस समय जो सबसे अधिक आवश्यक है, वह तो केवल इतना ही है कि आप उन्हें छूने तक में जो घृणा मानते हैं, उन्हें मन्दिरों में नहीं आने देते, अपने कुओं से पानी नहीं भरने देते, अपने स्कूल-पाठशालाओं में उनके बालकों को नहीं पढ़ने देते; उनके रोग-शोक में उनकी औषधि एवं सेवा शुश्रूषा का सहारा नहीं देते, ये सब बातें, ये सब प्रतिबन्ध दूर कर दीजिए। उन्हें अपना भाई मानिए, उनके लिए अपने मन्दिरों के दरवाज़े खोल दीजिए कुओं पर पानी भरने और स्कूल-पाठशालाओं में उनके बालकों के पढ़ने की व्यवस्था कर दीजिए, रोग-शोक के अवसर पर उनके लिए औषधि आदि का उचित प्रबन्ध और सब सार्वजनिक स्थानों के उपयोग की उन्हें स्वतंत्रता दीजिए। बस यही उनकी मांग है। आप उनके मैलेपन की शिकायत कर सकते हैं। किन्तु इसमें भी मुख्य दोष हमारा ही है। हम उनसे काम तो इतना गन्दा लेते हैं, और मज़दूरी इतनी कम देते हैं कि उसमें उनका पेट भर

सकना ही कठिन है, फिर पहनने को अच्छे वस्त्र, और सफ़ाई के लिए तेल-साबुन कहाँ से लावें ?

इतने पर भी महात्माजी उनकी गन्दगी का समर्थन नहीं करते। एक ओर यदि वे आपसे अस्पृश्यता दूर करने के लिए कहते हैं, तो दूसरी ओर वे उन्हें भी स्वच्छता और सफ़ाई से रहने, और शराब एवं मांस आदि अखाद्य पदार्थों के न खाने आदि पर पूरा ज़ोर देते हैं। पर यह भी आप ही की सहायता पर अवलम्बित है । हमने ही उन्हें गिराया है, हम को ही उन्हें उठाना होगा । दुर्भाग्यवश हमारे समाज में अस्पृश्यता का यह विष जितनी गहराई से असर किये हुए है, सौभाग्य-वश महात्माजी का नाम भी उस में उतना ही व्यापकता से फैला हुआ है, और इसलिए उनके विचार इस विष को दूर करने में उतना ही जादू का-सा असर करेंगे । इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस पुस्तक का हिन्दी भाषाभिज्ञ जनता में घर-घर प्रचार हो। अवश्य ही इस विषय में यह सर्वांगपूर्ण नहीं कही जा सकती, किन्तु जब तक महात्माजी कोई दूसरी पुस्तक नहीं लिखते, तब तक इसी पर सन्तोष करना होगा, और इस दृष्टि से इसकी भी उपयोगिता कुछ कम नहीं है। पश्चिमी एवं यूरोपियन देशों के धनिक लोग विदेशों में अपने धर्म और सभ्यता का प्रचार करने के लिए प्रतिवर्ष लाखों रुपये व्यय करते हैं। बाइबिल आदि के प्रचार के लिए उनके मिशनरी प्रतिवर्ष लाखों रुपये की सहायता पाते हैं। ऐसी दशा में इस देश के धनी-मानी सज्जनों का कर्तव्य है कि वे भी ऐसे अवसरों पर ज़रा अपनी थैली का मुँह ढीला करें। और ऐसी उपयोगी पुस्तक की प्रतियाँ ख़रीद कर सैकड़ों-हज़ारों की तादाद में ग़रीब जनता में मुफ़्त बँटवावें। यदि उन्होंने इस पर ध्यान दिया, तो अस्पृश्यता-निवारण के कार्य में इससे बड़ी सहायता मिलेगी।

शंकरलाल वर्मा

निर्देशिका

परिशिष्ट

महात्मा गाँधी

[स्केचः कनू देसाई]

बापू के आशीर्वाद

"सस्ता-साहित्य-मण्डल का यह साहस स्तुत्य है। अस्पृश्यता निवारण के लिये जब प्रचण्ड हलचल हो रही है तब उस बारे में क्या और कैसे हो रहा है वह सब को जानना आवश्यक है। हम इस पाप को ज्ञान पूर्वक मिटाना चाहते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि हिन्दू जनता अस्पृश्यता क्या चीज़ है और इस बारे में हमारा क्या कर्तव्य है जान लेवे।"

यरवदा मन्दिर
ता० १६-११-३२

मोहनदास गांधी

हमारा कलंक

[अस्पृश्यता-निवारण पर गाँधीजी के लेख, व्याख्यान एवं उपदेश]

"अस्पृश्यता हिन्दूधर्म का महान् पाप है; उसपर लगी हुई जङ्ग है। अन्त्यजों का तिरस्कार करना मनुष्यता को खो देना है।"

महात्मा गाँधी

अस्पृश्यता

मैं हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता को महापाप मानता हूँ। मेरे ये विचार आज-कल के नहीं हैं। दक्षिण अफ्रीका में विकट परिस्थिति में पड़ जाने के बाद उत्पन्न हुए हों, सो बात भी नहीं। ये विचार मेरी नास्तिकता में से पैदा हुए हैं, यह कहना भी ठीक नहीं। कुछ लोग यह ख़याल करते हैं कि ईसाइयों के सम्पर्क में रहने, एवं उनकी धर्म-पुस्तकों में से मुझ में ये विचार पैदा हुए हैं। यह उनका भ्रम है। हमारे कुटुम्ब में रामायण पढ़ी जाती थी—लाधा महाराज नामके एक ब्राह्मण पढ़ते थे। लाधा महाराज को रक्त-पित्त की बीमारी हो गई थी। उनके मन में यह श्रद्धा थी कि रामायण के पाठ से उनकी यह बीमारी जाती रहेगी, और वास्तव में उनका वह रोग जाता भी रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जिस रामायण में राम को निषाद ने गङ्गा के पार उतार दिया था, उस रामायण में अन्त्यज पापी हैं, यह नहीं माना जाना चाहिए। ईश्वर को हम प्रेम-पूर्वक 'पतितपावन' इत्यादि विशेषणों से सम्बोधन करते हैं, यह यही सिखाता है कि संसार में हिन्दू-जाति में पैदा हुए को पतित एवं अस्पृश्य समझना पाप है—राक्षसी है।

इसीलिए मैं आरम्भ से ही यह कहता आया हूँ कि यह बड़े से बड़ा पाप है। इतना सब ज्ञान मुझे बारहवें वर्ष में हो गया, यह मैं नहीं कहता; किन्तु उस समय मुझे यह दोष तो मालूम हुआ ही। यह बात मैं वैष्णवों और कट्टर हिन्दुओं की जानकारी के लिए कह रहा हूँ।

२—जिस समय मुझे बाइबिल पर मोह न था, मैंने बाइबिल पढ़ी तक न थी, ईसाई-धर्म पालनेवालों के मैं जरा भी सम्पर्क में नहीं आया था, तभी से मेरे मन में ये विचार बने हुए हैं। मेरी आयु बारह वर्ष अथवा उसके लगभग थी, तभी से मैं यह बात मानता था। हमारे कुटुम्ब में मैला साफ़ करने के लिए ऊका नामका एक अन्त्यज आता था। उस समय मैं माता से पूछता था कि मैं ऊका को क्यों छू नहीं सकता। कई बार ऊका को छू भी लेता। माता मुझे स्नान करने की आज्ञा देतीं, इसलिए मैं स्नान तो कर लेता; किन्तु साथ ही विनोद भी करता कि ऊका को न छूने में कोई धर्म नहीं, धर्म हो नहीं सकता। पितृ-भक्त और मातृ-भक्त होने पर भी मैं कई बार झगड़ा भी कर बैठता था। मैं माता से कहता कि इस विषय में तुम्हें बोध नहीं होता। ऊका को छूने में कोई बाधा नहीं है।

३—पाठशाला जाता; वहाँ भी मैं अछूतों को छू लेता; किन्तु माता-पिता से छिपा नहीं रखता। माता मुझे उसके प्रतीकार के

लिए जो बतातीं, मातृ-पूजक होने के कारण मैं वह कर लेता; किन्तु वैसा करना धर्म है, यह मानकर नहीं, प्रत्युत माता की आज्ञा का पालन करने के लिए ही करता। उसके बाद मैं पोरबन्दर गया। वहाँ मुझे संस्कृत भाषा का पहली बार परिचय हुआ। उस समय मैं अंग्रेजी स्कूल में दाखिल नहीं हुआ था; मुझे और मेरे भाई को एक ब्राह्मण के सुपुर्द कर दिया गया था। वहाँ मैंने 'रामरक्षा' और 'विष्णु पंचक' सीखा। उसमें का 'जलेविष्णुः स्थलेविष्णुः' यह वाक्य मैं अभी भी भूल नहीं सकता। वहां मेरी माता के समान एक वृद्धा भी रहती थी। उस समय मैं बहुत डरता था। दीपक के बुझते ही मुझे भूत का डर लगने लगता था। इस वृद्धा ने मुझ से यह कह रक्खा था कि जब तुम्हें डर लगे तब 'राम-रक्षा' का पाठ कर लिया करो। भक्ति-पूर्वक रामरक्षा का पाठ करोगे तो भूत भाग जायगा। उसके अनुसार मैं पाठ करता और भूत भाग भी जाते। मुझे यह प्रतीत नहीं होता था कि रामरक्षा में यह लिखा है कि अन्त्यजों को छूने में पाप लगता है। मैं उसका अर्थ जानता नहीं था, अथवा जानता भी था, तो योंही मामूली-सा।

४—मैं सनातनी हिन्दू होने का दावा करता हूँ। मैं शास्त्रों को न जानता हूँ सो बात नहीं है। मैं संस्कृत का गहरा अभ्यासी नहीं हूँ। वेद, उपनिषदों का अर्थ मैं पढ़ गया हूँ। इनका पण्डित

होने जितना अभ्यास मैंने नहीं किया है। मेरा इनका ज्ञान ऊपर-ऊपर ही का है। एक हिन्दू के नाते इन शास्त्रों का जितना अभ्यास करना चाहिए, उतना अभ्यास मैंने किया है। २१ वर्ष की अवस्था में मैंने दूसरे धर्मों का भी अध्ययन किया है। एक समय ऐसा भी था, जब कि मेरे मन में इस बात का बड़ा संघर्ष चल रहा था कि मुझे हिन्दू ही बना रहना चाहिए अथवा ईसाई हो जाना चाहिए। जिस समय मेरी आत्मा शान्त हुई, उस समय मेरे मन को यही प्रतीत हुआ कि हिन्दू-धर्म ही मेरे लिए मुक्ति का द्वार है। इस प्रकार हिन्दू-धर्म पर मेरा विश्वास ज्ञान-पूर्वक दृढ़ हुआ। उस समय भी मैं यही मानता था कि हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता को धर्म नहीं माना है, और यदि माना हो तो हिन्दू-धर्म मेरे लिए नहीं है।

५—अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म में पाप नहीं मानी गई। मैं शास्त्रार्थ के झगड़े में नहीं पड़ना चाहता। यह सम्भव है कि मनुस्मृति, भागवत आदि के श्लोकों से अपनी बात के समर्थन में मुझे कुछ कठिनाई पड़े; किन्तु मैंने हिन्दू-धर्म के रहस्य को समझा है। हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता मानी गई है, यह पाप है।

६—महतरों अर्थात् भंगियों को छूने में कई हिन्दू शास्त्र का अड़ंगा लगाते हैं। लेकिन मैं कहता हूँ कि यदि कोई शास्त्र यह कहता हो कि भंगियों को छूना पाप है, तो वह अशास्त्र

है। शास्त्र ऐसा हो ही नहीं सकता, जो बुद्धि से परे हो, जो सत्य न हो। फिर शास्त्र के अर्थ तो जैसे चाहें, वैसे हो सकते हैं। हम शास्त्र के नाम पर क्या नहीं करते ? शास्त्र के नाम पर साधु-वेशधारी भंग पीते हैं और गांजा फूँकते हैं; शास्त्र के नाम पर देवीभक्त मांस-मदिरा का सेवन करते हैं, शास्त्र के नाम पर अनेक व्यक्ति व्यभिचार करते हैं, शास्त्र के नाम पर मद्रास इलाक़े में कोमल बालिकाओं को वेश्या बनाया जाता है। इससे बढ़कर शास्त्र का अनर्थ और क्या हो सकता ? मैं अपने को कट्टर वैष्णव मानता हूँ; मैं वर्णाश्रम धर्म का मानने वाला हूँ। किन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि भंगी को छूने में पाप है, यह वैष्णव धर्म की अतिशयता है, उस पर चढ़ा हुआ मैल है।

७—अस्पृश्यता के पाप से हम पतित बने, साम्राज्य में भंगी बने। हमारे संसर्ग से मुसलमानों में भी यह दोष पैदा हुआ। हिन्दू-मुसलमान साम्राज्य में अस्पृश्य बने। दक्षिण अफ्रिका में, पूर्वी अफ्रिका में, केनाडा में, अकेले हिन्दू ही नहीं, मुसलमान भी हैं और ये सब भंगी समझे गये। इतना बड़ा पाप इस अस्पृश्यता में से पैदा हुआ।

८—जबतक हिन्दू-समाज जानबूझ कर अस्पृश्यता को धर्म समझता है, असंख्य हिन्दू जबतक अन्त्यजों को छूने में पाप है, यह मानते हैं, तब तक स्वराज्य असम्भव है। युधिष्ठिर ने

कुत्ते के बिना स्वर्ग में जाने से इन्कार कर दिया था। युधिष्ठिर के वंशज ये हिन्दू अछूतों को छोड़कर स्वराज्य किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं? जिस अपराध के कारण हम वर्तमान शासन को राक्षसी मानते हैं, उसमें ऐसा कौनसा गुनाह है, जो हमने अछूतों के प्रति नहीं किया है?

९—हम अपने भाइयों की परछाईं से दूषित हुए हैं। हम इन्हें पेट के बल चलाते हैं। हमने इनसे नाक घिसवाई है; रेलगाड़ी में हम लाल आंखें करके इन्हें धक्के मारते हैं! इससे बढ़कर अंग्रेजी राज्य ने क्या किया है? डायर ओडवायर पर जो आरोप हम लगाते हैं, वैसे कौन से आरोप हैं जो दूसरी जनता अथवा हम अपनी जनता पर नहीं लगा सकते? इस गन्दगी में से अपने को निकल जाना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं हो जाता, तब तक स्वराज्य की बात केवल वितण्डावाद है। मेरे मन में इस विषय में ज़रा भी शङ्का नहीं है कि जब तक दुर्बल की रक्षा न होगी, एक भी व्यक्ति का दिल स्वाराज्यवादी के हाथ से दुखता होगा, तब तक स्वराज्य मिल न सकेगा। स्वराज्य का अर्थ ही यह है कि कोई भी हिन्दू या मुसलमान उद्दण्डतापूर्वक यह न माने कि भेड़-बकरी की तरह हिन्दू अथवा मुसलमान को कुचल डालेगा,—डालूँगा। यदि ऐसा न होने पर स्वराज्य मिल भी जायगा, तो उसी दिन हम उसे खो बैठेंगे। अन्त्यज-जैसे दुर्बल की रक्षा करने

के बजाय उन्हें कुचलने आदि के दोषों को जब तक हम अपने में से निकाल बाहर नहीं करते, तबतक हम भेड़-बकरी आदि पशुओं से भी निकम्मा जीवन व्यतीत करते रहेंगे।

१०—किन्तु मुझे विश्वास है। भारत में भ्रमण करते हुए मैंने जाना है कि जो दया तुलसीदास सिखाते हैं, जिस दया का वैष्णव धर्म में उपदेश दिया गया है, जिस दया से भागवत भरी पड़ी है, जिस दया से गीता ओत-प्रोत हो रही है, वह दया भारत में बढ़ती ही जा रही है। अभी भी उल्कापात हो रहे हैं। अनेक अत्याचारी हिन्दू और मुसलमान अभी भी मौजूद हैं। फिर भी हिसाब लगाने पर मैं देखता हूँ कि रहम बढ़ा है, दया की वृद्धि हुई है, हिन्दू-मुसलमान की वृत्ति ईश्वर की ओर है। मेरा अनुभव मुझे बताता है कि जिन्हें हम नीचा और निरक्षर मानते हैं वे ही साक्षर हैं। हमारी अपेक्षा उनमें शिक्षा और धार्मिकता अधिक है।

११—सेवा का विचार करते हुए मुझे यह प्रतीत होता है कि वकील, डाक्टर अथवा कलक्टर भंगी की अपेक्षा समाज की जरा भी अधिक सेवा नहीं करते। उनकी अपेक्षा तो भंगी की सेवा कहीं अधिक बढ़ जाती है। भंगी यदि हमारी सेवा करना छोड़ दे, तो समाज की क्या दशा हो जाय ? हम पर जो मुसीबत आ पड़ी है, वह हमने अन्त्यजों पर जो पाप किये हैं, उनका बदला है।

हम इस शासन के, साम्राज्य के, सरकार के भंगी के समान हो रहे हैं, इसका मुख्य कारण यही है कि हमारे वैष्णवों, शैवों एवं अपने को कट्टर सनातनी हिन्दू कहलाने वाले भंगियों के प्रति पशुओं का-सा बर्ताव करते हैं, उनपर अत्याचार करते हैं। भंगी हमारे सहोदर हैं, सगे भाई हैं। हम उन से सेवा लेते हैं, और पूरा पेट-भर वेतन भी नहीं देते, इससे उन्हें जूठन में से अपना गुजर चलाना पड़ता है, सड़ा-गला मुर्दा-मांस खाना पड़ता है।

१२—ईश्वर हमें दण्ड दे रहा है। हम उन्हें भङ्गी मान कर दूर रखते हैं तो सारा संसार हमें भङ्गी मानकर छूने नहीं देता। अफ्रीका से आनेवाले किसी भी व्यक्ति से पूछिए, तो आपको पता चलेगा कि वहाँ कोई भी गोरा शराबी—कबाबी, वेश्यागामी और जुआरी होने पर भी आप को छूने से परहेज करता है या नहीं? रेल्वे में, ट्राम में, पगडण्डी पर गोरों के साथ हम चल नहीं सकते; जिस जगह गोरे व्यापार करते हैं, वहाँ हम व्यापार कर नहीं सकते; जिन होटलों से वे रोटी लेते हों, उन होटलों में हम जा नहीं सकते। मैं स्वीकार करता हूँ कि सब जगह ऐसा नहीं होता। मैं अंग्रेजों के साथ अन्याय नहीं करना चाहता। मेरी उनके साथ दुश्मनी नहीं। किन्तु मैंने बहुत-सी जगह देखा है कि जहाँ गोरे रहते हैं, सोते हैं, पानी पीते हैं अथवा भोजन करते

हैं, वहाँ जाते रहने की हमें इजाजत नहीं है। किन्तु गोरे तो अपने शरीर-स्पर्श-दोष के भय से स्वास्थ्य के बहाने हमें दूर रखते हैं। वे यह नहीं मानते कि इससे उनकी आत्मा अपवित्र हो जायगी। किन्तु हम तो यह मानने लगे हैं कि अन्त्यज के स्पर्श से हमारी आत्मा अपवित्र हो जायगी और इसके लिए ईश्वर हमें दण्ड देगा।

१३—किन्तु इस अनुचित एवं असत्य धारणा के लिए ईश्वर तो अभी हमें दण्ड दे रहा है। दुष्काल, सङ्कट, हैजा, प्लेग, राजकीय अत्याचार इन सबसे अधिक दुःख और क्या होंगे? इसलिए मैं हिन्दू-समाज से नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि हिन्दूपन अस्पृश्यता को घोषित करने, उसकी रक्षा करने में नहीं, वरन् उस दोष को निकाल देने में है।

१४—जिस शक्ति द्वारा हम महापाप से मुक्ति प्राप्त करेंगे, उसी शक्ति के जरिये हम दूसरे पापों में से निकल सकेंगे, और मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक हम अनेक पाप-कर्मों में पड़े हैं, तबतक भारत मन्दभागी रहेगा ही। मेरा विश्वास है कि मैं अन्त्यजों की सेवा करके सारी जाति की सेवा कर रहा हूँ। अन्त्यजों की तरह दूसरे भी दुःखी हैं; फिर भी अन्त्यजों पर हम धर्म के नाम पर अत्याचार कर रहे हैं; इसलिए मैं एक कट्टर हिन्दू के नाते इस धर्म में से निकल जाना और दूसरों को

निकलने के लिए सूचित करना अपना विशेष कर्त्तव्य मानता हूँ। हम अन्त्यजों के दुःखों का मुक़ाबला जनता के अन्य किसी भी भाग के दुःखों से कर नहीं सकते। अन्त्यज अस्पृश्य हैं, इस धर्म को हम किस प्रकार मानते हैं, यह बात मेरी बुद्धि में आती ही नहीं, और जब मैं इसका विचार करता हूँ तो मेरा हृदय कांप उठता है। मेरी आत्मा इस बात की साक्षी देती है कि यह अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म का अङ्ग कदापि हो नहीं सकती। इतने वर्षों तक अज्ञान के वश में होकर उन्हें अस्पृश्य मानकर हिन्दू-संसार ने पाप का पहाड़ खड़ा किया है, उसे हटाने के लिए अपना सारा जीवन अर्पण कर देना मुझे जरा भी अधिक प्रतीत नहीं होता। और मैं केवल इसी काम में संलग्न नहीं हो सकता, इसका मुझे सदैव दुःख रहा करता है।

१५—इसमें अन्त्यजों के साथ खान-पान अथवा बेटी-व्यवहार करने का प्रश्न जरा भी उपस्थित नहीं होता। केवल छूने का ही प्रश्न है। अन्त्यज यदि मुसलमान हो जाय तो मैं उसे छू लेता हूँ, ईसाई हो जाने पर उसे सलाम तक करता हूँ; ईसाई अथवा मुसलमान के उसे छू लेने पर मैं उनको छूने में पाप नहीं मानता, किन्तु स्वयं उस अन्त्यज को छूने में मुझे संकोच हो, इससे बढ़ कर आश्चर्य की बात और क्या होगी! मुझे तो यह विचार अन्यायपूर्ण, विवेक-रहित और अधर्मयुक्त ही प्रतीत होता है।

इसीलिए मैं अन्त्यज को छूकर अपने आपको पवित्र हुआ मानता हूँ, और अनेक प्रकार से, मर्यादा में रह कर हिन्दू-संसार से इस आरोप में से निकल जाने के लिए प्रार्थना करता ही रहता हूँ।

१६—जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमानों का मैत्रीपूर्वक रहना आवश्यक है, उसी प्रकार हिन्दुओं को अस्पृश्यता का कलङ्क मिटा कर हिन्दू-धर्म की बदनामी दूर करना आवश्यक है। महा-सभा—काँग्रेस—ने, सब हिन्दुओं से अस्पृश्यता की अनुचित प्रथा छोड़ देने की प्रार्थना की है। यदि हम भारत में सर्वत्र अस्पृश्यता का विरोध न करेंगे, तो यह स्वाभाविक ही है कि विरोधी इस समय उसका पुष्कल दुरुपयोग करेंगे। आप यह निश्चय मानिए कि जिस प्रकार सरकार हिन्दू-मुसलमानों के परस्पर के मनमुटाव का लाभ उठाने का अवसर नहीं चूकती, उसी प्रकार हिन्दुओं की इस प्रथा के कारण आपस में फैलते हुए असन्तोष का भी लाभ लेने में वह कभी न चूकेगी।* शैतान हमेशा छिद्रों-द्वारा भीतर प्रवेश कर सब दिखाई दे सकने जितना बड़ा द्वार अपने आने जाने के लिए बना लेता है। अतः जबतक हममें ऐसी त्रुटियाँ हैं, तब तक हमारे स्वराज्य के प्रयत्न असफल सिद्ध हों, तो इसमें कुछ भी आश्चर्य्य नहीं।

---

* बारह वर्ष पहले की गई गांधीजी की यह भविष्यवाणी गोलमेज़ परिषद् और ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के साम्प्रदायिक निर्णय के समय पूर्णतया सत्य सिद्ध हो चुकी है।

हिन्दू धर्म के तीन सूत्र

भादरण (बड़ौदा-राज्य) की ओर से अर्पित अभिनन्दन पत्र का उत्तर देते हुए गाँधीजी ने कहा था—

"आपके प्रदर्शित प्रेम और अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देने के पहले मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहता हूँ। यदि मैं यह न कहूँ तो मानो आपके प्रति मैं अपराध ही करूँगा। आप जो इतनी रात गये इतनी ज्यादा तादाद में यहाँ एकत्र हुए हैं यह देखकर मुझे बहुत आनन्द होता है, पर साथ ही मुझे दुःख भी होता है। इस सभा के व्यवस्थापकों ने जो व्यवस्था की है वह जानबूझ कर की है या अनजान में, सो मैं नहीं जानता। पर हर सभा-स्थान में जानेवाले लोग अब मेरी प्रकृति जान गये हैं। इसमें एक यह है कि यदि किसी भी जलसे में मैं अन्त्यजों के लिए अलग विभाग देखूँ तो मुझे भारी चोट पहुँचे और कुछ भी बोलना मेरे लिए असंभव हो जाय। पर आपने (अपने अभिनन्दन में) कहा है और दूसरे लोग भी कहते हैं कि अहिंसा मेरे जीवन का परम सूत्र है। अहिंसा को मैं अपने जीवन में गूँथ रहा हूँ। यदि यह बात सच हो तो मुझसे यह नहीं हो सकता कि मैं आपके दिल को चोट पहुँचाना चाहूँ। मैं यह भी नहीं

चाहता कि आप बिना सोचे-समझे कुछ करें । रोष में भी मैं कुछ कराना नहीं चाहता। मैं जो-कुछ आपसे करा सकता हूँ वह आपके हृदय और बुद्धि को ही रिझाकर। यदि आप अस्पृश्यता को हिन्दू-धर्म का कलंक मानते हों तो यह बाँस की टट्टी जो हमें अन्त्यज भाइयों से जुदा कर रही है, सर्वथा निर्मूल हो जानी चाहिए।"

(ये शब्द मुँह में से निकल ही रहे थे कि कुछ लोग सभा से उठकर शान्ति के साथ बांस की टट्टी के बंद छोड़ने लगे। यह देखकर गाँधीजी कहने लगे—)

"मैं यह नहीं कहता कि आप टट्टी को अभी तोड़ डालें या सभा में गड़बड़ करके आप कोई काम करें। मैं तो आपकी सम्मति लेना चाहता हूँ। क्या आप चाहते हैं कि यह टट्टी न रहे और हमारे अन्त्यज भाई-बहन हमारे साथ आकर बैठें? (बहुतेरे हाथ ऊपर उठे, सिर्फ एक हाथ खिलाफ उठा। टट्टी टूटी; अन्त्यज सबके साथ आकर बैठ गये।)

"आपने मुझे अभिनन्दन-पत्र तो दिया ही है। आपने जिस चौकठे में मढ़ा कर कागज पर अथवा खादी पर छापकर अभिनन्दन-पत्र दिया उसका कोई मूल्य मेरे नजदीक नहीं, अथवा उतना ही है जितना आप खुद अपने आचरण के द्वारा आंक दें। पर अभी आपने इस टट्टी को तोड़कर जो अभिनन्दन

मेरा किया है वह हमेशा के लिए मेरे हृदय में अंकित रहेगा ऐसा ही अभिनन्दन-पत्र मैं अपने हिन्दू भाई-बहनों से चाहत हूँ। आप यदि मुझे थोड़ा-बहुत सूत लाकर दे देंगे, मेरे सामने तरह-तरह के फल-फूल-मेवे लाकर रख देंगे, या अन्त्यज बालिक के हाथ से कुंकुम-तिलक करावेंगे (यहाँ कराया गया था) तो इससे मुझे खुशी नहीं हो सकती। ये चीजें तो मुझे सब जगह मिल जायँगी; पर अभी आपने जो चीज़ दी है उसके लिए तो प्रेम की जंजीर दरकार है। और मैं इस प्रेम की जंजीर के सिवा आपसे और कुछ नहीं चाहता। क्योंकि प्रेम, अहिंसा का अंग है। अहिंसा का समावेश प्रेम में हो जाता है।

"सनातनी भाई शायद यह मानते हों कि मैं हिन्दू-संसार के दिल पर आघात पहुँचाना चाहता हूँ। मैं खुद अपने को सनातनी मानता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरा दावा बहुत कम भाई-बहन क़बूल करते होंगे—पर मेरा यह दावा है और रहेगा और मैं तो कई बार कह चुका हूँ कि आज नहीं तो मेरी मृत्यु के बाद समाज जरूर इस बात को क़बूल करेगा कि गांधी सनातनी हिन्दू था। 'सनातनी' के मानी हैं 'प्राचीन'। मेरे भाव प्राचीन हैं—अर्थात् ये भाव मुझे प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थों में दिखाई देते हैं और उन्हें मैं अपने जीवन-रूप बनाने की कोशिश कर रहा हूँ। इसी कारण मैं मानता हूँ कि मेरा सनातनी होने का दावा बिल्कुल

ठीक है। बना-बनाकर शास्त्रों की कथा कहनेवालों को मैं सनातनी नहीं कहता। सनातनी तो वही हैं जिनके रगोरेशे में हिन्दू-धर्म व्याप्त हो। इस हिन्दू धर्म का वर्णन शंकर भगवान् ने एक ही वाक्य में कर दिया है—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'। दूसरे ऋषियों ने कहा है—'सत्य से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं।' और तीसरे ने कहा कि 'हिन्दू धर्म का अर्थ है अहिंसा।' इन तीन में से आप चाहे किसी सूत्र को ले लीजिए, उसमें आपको हिन्दू-धर्म का रहस्य मिल जायगा। ये तीन सूत्र क्या हैं मानो हिन्दू धर्म शास्त्र को दुह-दुहकर निकाला उनका नवनीत ही है! धर्म का अनुयायी, सनातन धर्म का दावा करनेवाला मैं किसी भी आदमी के दिल को चोट पहुँचाना न चाहूँगा। मैं तो सिर्फ़ इतना ही चाहता हूँ कि *आप अन्त्यजों को स्पर्श करें। क्योंकि अन्त्यज मनुष्य हैं। और चाहता हूँ कि उनकी सेवा हो क्योंकि वे सेवा के लायक हैं।* माता जो सेवा बालक की करती है वही सेवा वे समाज की करते हैं। उनको अछूत मानना, उनका तिरस्कार करना मानो अपना मनुष्यत्व गवांना है। हिन्दुस्तान आज संसार में अछूत बन गया है। इसका कारण यह है कि वह अनेक कोटि अर्थात् असंख्य लोगों को अस्पृश्य मानता चला आया है। और इसका फल यह हुआ है कि हमारा 'सत्संग' करने वाले मुसलमान भी संसार में अस्पृश्य हो गये हैं। ऐसा उलटा परिणाम क्यों हुआ? इसका

एक ही जवाब है। 'जैसा करोगे वैसा पावोगे' यह ईश्वर का न्याय है। संसार के द्वारा ईश्वर हमें इस न्याय की शिक्षा दे रहा है। यह कठिन समस्या नहीं है, सीधा न्याय है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्"—भगवान् कृष्ण ने कहा है कि तुम जिस तरह मुझे भजोगे उसी तरह मैं तुम्हें भजूँगा। इसलिए यदि आप उस बात को समझ लेंगे जो मैं आपसे चाहता हूँ तो आपको कष्ट न उठाना पड़ेगा। मैं आपको पीड़ा देना नहीं चाहता, मैं आपसे जरूरत से ज्यादा कुछ कराना नहीं चाहता। मैं यह भी नहीं चाहता कि आप अन्त्यजों के साथ रोटी-बेटी का व्यवहार करें। यह तो आपकी इच्छा की बात है। परन्तु अन्त्यज को अस्पृश्य मानना इच्छा का विषय नहीं। जिसका स्पर्श करना चाहिए उसे अस्पृश्य मानना और जो अस्पृश्य है उसका स्पर्श करना इच्छा का विषय नहीं है। यदि आप अन्त्यज भाइयों के दुःखों को महसूस न कर सकें तो फिर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' किस तरह कह सकते हैं? उपनिषद् के रचयिता एक भी पाखण्डी न थे। उन्होंने जगत् को ब्रह्ममय कहा है। अतएव हम यदि अन्त्यज के दुःख से दुःखी न होंगे तो अपने को जानवर से भी बदतर साबित करेंगे। हमारा धर्म पुकार-पुकार कर कह रहा है कि जो जीव जानवर के अन्दर है वही सब हम लोगों के अन्दर है। पर आज हमने उस धर्म की गर्दन मरोड़ दी है। मैं तो दया-

भाव से, प्रेम भाव से, भ्रातृ-भाव से कहिए तो भ्रातृ–भाव से अस्पृश्यता का नाश करना चाहता हूँ। यदि ऐसा करेंगे तो हिन्दूधर्म की शोभा बढ़ जायगी। इसमें हिन्दू धर्म की रक्षा भी आ जाती है। हेतु यह नहीं है कि अन्त्यजों का मुसलमान बनना या ईसाई होना रुकेगा। किसी भी धर्मका आधार उसके अनुयायियों की संख्यापर अवलंबित नहीं रहता। इस ख़याल से बढ़कर कि धर्म-बल का आधार संख्या है, एक भी पाखंड नहीं। यदि एक भी आदमी सच्चा हिन्दू रहे तो हिन्दू धर्म का नाश नहीं हो सकता; पर यदि करोड़ों हिन्दू पाखण्डी बन कर रहें तो उनसे हिन्दू-धर्म सुरक्षित नहीं, उसका विनाश ही निश्चित समझिए। मैंने जो कहा कि हिन्दू-धर्म सुरक्षित रहेगा उसका भाव यह है कि उसका हम प्रायश्चित्त कर चुकेंगे, अनेक युगों का चढ़ा हुआ ऋण अदा कर चुकेंगे, और इस नादानी से छूट सकेंगे।

"अस्पृश्यता में घृणा-भाव स्पष्ट-रूप से है। कोई यदि कहे कि अस्पृश्यता को मैं प्रेम-भाव से मानता हूँ तो मैं इस बात को कभी न मानूँगा। मुझे तो उसके अन्दर कहीं प्रेम-भाव प्रतीत नहीं होता। यदि प्रेम हो तो हम उन्हें जूठन नहीं खिलावेंगे। प्रेम हो तो हम उन्हें उसी तरह पूजेंगे जिस तरह माता-पिता को पूजते हैं। प्रम हो तो हम उनके लिए अपने से अच्छे कुएँ, अच्छे मदरसे बना देंगे, उन्हें मन्दिरों में आने देंगे।

ये सब प्रेम के चिन्ह हैं। *प्रेम अगणित सूर्यों से मिलकर बना है। एक छोटा-सा सूर्य जब छिपा नहीं रहता तब प्रेम क्यों छिपा रहने लगा ?* किसी माता को कहीं यह कहना पड़ता है कि मैं अपने बच्चे को चाहती हूँ ? जिस बच्चे को बोलना नहीं आता वह माता की आँख के सामने देखता है। जब आँख से आँख मिल जाती है तब हम देखते हैं कि वे किसी अलौकिक चीज़ को देख रहे हैं।

"इतना कहने के बाद मैं समझता हूँ कि कोई यह न मानेंगे कि दक्षिण अफ्रीका से आया एक सुधारक हिन्दू अपना सुधार हिन्दूधर्म में घुसा देना चाहता है। मैं कह सकता हूँ सुधार की अभिलाषा मुझे नहीं, मैं तो स्वार्थी आदमी हूँ और खुद ही अपने आनन्द में मग्न रहता हूँ। मैं तो अपनी आत्मा का कल्याण चाहता हूँ। इसलिए मैं तटस्थ, निश्चिन्त बनकर बैठा हूँ। पर मैं चाहता हूँ कि जिस आनन्द का अनुभव मैं कर रहा हूँ उसका उपभोग आप भी करें। इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ अन्त्यजों का स्पर्श करके, उनकी सेवा करके जो आनन्द प्राप्त होता है उसका उपभोग आप भी कीजिए।"

शास्त्र-निर्णय और अस्पृश्यता

हिन्दू-धर्म या शास्त्र के नाम पर जो कुछ कहा जाता है वह सब सच ही है, यह मानना तो बड़ा ख़तरनाक है। यह मान लेने का तो कोई कारण नहीं कि हमारे सभी शास्त्र बड़े विचार के साथ लिखे गये हैं, और न यही मान लेना चाहिए कि वे सभी अज्ञानता (बेवकूफ़ी) से लिखे गये हैं। अगर हम यह अर्थ करें कि जिसमें शुद्ध ज्ञान है वही शास्त्र है, तब तो यह कहा जा सकता है कि सभी शास्त्र ज्ञान-पूर्वक लिखे गये हैं। इस विचार के अनुसार जहां नरमेध (मनुष्य-बलि) आदि की बातें आती हैं, उन्हें अज्ञान समझना चाहिए। वह बात शुद्ध शास्त्रों में पीछे से भी जोड़ी जा सकना सम्भव है। परन्तु आत्मार्थी को यह सब खोज करने की जरूरत नहीं। यह तो इतिहासज्ञ के काम की बात है। हमें तो हरएक लेख या उपदेश में से उसका तत्त्व ग्रहण करना चाहिए। सभी शास्त्रों को शास्त्र मानकर उनमें के अनर्थ को ही अर्थ सिद्ध करने के बखेड़े में हम क्यों पड़ें ? हिन्दुस्थान और अन्य देशों में, ज्ञान और अज्ञान तो सभी जगह साथ-साथ रहे हैं; अतएव काली को भोग (बलि) आदि अन्याय हमारे धर्म के नाम पर होते रहना स्वाभाविक ही

पाठ पढ़-समझ लिया, तहाँ और सब तो स्वय ही समझ में आ सकता है।

२—यह जो कहा जाता है कि शास्त्र-निर्णय में बुद्धि को स्थान नहीं, इससे मेरा मतभेद है। मेरा तो यह विश्वास है कि जिसे न बुद्धि समझ सके और न हृदय स्वीकार करे, वह शास्त्र नहीं; और मैं समझता हूँ कि जिसे केवल धर्माचरण करना हो उसे इस सिद्धान्त को मानना ही चाहिए। ऐसा न हो तो हमारे धर्मच्युत होने का डर रहता है। बुद्धि के विपरीत जो हो उसे यदि शास्त्र की तरह माना भी जाता हो तो भी वह शास्त्र तो नहीं हो सकता। अनीति सीखना शास्त्र नहीं हो सकता। गीता का अर्थ मैंने ऐसा सुना है कि दुष्ट अपना सगा-सम्बन्धी भी हो तो उसे भी हम पशुबल से हटा सकते हैं—हटाना ही धर्म है पर राम ने रावण का संहार किया था इसलिए जिसे हम रावण समझते हों, क्या उसका संहार करना हमारा धर्म है? मनुस्मृति में मांसाहार के लिए लिखा है; इसलिए क्या वैष्णव मांसाहार कर सकता है? बड़े-बड़े शास्त्रवेत्ताओं और संन्यासियों के मुख से मैंने सुना है कि रोग होने पर उसके निवारण के लिए गो-मांस तक खाया जा सकता है। इन सब शास्त्रार्थों का स्वीकार कर मैंने यदि अपने सगे-सम्बन्धियों का सहार किया होता, अंग्रेजों को

मार डालने की लोगों को सलाह दी होती, और बीमारी में गो-मांस खाया होता, तो आज मेरी क्या दशा होती ? परन्तु नहीं ऐसे वक्त मैंने अपनी बुद्धि पर विश्वास किया और अन्तःकरण की बात को ही धर्म माना। इसीसे मैं इन बातों से बच सका हूँ और आप सब को ही ऐसा ही करने की सलाह देता हूँ।

३—हमारे निर्मल तपस्वियों ने इसीलिए हमें यह शिक्षा दी है कि जो वेदादि का पाठ तो करे किन्तु धर्म पर आचरण न करे वह 'वेदिया' कहलाता है; वह न तो खुद ही भवसागर को पार कर सकता है, और न किसी को पार करा ही सकता है। यही कारण है कि वेदादि को कण्ठाग्र करने वाले अथवा उनकी टीकायें याद रखने वालों को देखकर मैं चकित नहीं हो जाता; यही नहीं, मैं उनके ज्ञान को देखकर न केवल चकित ही नहीं होता प्रत्युत अपने अल्पज्ञान को उससे कहीं मूल्यवान् समझता हूँ।

४—मैं नम्रता के साथ यह कहना चाहता हूँ कि सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं का धर्म यह नहीं कि जिधर लोक-प्रवाह की गति हो उधर ही बह जायँ; किन्तु उन्हें तो यदि वह गति ग़लत हो तो उसे सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए।

५. मुझे शास्त्र का ज्ञान नहीं, अनुभव नहीं, और मैं जिद्दी हूँ, यह कह कर कोई मुझे हिन्दूपन से अलग नहीं कर सकता। क्योंकि जबतक मेरा यह विश्वास है कि हिन्दू-पन की परीक्षा अच्छे

आचरण ही में है—वादविवाद, वाक्चातुर्य अथवा शास्त्रार्थ में नहीं—तबतक मैं अपना हिन्दूपन का दावा नहीं छोड़ना चाहता।

६. शास्त्रार्थ के बखेड़े में हम इतने ज्यादा पड़ गये हैं कि हमने कुछ का कुछ कर डाला है। धूल का धान कर देने के बदले धान की धूल कर डाली है; चावल छोड़कर छिलकों से चिपट गये हैं; मक्खन को छोड़कर छाछ के पीछे पड़ गये हैं! आजकल की परिस्थिति से मालूम होता है कि अब हम कोरे कहने से अमल करने के युग-द्वार पर आ पहुँचे हैं। [अतएव हमारे विचार एवं व्यवहार खाली हृदय पर नहीं किन्तु बुद्धि पर भी निर्भर रहें तभी कर्ता की तरह हम कुछ चिरस्थायी कार्य कर सकते हैं। हमारे अनेक विश्वास उसी तरह भित्ति-रहित हैं जिस तरह कि पाँच वर्ण हैं और होने चाहिएँ किन्तु अच्छी तरह देखने पर] वर्ण पाँच नहीं, चार हैं। अस्पृश्यता संयम नहीं है, न वर्णाश्रम की मर्यादा है। अन्य वर्णवाले (वर्णेतर) को भी अस्पृश्य मानना दयाधर्म नहीं वरन् कठोरता है। रक्तपित्त के रोगी को छूने से आत्मा भ्रष्ट नहीं होती प्रत्युत यदि स्पर्श सेवा-भाव से किया जाय तब तो आत्मा की उन्नति होती है। अंत्यजों में भङ्गी को सेवा करना धर्म है; दया इस बात का तक़ाज़ा करती है कि दर्द से पीड़ित भङ्गी की सारसँभार तत्काल की जाय। भङ्गी ने मैला उठाया हो तो उसे स्नान करना चाहिए। सफ़ाई, शुद्धता के

लिए यह आवश्यक है। पर न नहाना, अधोगति—रसातल को पहुँचानेवाला नहीं। हाँ, जरूरत के वक्त भङ्गी को स्पर्श न करना पाप है; और यह मानना कि उसे छूने से पाप लगता है, अज्ञानता है।

७. हममें से जो इस बात को समझता है कि किसी को भी छूने में पाप नहीं और नहाये-धोये भङ्गी को छूकर नहाना व्यर्थ है वे जब भङ्गी आदि की सेवा करते हुए समय-समय पर उन्हें छुएँगे, तभी यह बुराई दूर हो सकती है। नहीं तो, ऐसा कहनेवाले लोग तो मिलते ही रहेंगे कि अंत्यजों का सैकड़ों पीढ़ी तक भी स्पर्श करना पाप है। उन पर हम विनयपूर्वक किन्तु उतने ही आग्रह के साथ किये गये अपने व्यवहार और उसके शुभ परिणामों से ही विजय प्राप्त कर सकेंगे।

८. हम लोग अस्पृश्यता-सम्बन्धी जो आचरण करते हैं मैंने तो उसे पाप समझकर धार्मिक दृष्टि से ही उसका त्याग करने के लिए आपसे कहा है। क्योंकि धार्मिक दृष्टि से अपने जीवन का निर्माण करनेवाले लोग धर्मकोट की एक भी ईंट कमजोर नहीं होने देते।

९. मेरा यह विश्वास है कि शास्त्रों के पढ़ लेने से ही धर्म का स्वरूप प्राप्त नहीं हो जाता। हम हमेशा देखते आये हैं कि यमादि का पालन किये बग़ैर ही शास्त्रों का पाठ करनेवाले मनुष्य

औंधे रास्ते ही चलते हैं। जिसने सिर्फ़ परिडताई करने के लिए ही शास्त्रों को पढ़ा हो उससे मैं शास्त्र का अर्थ ग्रहण नहीं करना चाहता। अपने आचरण का खाका मैं प्रो० मैक्समूलर के खूब अध्ययन के बाद लिखे हुए शास्त्रों में से भी नहीं बनाना चाहता। आजकल शास्त्रों की जानकारी का दावा करने वाले अधिकांश में केवल अज्ञानी एवं दम्भी ही देखे जाते हैं। मैं धर्मगुरु की खोज में हूँ। गुरु की आवश्यकता मैं मानता हूँ। परन्तु जबतक मुझे कोई योग्य गुरु नहीं दीखता तबतक मैं खुद ही अपना गुरु बन बैठा हूँ। यह मार्ग निकट है, सही, तथापि इस विषम समय में तो यही ठीक मालूम होता है।

१०—अपनी धार्मिक जिम्मेदारी को पूरी तरह समझ कर ही मैं इस आंदोलन में भाग ले रहा हूँ। कालान्तर में जिस तरह नर्मदाशंकर के विचार बदल गये थे, एक समालोचक ने मेरा भविष्य भी वैसा ही बताया है। अगर वैसा समय आवे तो यही समझियेगा कि मैंने हिन्दू-धर्म को—नहीं धर्म-मात्र को ही, तिलांजलि दे दी। और अगर हिन्दू-धर्म को इस कलंक से छुड़ाते हुए मेरी मौत हो जाय, तो भी मैं समझता हूँ कि उसमें कोई खास बात नहीं। जिस धर्म में नरसिंह महता-सरीखे लोग हुए हैं उसमें अस्पृश्यता का कोई ठिकाना नहीं हो सकता।

११—अस्पृश्यता को पाप मानने को पाश्चात्य विचार बत-

लाना, पाप को पुण्य मानने की चेष्टा के समान है। अखो भगत ने कहीं पाश्चात्य शिक्षा नहीं पाई थी; पर उसने ही यह गाया है—"आभड़छेट अदकेरूँ अंग"। अपने धर्म के दोषों को निकालने के प्रयत्न को अन्य धर्मों की बात मान कर उन दोषों पर ही अड़े रहना धर्मान्धता है, और इससे धर्म की अवनति ही होती है।

१२—क्या अन्त्यजों का अन्तःकरण मैला है? क्या अंत्यज जन्म से ही मनुष्य नहीं? क्या वे पशुओं से भी गये-बीते हैं?

१३—अस्पृश्यता हिंदू-धर्म की बुराई है। यह तो सम्भव है कि गिरते जमाने (पतनकाल) में आपद्धर्म के रूप में उस समय के लिए यह व्यवस्था जारी की गई हो। परंतु यह व्यापक नहीं—अव्यापक है; और शास्त्रों में इसकी गुञ्जाइश नहीं है। जिन श्लोकों को इसके समर्थन में पेश किया जाता है वे या तो क्षेपक हैं, अथवा उनका अर्थ ठीक नहीं किया जा रहा है। वैष्णवों ने अस्पृश्यता का धर्म-रूप में कभी वर्णन नहीं किया। फिर जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं, अस्पृश्यता का भी नाश होता जाता है। रेलों, सरकारी स्कूलों, तीर्थस्थानों, और अदालतों में इसकी गुंजाइश नहीं है और मिलों तथा दूसरे बड़े-बड़े कारखानों में अंत्यजों से कोई परहेज नहीं रक्खा जाता। इस प्रकार पाप मानते हुए भी वैष्णव लोग उनका जो स्पर्श करते हैं, मैं चाहता हूँ कि

वे इस पर विचार कर और पुण्य मानके ऐसा करें। गीता में भी यही कहा गया है; समदर्शी के लिए ब्राह्मण, श्वान, अन्त्यज सब एक-से हैं। नरसिंह महता यही गाते थे कि वैष्णवों में समदृष्टि होनी चाहिए। पर अन्त्यजों को सर्वथा अस्पृश्य मानते हुए सम-दर्शी नहीं रहा जा सकता—कम से कम वैष्णव तो ऐसा दावा कर ही नहीं सकते।

१४—मैंने अन्त्यजों में बहुतों को सरलचित्त, प्रामाणिक, ज्ञानी एवं ईश्वर-भक्त पाया है। उन्हें मैं सब तरह से वन्दनीय मानता हूँ। उपाधि-रहित हमारे बेपढ़े जो डाक्टर हैं उनकी बेइज्जती करने से हम पाप करते हैं ऐसा करके और वैष्णव धर्म पर कलंक लगाते हैं।

१५—परंतु कुछ लोग अस्पृश्यता और वर्णाश्रम इन दोनों को एक ही चीज समझते मालूम होते हैं। मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार वर्णाश्रम धर्म है, शाश्वत है, व्यापक है, प्रकृति के अनु-कूल है और व्यवहार की व्यवस्था है। हिन्दू-धर्म का यह एक शुद्ध बाह्य स्वरूप है।

वर्ण और आश्रम

"आज सबेरे मुझसे एक सवाल पूछा गया था कि अस्पृश्यता के साथ वर्णाश्रम धर्म का क्या सम्बन्ध है? यानी वर्णाश्रम धर्म पर मैं अपने कुछ विचार कहूँ। जहाँ तक मुझे हिन्दू-धर्म से परिचय है, मेरे जानते 'वर्ण' का अर्थ अत्यन्त सहज है। इसका अर्थ है कि हम सब अपने वंश और परंपरा-गत काम को सिर्फ जीविका के लिए ही, अगर वह नीति के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध न होवे तो, करें। अगर हम सभी धर्मों में बतलाये मनुष्य के लक्षण को मानें तो यह हमारे जीवन का नियम है। परमात्मा की सारी सृष्टि में एक मनुष्य ही ऐसा बनाया गया है जो उसे पहचाने। इसलिए मनुष्य-जीवन का उद्देश्य दिन-दिन अधिकाधिक धन जमा करना नहीं है बल्कि उसका प्रधान काम है दिन-दिन अपने बनानेवाले के और भी निकट पहुँचना और इसी परिभाषा से हमारे प्राचीन ऋषियों ने हमारे जीवन का यह नियम ढूंढ निकाला था। आप समझ सकेंगे कि अगर हम सभी इस वर्ण-धर्म का पालन करें तो हमारी सांसारिक अभिलाषायें मर्य्यादित हो जायँगी और हमारी शक्ति उस काम के लिए मुक्त हो

जायगी जिसके जरिये हम परमात्मा की खोज कर सकते हैं। आप तुरन्त ही देखेंगे कि आज दुनिया में होने वाले उन कामों के, जो हमारा ध्यान खींच रहे हैं, दश में नौ हिस्सों का कोई मतलब ही नहीं रहेगा; वे छूट जायेंगे। तब आप यह कह सकेंगे कि आज जो वर्ण-धर्म हम पाल रहे हैं, वह मेरे बतलाये वर्ण-धर्म का अत्यन्त भ्रष्ट स्वरूप है। और बेशक वह ऐसा ही है मगर जिस तरह असत्य को ही सत्य के रूप में प्रचार पाते देखकर हम सत्य से घृणा नहीं करने लगते, असत्य में से सत्य को ढूंढ़ निकालते हैं और उसे पकड़े रहते हैं उसी तरह 'वर्ण-धर्म' के नाम से प्रचलित उसके भ्रष्ट स्वरूप को नष्ट करके, हिन्दू समाज को इस बुरी स्थिति से शुद्धि कर सकते हैं।

"मैंने आपको जो बतलाया है, उसमें से 'आश्रम' का आना जरूरी है मगर आज अगर 'वर्ण-धर्म' भ्रष्ट हो गया है तो 'आश्रम-धर्म' तो नष्ट ही हो गया है। आश्रम का अर्थ है मनुष्य के जीवन के चार विभाग और मैं चाहता हूँ कि आज जिन विद्यार्थियों ने थैली दी है वे कह सकते कि हम पहले आश्रम के नियमों का पालन करते हैं। हम मन, बचन, काया से ब्रह्मचारी हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम का नियम है कि उसका पूर्ण पालन करने के बाद ब्रह्मचारी दूसरे यानी गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सकते हैं पर इसके लिए कम से कम पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन कर लेना जरूरी है।

और चूँकि हिन्दू-धर्म की सारी कल्पना ही मनुष्य को अच्छा बनाने की, उसे अपने सृष्टि-कर्त्ता के निकट पहुँचाने की है, इसलिए ऋषियों ने गृहस्थाश्रम की भी एक मर्यादा बांध दी और हम पर वानप्रस्थ और संन्यास का बन्धन रक्खा। मगर आज सारे हिन्दुस्थान में एक भी सच्चे ब्रह्मचारी, सच्चे गृहस्थ को ढूँढ़ निकालना असम्भव है, वानप्रस्थी और संन्यासी की तो कोई बात ही नहीं है। हम अपनी बुद्धिमत्ता में भले ही इस योजना पर हँस लेवें। मगर मुझे तो इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दू-धर्म की सफलता का यही एक कारण है। हिन्दू-सभ्यता के देखते-देखते मिश्र, असीरिया और बैबिलोनिया की सभ्यताएँ मर मिटीं। ईसाई सभ्यता तो अभी सिर्फ दो हजार वर्ष की ही है, इस्लामी सभ्यता तो अभी कल की है। दोनों महान् हैं, मगर मेरी नम्र सम्मति में अभी बन ही रही हैं। ईसाई यूरोप ईसाई बिलकुल नहीं रह गया है; वह अँधेरे में टटोल रहा है, और मेरी राय में उसी तरह इस्लाम को अपने गुप्त रहस्य का पता नहीं चला है, और आज इन तीनों धर्मों में एक तरह की बड़ी लाभकारी, पर साथ ही साथ अत्यन्त हानिकारक भी, होड़ चल रही है। जैसे-जैसे साल पर साल बीतते जाते हैं, मेरा विश्वास बढ़ता जाता है कि वर्ण-धर्म ही मनुष्य का जीवन-धर्म है और ईसाई और इस्लाम धर्म के लिए भी उतना ही जरूरी है जितना

कि हिन्दू धर्म के लिए,जिसकी रक्षा इसी से हुई है। इसलिए आज जैसा की दक्षिण में कहने की कुछ लोगों के लिए चाल पड़ गई है, मैं यह विश्वास करने से इन्कार करता हूँ कि 'वर्णाश्रम' हिन्दू धर्म का काल साबित हुआ है। मगर इसका यह अर्थ जरा भी नहीं है कि हम या आप 'वर्णाश्रम धर्म' के इस भ्रष्टाचार को एक क्षण के लिए भी सहन करें या उस पर रहम करें। वर्णा-श्रम और जाति में कोई मेल नहीं है। जाति तो जरूर ही हिन्दू-धर्म पर एक बोझ है और, जैसा कि मैंने बतलाया है, अस्पृश्यता वर्णाश्रम धर्म पर लगी हुई जंग है; यह तो उसमें उगी हुई जंगली घास है जिसे हमें उसी प्रकार नोच फेंकना चाहिए जैसे कि हम जौ या मकई के खेतों में से जंगली घास को उखाड़ फेंकते हैं। वर्ण के इस विचार में बड़प्पन या छुटपन का कोई ख्याल ही नहीं है। अगर मैं हिन्दू धर्म का ठीक अर्थ समझता हूँ तो सभी जीव समान हैं और एक हैं। इसलिए यह ब्राह्मणों की शेखी है कि वे अपने को और तीनों वर्णों से ऊँचा मानते हैं। यह तो प्राचीन काल के ब्राह्मण नहीं कहते थे। उनका आदर इसलिए नहीं होता था कि वे अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बने फिरते थे, बल्कि इसलिए कि बिना किसी बदले की जरा भी आशा के वे सेवा करते जाने का दावा पेश करते थे। वे धर्माध्यक्ष जो आज ब्राह्मण बने फिरते हैं और धर्म का भ्रष्टाचार करते हैं, हिन्दू धर्म के पालक नहीं हैं।

जानबूझ कर या अनजाने, वे उसी पेड़ की जड़ में कुल्हाड़ी मार रहे हैं जिस पर वे बैठे हैं और जब वे कहते हैं कि शास्त्रों में अस्पृश्यता की आज्ञा है, इतनी दूरी पर अन्त्यज के आ जाने से सवर्ण हिन्दू अपवित्र हो जाते हैं तो मुझे यह कहने में कोई उज्र नहीं होता कि वे अपने धर्म को झूठा बना रहे हैं, वे हिन्दूधर्म का उलटा अर्थ बतला रहे हैं। शायद अब आप हिन्दू सज्जन समझ सकेंगे कि आपको क्यों कमर कस कर खड़े हो जाना चाहिए और इस पाप को दूर करना चाहिए। आपको एक प्राचीन हिन्दू राज्य की प्रजा होकर सुधार में आगे रहने का गर्व करना चाहिए । जहाँतक मैं वातावरण को समझ सकता हूँ, अगर आप सुधार को सच्चे दिल से जी-जान लगाकर करें तो यह घड़ी बड़ी मंगलमय है ।"

वैष्णव धर्म और अस्पृश्यता

जो मनुष्य हिन्दुस्थान में हिन्दूकुल में पैदा होकर वेद, उपनिषद् पुराणादि ग्रन्थों को धर्मग्रन्थ की तरह मानते हैं; जो मनुष्य सत्य, अहिंसा आदि पाँच यमों के सम्बन्ध में श्रद्धा रखते हैं और उनका यथाशक्ति पालन करते हैं; जो मनुष्य यह मानता है कि आत्मा है, परमात्मा है, आत्मा अजर और अमर होने पर भी देहाभ्यास से अनेक योनियों में आती जाती रहती है, वह मोक्ष को प्राप्त होती है और मोक्ष परमपुरुषार्थ है, और जो वर्णाश्रम और गोरक्षा धर्म को मानता है, वह हिन्दू है। जो व्यक्ति उक्त सब बातों को मानने के सिवा वैष्णव सम्प्रदाय के माननेवाले कुटुम्ब में पैदा हुआ हो और जिसने उस सम्प्रदाय का त्याग न किया हो, जिसमें नरसिंह मेहता के 'वैष्णवजन' नाम के निम्नलिखित भजन में वर्णित गुण थोड़े बहुत अंश में भी मौजूद हों और जो उन गुणों को पूर्णरूप से प्राप्त करने का प्रयत्न करता हो, वह वैष्णव है।

२—नरसिंह मेहता का वह भजन इस प्रकार है—

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे,
पर दुःखे उपकार करे तो ये, मन अभिमान न आणे रे।
सकल लोक मां सहुने बन्दे, निन्दा न करे केनी रे,
वाच, काछ, मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेनी रे।
सम दृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मात रे,
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे।
मोह माया व्यापे नहीं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे,
रामनाम शूँ ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।
वण लोभी ने कपट रहित छे, काम, क्रोध निवार्या रे,
भणे नरसैंयो तेनुँ दरशन करतां, कुल एकोत्तेर तार्यां रे।

३—नरसिंह मेहता ने वैष्णव के जो लक्षण बताये हैं; उससे हम देखते हैं कि वह—

(१) दूसरों के दुःख का निवारण करने वाला होता है,
(२) ऐसा करते हुए निरभिमानी होता है,
(३) सब की स्तुति करता है,
(४) किसी निन्दा नहीं करता,
(५) वचन का पूरा होता है
(६) लंगोट का पक्का होता है
(७) मन को दृढ़ रखता है
(८) समदृष्टि होता है
(९) तृष्णा-रहित होता है
(१०) एकपत्नीव्रत का पालन करता है,

(११) सत्यव्रत पालता है,
(१२) अस्तेय का पालन करता है,
(१३) मायातीत होता है,
(१४) इससे वीतराग होता है,
(१५) राम नाम में तल्लीन होता है,
(१६) इसीसे वह पवित्र होता है,
(१७) लोभ-रहित होता है,
(१८) कपट-रहित होता है,
(१९) काम-रहित होता है और
(२०) क्रोध-रहित होता है।

४—इनमें वैष्णव शिरोमणि नरसिंह मेहता ने अहिंसा को प्रथम स्थान दिया है, अर्थात् उनके मत से जिनके हृदय में प्रेम नहीं है वह वैष्णव नहीं है। जो सत्य का पालन नहीं करता जिसने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं की, वह वैष्णव नहीं है। अपनी प्रभाती में उन्होंने सिखाया है कि वेद पढ़ने से, वर्णाश्रम का पालन करने से और कण्ठी बांधने अथवा तिलक लगाने से कोई वैष्णव नहीं हो जाता। ये सभी पापमूल हो सकते हैं। पाखण्डी माला पहन सकता है, तिलक लगा सकता है, वेद जान सकता है और मुँह से राम नाम जप सकता है। किन्तु पाखण्डी रहकर सत्याचरणी नहीं हो सकता; पाखण्डी होते हुए दूसरों का दुःख निवारण नहीं कर सकता,

और पाखण्डी बने रहते वचन, लंगोट और मन का पक्का नहीं रक्खा जा सकता ।

५—इन सिद्धान्तों की ओर मैं सबका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, क्योंकि अन्त्यजों के सम्बन्ध में मेरे जैसे विचार तो बहुत से लोगों के हैं, उन्हें अनेक लोग छूते भी हैं; किन्तु मुझ पर कई लोगों को रोष आता है। उसका कारण तो मैं यह समझता हूँ कि वे मुझे दूसरी तरह से मर्यादा धर्म का पालन करने वाला और अच्छा समझते हैं, और इसलिए अन्त्यजों के सम्बन्ध में जो विचार रखता हूँ, वे उन्हें भूल मानकर उन्हें बर्दाश्त नहीं कर सकते। उनकी यह धारणा है कि मेरे ये विचार स्वराज्य-सम्बन्धी अपनी गति को रोकते हैं। कोई-कोई तो यह भी मानते हैं कि मैंने अपने हाथों आपत्ति मोल लेकर अपनी हठ से स्वराज्य की नाव को तूफ़ान में डाल दिया है।

६—इसके सिवा बहुत से लोगों की यह धारणा है कि यदि मैं राष्ट्रीय पाठशालाओं में से अन्त्यजों का बहिष्कार न करूँगा, तो स्वराज्य आन्दोलन की गति उलटे रास्ते चली जायगी। किन्तु मैं मानता हूँ कि यदि मुझ में जरा भी वैष्णवपन शेष होगा, तो अन्त्यजों का त्याग न करके मिलने वाले स्वराज्य को त्याग करने की शक्ति भी ईश्वर मुझे देगा।

७—जब कि रेलगाड़ी में, होटलों में, अदालतों में, मिलों में

अस्पृश्यता बाधक नहीं होती, तब पाठशालाओं में, जहां कि शिक्षक की निगरानी में, स्वच्छता के नियमों का पालन करके ही बैठा जा सकता है, अस्पृश्यता किस प्रकार क़ायम रक्खी जा सकती है ? मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि को हम अस्पृश्य नहीं मानते, अस्पृश्य मानकर हम उन्हें भाई नहीं बना सकते; तब फिर जो हिन्दू-धर्म का ही एक अंग हैं, उन राष्ट्रीय पाठ-शालाओं में, जिनमें कि अन्य जातियाँ आ सकती हैं, अन्त्यजों को अस्पृश्य किस प्रकार माना जा सकता है ?

८—सच्ची हक़ीक़त होने के कारण ही मुझे यह प्रस्ताव पसन्द है कि जिन पाठशालाओं में अन्य वर्ण और वर्णों के बालक आते हैं, उनमें अन्त्यजों का बहिष्कार न होना चाहिए।

९—वैष्णव धर्म का मूल दया है। अन्त्यजों के प्रति हमारा जो बरताव है, उसमें तो मैं दया की एक बूँद तक नहीं देखता। हम में से कई तो अन्त्यजों को गाली दिये बिना बुलाते ही नहीं। भूले-चूके यदि अन्त्यज अपने डिब्बे में आ बैठता है, तो उस पर गालियों की बौछार होने लगती है। उन्हें हम पशुओं की तरह जूठा अन्न देते हैं। यदि उन्हें बुखार चढ़े या सांप काट खाय तो हमारे वैद्य-डाक्टर उनके इलाज के लिए नहीं जाते। यदि कोई जाने भी लगे, तो हम से जहां तक हो सकता है, हम उसे रोकते हैं! अन्त्यज के रहने के लिए ख़राब से ख़राब

मकान दिये जाते हैं। न उनके लिए रोशनी की सुविधा होती है न रास्तों की। उनके लिए कुँए नहीं होते और सार्वजनिक कुओं, धर्मशालाओं और विद्यालयों का वे उपयोग नहीं कर सकते। उनके पास से कठिन से कठिन सेवा लेकर हम उन्हें कम से कम मजदूरी देते हैं। उनके लिए तो सिर पर आसमान और पैरों तले धरती है। क्या यह वैष्णव धर्म की निशानी है? इसे दया-धर्म कहा जाय अथवा क्रूरता धर्म? जिस अंग्रेजी सरकार के साथ हमने असहयोग युद्ध छेड़ रखा है, वह भी इस हद तक हमारा तिरस्कार नहीं करती। किन्तु हम तो अन्त्यजों के सम्बन्ध में प्रचलित अपनी डायरशाही को धर्म मानकर उसका पोषण करते हैं।

१०—अस्पृश्यता को बुद्धि ग्रहण कर नहीं सकती। वह सत्य का, अहिंसा का विरोधी धर्म है, इसलिए धर्म ही नहीं। हम उच्च और दूसरे नीच है यह विचार ही नीच हैं। जिस ब्राह्मण में शूद्र का—सेवा का—गुण नहीं वह ब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण तो वही है, जिसमें क्षत्रिय के, वैश्य के और शूद्र के सब गुण हों और इनके सिवा ज्ञान हो। शूद्र कोई ज्ञान से सर्वथा रहित अथवा विमुख नहीं होते। उनमें सेवा प्रधान है। वर्णाश्रम धर्म में ऊँच-नीच की भावना के लिए अवकाश ही नहीं। वैष्णव सम्प्रदाय में तो भंगी, चाण्डाल आदि तर गये हैं। जो धर्म संसार

मात्र को विष्णु समान जानता है, वह अन्त्यज को विष्णु से रहित किस प्रकार मान सकता है ?

११—मेरा नम्र विश्वास है कि अन्त्यजों के सम्बन्ध का मेरा भाव मेरे वैष्णव धर्म को दीप्त करता है; उसमें मेरी शुद्ध दया व्यापक है; उससे मेरी मर्यादा की शुद्धता सिद्ध होती है।

१२—कई वैष्णव यह समझते हैं कि मैं तो वर्णाश्रम धर्म का लोप कर रहा हूँ। किन्तु मेरा तो विश्वास है कि मैं वर्णाश्रम धर्म को मलिनता में से निकाल कर उसका सच्चा स्वरूप प्रकट कर रहा हूँ। मैं कुछ रोटी-पानी अथवा बेटी-व्यवहार की हिमायत नहीं कर रहा हूँ। मैं तो इतना ही कहता हूँ कि किसी भी मनुष्य को छूने से हम पाप करते हैं, इस भावना में ही पाप भरा हुआ है।

१३—रजस्वला स्त्री की अस्पृश्यता का उदाहरण देकर जो अन्त्यजों की अस्पृश्यता का औचित्य सिद्ध किया जाता है उसे मेरी बुद्धि तो अज्ञानता ही मानती है। रजस्वला बहिन को छू जाने में हम पाप नहीं मानते; वरन् उसे शारीरिक शौच का भंग मान कर स्नान कर लेने से शुद्ध हो जाते हैं। यदि अस्पृश्य भाई ने गन्दा काम कया हो, उसे, जबतक वह स्नान न कर ले अथवा दूसरी तरह स्वच्छ-शुद्ध न हो ले, तब तक स्पर्श न करना अथवा यदि छू लिया तो स्नान कर लेना यह बात तो मैं

ामझ सकता हूँ; किन्तु अन्त्यज-कुल में पैदा हुए का सर्वथा त्याग
ारना धर्म है यह बात मेरी आत्मा स्वीकार कर ही नहीं सकती।

१४—मैं तो मानता हूँ कि हमने जैसा बोया है, वैसा ही
ल पा रहे हैं। अन्त्यजों का तिरस्कार कर हम सारे संसार के
िरस्कार के पात्र बने हैं।

१५—फिर अन्त्यज किसे कहेंगे ? क्या बुनकर अर्थात्
ुलाहे अछूत हैं ? क्या चमड़े के जो लखपति व्यौपारी हैं वे अछूत
? जिसने चमार का काम छोड़ दिया है, जो भंगी मोटर
लाता है, मिल में काम करता है, सदैव नहाता-धोता है, क्या
ह भी अस्पृश्य है ?

१६—लेकिन मैं बहस क्यों करूँ ? जिसे आप अस्पृश्य
ानते हैं, उसे छूने में आप जबतक पाप मानते हैं तब तक नहाना
ा तो नहा लें; किन्तु मेरी विनय तो यह है कि जिस प्रकार रज-
ाला धर्म में आई हुई माता का आप तिरस्कार नहीं करते, वरन्
सकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार अन्त्यज का तिरस्कार न करके
सकी सेवा करिये। उनके लिए कुएँ खुदाइए, पाठशालायें खुल-
ाइए, वैद्य भेजिए, दवा दिलाइए, और उनके दुःख-दर्द में शरीक
ाकर उनकी आत्मा की आशीष लीजिए। उन्हें अच्छी जगह
खिए, अच्छी मजदूरी दीजिए, उनका सम्मान कर, उन्हें समझा
र अपना छोटा भाई समझ कर उनसे मद्यपान, गो-मांसाहार

इत्यादि छुड़वाइए। जो छोड़ दें उन्हें प्रोत्साहन दीजिए। उन में जो कुटेव अर्थात् बुरी आदतें पड़ी हों, उन्हें प्रेम-पूर्वक छुड़वाइए, उन्हें स्नानादि के नियम बताइए; मांसाहार छोड़ने के लिए समझाइए, गो-रक्षा-धर्म बताइए और इन सब बातों के लिए उनके जितने स्पर्श की आवश्यकता है, उतना ही आवश्यक है।

१७—कई लोग यह प्रश्न करते हैं कि यदि ढेड़-भंगी पढ़ने-लिखने लगेंगे तो नौकरी अथवा व्यवसाय में शामिल होना चाहेंगे, तब उनका काम कौन करेगा? यह प्रश्न ही अस्पृश्यता को हम इस समय जिस तरह समझते हैं, उसकी भयंकरता को प्रकट करता है। मैं यह नहीं चाहता कि भंगी अपना धन्धा छोड़ दे। वरन् मेरा आशय तो यह है कि मैला उठाने का धन्धा वैष्णव को शोभा देने जैसा पवित्र और आवश्यक है। इस धन्धे के करनेवाले हल्के अथवा नीचे दर्जे के नहीं, वरन् दूसरा धन्धा करने वालों के बराबर के अधिकारी हैं और उन की प्रवृत्ति से देश रोग से बचता है, इसलिए वे वैद्य-डाक्टरों की तरह सम्माननीय हैं।

१८—अन्त्यजों के प्रति सामान्य बर्ताव में केवल द्वेष ही भरा है। वे पढ़-लिख लेंगे, तो भंगीपना न करेंगे, यह कल्पना ही मुझे तो अनुचित प्रतीत होती है। किन्तु ऐसी कल्पना के कारण भी हम ही हैं। भंगी के धन्धे को हम नीच मानते हैं किन्तु सच

पूछिए तो यह तो शौच का कार्य होने के कारण पवित्र है । माँ बच्चे का मैला उठाती है, इसलिए वह अधिक पवित्र मानी गई है। रोगी की साध-सम्भाल करने वाली जो बहिन अत्यन्त दुर्गन्ध वाली वस्तुएँ उठाती है,उसका हम सम्मान करते हैं। तब,जो सदैव हमारे पाखाने साफ़ रख कर हमें निरोगी रहने में सहायता करते हैं, उनकी हम कैसै पूजा न करें ? उन्हें नीचा बनाकर हम स्वयं नीच बने हैं । किसी को कुएँ में डालने वाला स्वयं भी कुएँ में गिरता है । इसलिए हमें भंगी इत्यादि जातियों को नीच समझने का अधिकार ही नहीं है ।

१९—भोजा भगत मोची थे, फिर भी हम उनके भजन आदरपूर्वक गाते हैं और उनकी पूजा करते हैं। रामायण का कौन-सा पढ़नेवाला निषाद की रामभक्ति देख कर उसकी पूजा नहीं करता ? फिर भङ्गी इत्यादि यदि अपना धन्धा छोड़ें तो हमें उनका विरोध करने अथवा घबराने का कोई कारण नहीं । जब तक हम किसी से बलपूर्वक कोई काम करवाते रहेंगे, तब तक हम स्वराज्य के योग्य बन नहीं सकते । हमें अपने पाखाने साफ़ करना सीख लेना चाहिए । जब हम अपने पाखाने मैले रखने में शर्मावेंगे, तब वे हमारे पठन-गृह की तरह साफ़ रहेंगे । पाखाने में रहनेवाली मैल, उसकी दुर्गन्ध, और उससे उत्पन्न होने वाली दूषित वायु हमारी सभ्यता को कलङ्कित और आरोग्यता-

सम्बन्धी हमारे अज्ञान को सूचित करती है। हमारे पाखानों की हालत, अन्त्यजों के प्रति हमारी मलिन प्रवृत्ति का प्रमाण है और अपने में पैदा होने वाले अनेक रोगों का कारण है। दूसरी जाति वालों के संसर्ग से हम खराब अथवा अपवित्र हो जायँगे, यह बात हमारी निर्बलता की सूचक है। संसार में संसर्ग तो होता ही रहा है, फिर भी हम निर्दोष बने रहें, इसी में धर्म की परीक्षा है। भंगी इत्यादि जातियों को स्वच्छ बनाना, उन्हें आगे लाना, उनका सम्मान करना दया-धर्म है। ऐसा करने में उनके किसी के साथ खाने-पीने की आवश्यकता नहीं, वरन् हृदय का भाव शुद्ध करने की ही जरूरत है।

२०—अन्त्यजों को हमने बहिष्कृत किया, उन्हें अपना जूठा-सड़ा-गला अन्न खाने को दिया और ऊपर से यह माना कि ऐसा करके हमने पुण्य कार्य किया है। हमने कम-से-कम मजदूरी देकर उन्हें भिखमंगा बनाया। उनसे अपना कचरा उठवाया ही नहीं, वरन् खुलवाया भी। अपना उतार उनका शृङ्गार बनाया। परिणाम यह हुआ है कि अब अन्त्यजवर्ग भीख मांगकर खुश होते हैं, जूठन लाकर गर्व करते हैं। सड़ा हुआ अन्न जब उनके घर में पहुँचता है तो उनके बच्चे खुशी से नाचते हैं। जिसके गुलाम अपनी गुलामी में पनपते हों, समझना चाहिए कि उसके पाप की पराकाष्ठा हो गई। यही बात हिन्दुओं के लिए हुई है।

२१—एक अन्त्यज बालक पर अच्छा बनने के लिए, जूठा खाना खाने से इन्कार करने पर मार पड़ी। वह अपना बालक था और वह कितना पवित्र था! मार खाने पर भी उसने मांस खाने से इन्कार किया। ऐसे बालक को जो अस्पृश्य मानता हो, उसे क्या कहा जाय? वह स्वराज्य किस प्रकार भोग सकता है? वह किसकी रक्षा करेगा?

२२—किन्तु इस समय मैं अन्त्यजेतर माता-पिताओं को अस्पृश्यता के विषय में कुछ नहीं कहना चाहता। क्या वे अंत्यज बन्धुओं पर समान दया नहीं करेंगे? क्या उन्हें सड़ा-गला, मैला-जूठा अन्न देने का भी कोई शास्त्र है? क्या उन्हें कम-से-कम मजदूरी देने का भी कोई शास्त्र है? प्रत्येक माता-पिता से मेरी प्रार्थना है कि वह—

(१) पकाया हुआ अन्न न दें।

(२) केवल सूखा, बिना पकाया हुआ अनाज दें।

(३) उन्हें विदेशी अथवा मैले, सड़े, गले कपड़े न दें।

(४) उनका वेतन कम हो तो बढ़ावें।

(५) जो कुछ भी दें प्रेम-पूर्वक दें।

हिन्दू धर्म का रहस्य

[त्रिवेन्द्रम में दिये गाँधीजी के भाषण से]

हिन्दू-धर्म और अस्पृश्यता

"पहले-पहल ट्रावनकोर आने के बाद मैं इस मनोहर प्रदेश में बार-बार आने की आशा करता रहा हूँ। इसका सबसे सुन्दर दृश्य, कन्याकुमारी का ट्रावंकोर में होना और यहाँ की बहिनों की सादगी से मैं जब यहाँ पहले-पहल आया था तभी मुग्ध हो गया था। मगर इन सभी विचारों से मुझे जो आनन्द मिला, वह सब इस विचार से चौपट हो गया कि ट्रावंकोर में अस्पृश्यता ने सबसे विकराल रूप धारण किया है। इस ख़याल से मुझे हमेशा तकलीफ़ पहुँची है कि एक अत्यन्त प्राचीन हिन्दूराज्य में, जो कि शिक्षा में हिन्दुस्तान के सभी स्थानों से आगे बढ़ा हुआ है, यह पाप मौजूद है। और अस्पृश्यता की इस मौजूदगी से मुझे इतना कष्ट इस कारण

पहुँचा है कि मैं अपने को हिन्दू-धर्म के रहस्य से ओत-प्रोत, सच्चा से सच्चा हिन्दू मानता हूँ। आज जैसी अस्पृश्यता मानी और बरती जाती है, उसके लिए मुझे हिन्दूशास्त्र कहे जानेवाले ग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं मिलता। मगर जैसा कि मैंने दूसरी जगहों में बार-बार कहा है, अगर मैंने देखा कि हिन्दूधर्म में सचमुच ही अस्पृश्यता का आदर है तो मुझे हिन्दूधर्म को ही त्याग देने में कोई हिचक नहीं होगी। क्योंकि मैं मानता हूँ कि अगर धर्म के नाम तक की भी लाज रखनी है तो धर्म को नीतिशास्त्र के मौलिक सत्यों के विरुद्ध नहीं जाना चाहिए। मगर चूँकि मेरा विश्वास है कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंश नहीं है, मैं इस धर्म का पल्ला पकड़े हुए हूँ किन्तु इस विकराल पाप से दिनों-दिन अधिकाधिक अधीर होता जाता हूँ। इसलिए जब मैंने देखा कि ट्रावंकोर में इस सवाल ने हलचल पैदा कर दी है,मुझे इसमें पड़ने में कोई उज्र नहीं हुआ। अगर मैंने इस सवाल को अपने हाथ में लिया है तो राज्य को किसी प्रकार कठिनाई में डालने की नीयत से नहीं। क्योंकि मेरा विश्वास है कि श्रीमती महारानी साहिबा अपनी प्रजा की हितचिन्तना किया करती हैं। वे इन बातों में सुधारक भी होने का दावा करती हैं, और यह कहना कोई गुप्त बात प्रकट करना नहीं होगा कि वे चाहती हैं कि जितनी जल्द हो सके यह पाप दूर हो जाय।

राज्य और प्रजा के कर्तव्य

मगर सरकार के द्वारा सुधार की बातों में पथ-प्रदर्शन होने से पार नहीं पड़ सकता। सरकार तो अपने स्वभाव से ही प्रजा की प्रकट इच्छा का अर्थ लगाकर उसे पूरा करने वाली है और अत्यन्त निरंकुश सरकार भी अपनी प्रजा पर वे सुधार नहीं लाद सकती जिसे प्रजाजन स्वीकार न कर सकते हों। इसलिए अगर मैं ट्रावंकोर राज्य की प्रजा होता तो मैं इसी से पूरा-पूरा सन्तुष्ट हो जाता कि मेरी सरकार इस सुधार को उतनी ही जल्दी स्वीकार करने को तैयार है जितनी कि प्रजा। मगर इस एक बात में संतोष प्राप्त करके मैं तबतक चैन नहीं लेता जब तक मैं इस सुधार की बात को गाँव-गाँव में, एक-एक आदमी तक न पहुँचा देता। सुव्यवस्थित और अविराम आन्दोलन ही तो सच्ची उन्नति का प्राण है और अगर आपकी जगह मैं होता तो जबतक यह सुधार हो नहीं लेता सरकार को चैन की नींद सोने नहीं देता। सरकार को चैन न लेने देने का मतलब यह नहीं है कि उसे कठिनाई में डालता। बुद्धिमान सरकार तो ऐसे किसी आन्दोलन के सहारे, सरगर्मी और प्रोत्साहन का स्वागत करती है, और किसी ऐसे सुधार को करने में जिसे सरकार चाहती हो, उसकी सरकार को जरूरत भी है। मैं जानता हूँ कि पिछली बार जब मैं यहाँ आया था मुझसे कहा गया था कि सभी सवर्ण हिन्दू सभी प्रकार की

अस्पृश्यता को दूर करने का सुधार करने के लिए अत्यन्त आतुर हैं। मगर मुझे भय है कि वे कान में तेल डाल कर ही सोते रह गये। उन्होंने अपनी इच्छा को काम का रूप नहीं दिया है, और मेरा विश्वास है कि राज्य के हर एक हिन्दू का कर्त्तव्य है कि वह अपने कर्त्तव्य को समझे और अपने दूसरे भाइयों को भी समझावे। और मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि अगर सवर्ण हिन्दू एक स्वर से कहें तो अस्पृश्यता का यह असुर क्षणमात्र में दूर हो जायगा। अपनी सुस्ती और आलस्य का दोष सरकार के माथे मढ़ना अनुचित होगा।

अस्पृश्यता

[बेलगांव कॉंग्रेस के अध्यक्ष स्थान से दिये गये गांधीजी के भाषण से]

एक और रुकावट जो कि स्वराज्य के रास्ते में खड़ा है-अस्पृश्यता है। इसका निवारण उसी क़दर जरूरी है जिस क़दर कि हिन्दू-मुस्लिम एकता का क़ायम होना। यह सवाल सिर्फ हिन्दुओं से ही ताल्लुक़ रखता है। और हिन्दू तब-तक स्वराज्य का कोई दावा नहीं कर सकते और न उसे पा सकते हैं जब तक कि वे अपने दलित भाइयों को आजादी न देदें। उनको दबाकर वे अपनी किश्ती खुद डुबा बैठ हैं। इतिहासकार हमें बताते हैं कि आर्यजाति के आक्रमणकारियों ने हिन्दुस्तान के मूल-निवासियों से अगर ज्यादा बुरा नहीं तो कम से कम बिल्कुल वैसा ही सलूक किया जैसा कि हमारे अंग्रेज आक्रमणकारी आज हमारे साथ कर रहे हैं। अगर यह बात सचमुच ऐसी ही है तो हमने जो एक अछूत जाति ही दुनिया में बना डाली है, उसका यह ठीक प्रतिफल अपनी मौजूदा गुलामी के रूप में हमें मिला है। यह एक ईश्वरीय कोप ही हम पर हुआ है, जिसके कि हम बिल्कुल योग्य हैं। जितनी ही जल्दी हम इस कलङ्क को अपने सिर से मिटा देंगे उतना ही अच्छा हम हिन्दुओं के लिए होगा। लेकिन हमारे धर्माचार्य कहते हैं कि अस्पृश्यता तो ईश्वर-निर्मित है। मेरा दावा है कि मैं भी हिन्दू मजहब का कुछ ज्ञान रखता हूँ। मैं निश्चय के साथ कहता हूँ कि धर्माचार्य इस

बात में ग़लती पर हैं। यह कहना कि ईश्वर ने मनुष्य-जाति के किसी हिस्से को अछूत क़रार देने के लिए पैदा किया है, मानों ईश्वर की शान को धब्बा लगाना है। महासभा के हिन्दू-सदस्यों का यह काम है कि वे जितनी जल्दी हो सके इस दीवार को ढा दें। वाइकोम के सत्याग्रही हमें इसका रास्ता दिखा ही रहे हैं। वे अपने आन्दोलन को दृढ़ता और सौम्यता के साथ चला रहे हैं। उनमें धीरज, हिम्मत और श्रद्धा है। जिस किसी हलचल में ये गुण पाये जाँय उसे दुनिया में कोई नहीं रोक सकता। फिर भी मैं अपने हिन्दू भाइयों को आगाह कर देना चाहता हूँ कि वे उस लहर से अपने को बचावें जोकि इन दलित जातियों को अपने राजनैतिक मतलब गांठने में औजार बनाने की ओर दिखाई देती है। छुआछूत का दूर करना उच्च हिन्दुओं के लिए एक प्रायश्चित्त है जोकि हिन्दू-धर्म के तथा स्वयं अपने प्रति उन पर लाजिम है। जिस शुद्धि की जरूरत है वह अछूतों की नहीं बल्कि ऊँची कहलाने वाली जातियों की है। कोई ऐब दुनिया में ऐसा नहीं है जो ख़ास तौर पर अछूतों के अन्दर हो। मैला-कुचैलापन और आरोग्य-रक्षा के नियमों के ख़िलाफ़ आदतें भी महज उन्हीं के अन्दर नहीं हैं। अपने को ऊँचा समझने वाले हम हिन्दुओं का अभिमान ही हमें अपने दोषों के प्रति अन्धा बना देता है और अपने बेचारे दलित, पीड़ित

भाइयों के दोषों को राई का पहाड़ बना कर दिखाता है जिन्हें कि हम दबाते चले आये हैं और अब भी जिनकी गर्दन पर सवार रहते हैं। भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की तरह जुदा-जुदा धर्म भी इस वक्त कसौटी पर चढ़ाये जा रहे हैं। ईश्वरीय अनुग्रह और प्रकाश का दान किसी एक क़ौम या जाति के लिए नहीं है। वह बिना भेदभाव उन सब बन्दों को प्राप्त है जोकि उसके दरबार में हाजिर रहते हैं। उस क़ौम और उस मजहब का नामोनिशां दुनियां के सतह से मिटे बिना न रहेगा जोकि अपना दारोमदार बेइन्साफ़ी, झूठ और पशुबल पर रखती है। ईश्वर प्रकाश है, अन्धकार नहीं। वह प्रेम है, घृणा नहीं। वह सत्य है, असत्य नहीं। एक ईश्वर ही महान् है। हम उसके बन्दे उसकी चरणरज हैं; आओ, हम सब मिलकर नम्र बनें और ईश्वर के छोटे से छोटे बन्दे के भी इस दुनिया में रहने के हक़ को तसलीम करें। श्रीकृष्ण ने फटे-पुराने चिथड़े पहने हुए सुदामा का वह स्वागत-सत्कार किया जो कि किसी का नहीं किया था। गोस्वामी तुलसीदासजी का कथन है—

'दया धर्म का मूल है पाप-मूल अभिमान'

स्वराज्य हमें चाहे मिले वा न मिले पर इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दुओं को खुद अपने दिल की शुद्धि करनी होगी। तभी वे वैदिक धर्म के तत्त्वों के पुनरुज्जीवन की तथा उन्हें जीती-जागती सूरत में देखने की आशा कर सकेंगे।

अस्पृश्यता और स्वराज्य

एक सज्जन गंभीरता के साथ लिखते हैं—"अस्पृश्यता शब्द मुझे विचित्र मालूम होता है। क्योंकि आम तौर पर स्पृश्य नामक कोई जाति हुई नहीं। बिला जरूरत के शायद ही कोई किसी के बदन को छूता हो। 'अछूत' माने जाने वाले लोगों से भिन्न लोगों में ऐसी प्रथा है कि वे एक दूसरे के पास आने-जाने में बुराई नहीं समझते। बस। परन्तु कोई शख्श जानबूझ कर किसी को नहीं छूता। इसी तरह अगर 'अछूत' अपने काम से काम रक्खें और दूसरे लोग अपने काम से काम रक्खें तो क्या इस जटिल प्रश्न का निबटारा न होगा?

"मुझे विश्वास है कि अस्पृश्यता के पाप को धोने के लिए खास तौर पर 'अछूत' के पास जाकर उसे छूने की जरूरत आप न बतावेंगे। और अगर साक्षात् स्पर्श की आवश्यकता न हो तो इस पाप को 'अस्पृश्यता' के नाम से पुकारने का क्या अर्थ है? आप जो अस्पृश्यता शब्द का प्रयोग करते हैं इससे ऐसा सूचित होता है कि इस बुराई को दूर करने के लिए सरेदस्त छूना जरूरी है। और मैं समझता हूँ कि आपकी इस हलचल पर पुराने विचार के लोग जो आपत्ति करते हैं उसका कारण यही है। मैं

नहीं समझता कि मैं अपने भाई को भी बहुत बार छूता हूँगा। सच पूछिए तो मेरे इस प्रश्न के निबटारे के लिए तैयार रहने पर भी मेरे लिए दूसरे शख्स का छूना ज़रूरी नहीं और फायदेमन्द भी नहीं। इसलिए मेरी राय में 'दूरता' शब्द ही इस समाज की हालत को अधिक सच्चाई के साथ व्यक्त करता है। और जब तक यह दूरता दूर न हो, सहिष्णुता के भाव हमारे हृदय में न उपजें तबतक बाहरी अस्पश्यता की बढ़ती से कुछ लाभ नहीं हो सकता।

फिर इस पाप से स्वराज्य की स्थापना का क्या वास्ता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। हिन्दूसमाज में अनेक दूषण हैं। उनमें एक 'दूरता' भी है। शायद यह सबसे बड़ा हो। परन्तु जब तक समाज अपनी हस्ती रखता है तब तक ऐसे पाप भी ज़रूर क़ायम रहेंगे। क्योंकि कोई समाज बुराई से खाली नहीं। यह बुराई किस तरह स्वराज्य के लिए बाधा-रूप है और आपने किस खयाल से स्वराज्य के योग्य होने की पहली शर्त अस्पृश्यता निवारण को रक्खा है? स्वराज्य मिलने के बाद मौजूदा हालत को हम लोगों की राजी-खुशी से नहीं तो क्या क़ानून बनाकर न सुधार सकेंगे?

हिन्दू-मुसलमान ऐक्य की अनिवार्य आवश्यकता को मैं समझ सकता हूँ, क्योंकि दोनों पक्षवालों के झगड़े से सम्भव है सरकार

फ़ायदा उठावे। और हमारी माँगों को जब तक चाहे, झमेले में डालती रहे। 'अस्पृश्यता' का सामाजिक, धार्मिक और मानवी रूप भी मैं समझ सकता हूँ। परन्तु यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि हम इसको ऐसा राजनैतिक मसला क्यों बना लें जिसके निबटारे के बिना स्वराज्य असम्भव हो जा जाय।"

शब्द के लिए मेरा कोई झगड़ा नहीं। जिस प्रथा के बदौलत हिन्दुओं का एक बड़ा हिस्सा पशु से भी अधम अवस्था को जा पहुँचा है उसके लिए मेरे रोम-रोम में घृणा व्याप्त हो रही है। बेचारे अन्त्यज को—अस्पृश्य शब्द का प्रयोग नहीं करता—यदि अपने रास्ते जाने दिया जाय तो इस सवाल का निबटारा बहुत-कुछ हो सकता है; पर दुःख की बात यह है कि उसे न तो विचारशक्ति है और न उसके लिए कोई रास्ता ही है। क्या पशु के लिए उसके मालिक की मरजी के अलावा कोई विचारशक्ति या रास्ता हो सकता है? अन्त्यज के लिए कोई ऐसा स्थान है जिसे वह अपना कह सके? क्या पंचम (अछूत) के पास कोई ऐसी जगह जिसे वह अपनी समझता हो? जिन सड़कों को वह साफ़ करता है, जिनके लिए वह अपने खून का पसीना बहाकर कर देता है उन्हीं पर वह चलने नहीं पाता। वह औरों की तरह कपड़े तक नहीं पहन सकता। लेखक सहिष्णुता की बात करते हैं। यह कहना कि हम हिन्दू लोग पंचम-सदस्यों के साथ

जरा भी सहिष्णुता का बर्ताव करते हैं, केवल वाणी-व्यभिचार है। एक तो हमने उन्हें नीचे गिरा दिया और फिर उन्हीं के पतन का उपयोग उनके उत्थान के खिलाफ़ करने की धृष्टता हम करते हैं!

मेरे नजदीक स्वराज्य का मतलब है हमारे देश के हीन से हीन लोगों की आजादी। जब कि हम सब लोग दुःखावस्था में हैं तब यदि पंचम के भाग्य न जागें तो जब हम स्वराज्य के नशे में मदमाते हो जायँगे तब उनकी कौन सुनेगा ? यदि हमारे लिए स्वराज्य-प्राप्ति की यह शर्त आवश्यक है कि हम मुसलमानों से मेल कर लें तो यह भी उतना ही आवश्यक है कि इसके पहले कि जरा भी इन्साफ़ या आत्मसम्मान के साथ हम स्वराज्य की बातें करें हम पंचम भाइयों को मिला लें। मुझे इस बात में कुछ भी दिलचस्पी नहीं है कि हिन्दुस्तान की गर्दन से महज अंग्रेजों का जुवा हट जाय। मैं तो हिन्दुस्तान के गले से हर किस्म के जुवे को हटा देने पर तुला हुआ हूँ। मैं नहीं चाहता कि भूत को गद्दी से हटाकर पिशाच को बिठाऊँ। इसलिए मेरे नजदीक तो स्वराज्य के आन्दोलन के मानी हैं आत्मशुद्धि का आन्दोलन।

मैं हारा

कभी-कभी कुछ सज्जन मेरे पास आकर मुझ से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। कहते हैं—"दूसरे लोग अस्पृश्यता के बारे में चाहे कुछ कहते रहें पर आपको तो इसका नाम तक मुँह से न निकालना चाहिए क्योंकि आप धर्म का नाम लेकर बातें करते हैं। इससे लोगों को धोका होता है। अगर धर्मशास्त्रों ने अस्पृश्यता को पाप माना हो तो या तो उन वचनों को पेश करके आप साबित कर दीजिए नहीं तो मैं वेदों के प्रमाणों से यह दिखला सकता हूँ कि उसमें अस्पृश्यता के लिए काफ़ी जगह है। यदि अस्पृश्यता नष्ट हो जाय तो सनातन धर्म का लोप हो जाय।" इस तरह की बातें एक स्वामीजी ने आकर मुझसे कहीं।

सुनकर मैं चौंका। मैंने तो सिर्फ इतना ही कह दिया कि मैं तो वाद-विवाद करने में अपनी हमेशा हार मान लेता हूँ। मैं आपके साथ शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। मैं पहले से ही यह बात क़बूल कर लेता हूँ कि मैं आपके सामने बहस में नहीं टिक सकता। फिर भी मैं यह कहता रहूँगा कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म में महा पाप है। पर इससे स्वामी जी को सन्तोष न हुआ।

हाँ, मैंने अपने दिल में पूरा संतोष मान लिया। मैं तो यह संक्षिप्त जवाब देकर पार हुआ। जब स्वामी जी आये तब मैं यंगइंडिया और नवजीवन के पाठकों को रिझाने के नित्यकर्म में लीन था। एक क्षण भी बातचीत में लगाने के लिए तैयार न था इसलिए 'न ना' मानो मुझे रामबाण दवा मालूम हुई। हमारे बड़े-बूढ़ों ने हमें बहुत कुछ अनुभव-शास्त्र सिखा रक्खा है। वह मेरे लिए बस था। "एक नन्ना छत्तीस रोग हरता है" इस कहावत का प्रयोग मैंने बहुत बार किया है। और मैं तो समझता हूँ कि एक नन्ना छत्तीस ही नहीं बल्कि छत्तीसों रोगों को दूर करता है।

शास्त्रार्थ का पेशा वकीलों के पेशे की तरह है। शास्त्रार्थ-वादी स्याह का सफेद और सफेद का स्याह करके दिखा सकता है। किसे इस बात का अनुभव नहीं होता? बहुत से वेद-वादरत प्राणी वेदों से अनेक बातें साबित करते हैं। और वैसे ही नाम धारण करनेवाले दूसरे कितने ही लोग उनके विरुद्ध बातें उतने ही जोर के साथ उनमें से सिद्ध करते हैं। मैं अपने जैसे प्राकृत मनुष्यों को एक आसान तरीक़ा बताता हूँ जिसका अनुभव मैंने किया है। मैंने हर एक धर्म का विचार करके उसका लघुत्तम निकाल रक्खा है। कितने ही सिद्धान्त अचल-वत् मालूम होते हैं। अनुभव उनका अनादर

नहीं कर सकता। भक्त तुलसीदास ने आधे दोहे में कह दिया है "दया धर्म का मूल है।" सत्य के सिवा दूसरा धर्म नहीं, यह सनातन वचन है। किसी भी धर्म ने इन सूत्रों को अस्वीकार नहीं किया है। ऐसे हर एक वचन को जिसके लिए धर्मशास्त्र के वचन होने का दावा किया गया हो, सत्य की निहाई पर दया-रूपी हथौड़े से पीटकर देख लेना चाहिए। अगर वह पक्का मालूम हो और टूट न जाय तो ठीक समझना चाहिए। नहीं तो हजारों शास्त्रवादियों के रहते हुए भी 'नेति' 'नेति' कहते रहना चाहिए। अखा (एक गुजराती भक्त कवि) की अनुभव-वाणी में शास्त्रार्थ एक अन्धा कुवाँ है। जो उसमें गिरता है वही मरता है। आत्मा एक है। शरीरमात्र में उसका निवास है। ऐसी दशा में अस्पृश्य किसे कहना चाहिए ?

यहाँ हमें अस्पृश्यता का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। रजस्वला स्त्री अस्पृश्य है। श्मशान से आये हुए लोग अस्पृश्य हैं। मैला उठाने पर स्वच्छ न होने तक मनुष्य अस्पृश्य है। इस अस्पृश्यता को तो हम अपने माता-पिता के साथ भी पालते हैं।

पर रजस्वला माता यदि बीमार हो और उसका लड़का उस समय उसकी सेवा न करे तो वह नरकवासी हो फिर भले ही वह भी अस्पृश्य क्यों न हो जाय। मैला उठानेवाले सब अन्त्यज हैं। वे यदि मैला उठाकर नहावें और हम उनसे छूकर नहाना चाहें

तो नहा डालें। परन्तु ऐसे मामूली और व्यावहारिक विचार में से अन्त्यज जाति को पैदा करना और उन्हें गाँव के एक कोने में निकाल देना, जानवर से भी अधिक त्याज्य मानना, वे चाहे मरें या जियें इसका ख़याल तक न करना, उनके पल्ले में जूठन और सड़ा-गला खाना फेंकना, उनके बाल-बच्चों को न पढ़ाना, वे अगर बीमार हो जायँ तो उनके दवा-दरपन में मदद न देना, उन्हें मन्दिरों में न बैठने देना और कुवों पर पानी न भरने देना—यह धर्म नहीं अधर्म है। इसे हिन्दूधर्म का अंग मानकर हम हिन्दूधर्म की जड़ उखाड़ने की तैयारी कर रहे हैं।

ऐसी अस्पृश्यता आत्म-घातक है। यह असहिष्णुता की पराकाष्ठा है। इसे दूर करने का प्रयत्न करना और ऐसा करते हुए मर मिटना हरएक हिन्दू का परमधर्म है। मुझे इस विषय में ज़रा भी सन्देह नहीं रह गया है।

बीभत्स सिद्धान्त

[नागरकोइल के भाषण में से,]

ट्रावनकोर को सन्देश

"हिन्दुस्तान के इस स्वर्ग-सुन्दर हिस्से में दुबारा आने से मुझे बड़ा आनन्द होता है सही, मगर मैं आपसे यह नहीं छिपा सकता कि इस सुन्दर देश में अस्पृश्यता का वह स्थान देखकर जो उसे सारे हिन्दुस्तान में और कहीं नहीं मिला है. मैं बड़ा दुःखी भी हो जाता हूँ। हिन्दू के नाते यह देखकर मुझे बड़ी शर्म मालूम होती है कि इस प्रगतिशील हिन्दू-राज्य में अस्पृश्यता सबसे बीभत्स रूप में विराज रही है। मैं अपनी जिम्मेदारी खूब समझते हुए कहता हूँ कि यह अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म पर एक अभिशाप है जो उसका जीवन खाये जाता है और मुझे कभी-कभी लगता है कि अगर हम चेत न गये; यह अस्पृश्यता नष्ट न कर दी गई तो हिन्दू-धर्म की ही जान के लाले पड़ने वाले हैं। यह तो मेरी समझ के बाहर की बात हो जाती है कि तर्क के इस युग में, संसार-परिभ्रमण के इस युग में, भिन्न-भिन्न धर्मों का मिलान करके अध्ययन करने के इस जमाने में भी पढ़े-लिखे ऐसे लोग मिलें जो इस बीभत्स सिद्धान्त

का समर्थन करते हैं कि एक मनुष्य अपने जन्म के कारण, न छूने लायक,न देखने लायक, पास न फरकने लायक है। हिन्दू-धर्म का नम्र विद्यार्थी होकर, उसका पद और अर्थ का पालन करने का अभिलाषी होकर मैं कहता हूँ कि इस भयंकर उसूल के समर्थन में मुझे कोई प्रमाण नहीं मिला है। हम इस भूल में न पड़ें कि कुछ भी संस्कृत में लिखकर छप जाने से ही शास्त्र हो जाता है और हमारे लिए उसका पालन करना परम आवश्यक है। जो नीति के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध हो, जो बुद्धि के विरुद्ध हो, वह चाहे कितना ही पुराना क्यों न हो मगर शास्त्र नहीं हो सकता। मैंने अभी जो कहा उसका यथेष्ट समर्थन वेदों से, महाभारत से और भगवद्गीता से होता है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि ट्रावनकोर की बुद्धिमती महारानी साहिबा के लिए अपने राज्य-काल में इस अभिशाप को इस शसे दूर करना संभव होगा। और इससे बड़ी बात, किसी स्त्री के लिए और क्या होगी कि वह कह सके कि मेरे राज्यकाल में युग-युग से गुलामी में पिसने वालों को मुक्ति मिल सकी है ?

धर्माध्यक्षो, पुरोहितो, जागो !

मगर मैं उनकी और उनके मंत्रियों की कठिनाइयों को भी जानता हूँ। चाहे कोई सरकार कितनी ही मनमानी क्यों न हो, ऐसे सुधार करने में डरती है, फूँक-फूँक कर ही पाँव

रखती है। ऐसे सुधारों के सम्बन्ध में चतुर सरकार आन्दोलन को चाहेगी। मूर्ख सरकार लोकमत से अधीर होकर ऐसी हल-चल को जोर-जबरदस्ती से रोकने की कोशिश करेगी। मगर वाइकोम के अपनी निजी अनुभवों से मैं जानता हूँ कि आपकी सरकार न सिर्फ ऐसे आन्दोलनों को चलने ही देगी बल्कि उनका स्वागत करेगी। इसलिए शुरू करने का पहला काम तो ट्रावनकोर के लोगों के सिर पर ही है और वह भी नामधारी अछूतों या जिन्हें मूल से 'अवर्ण' हिन्दू कहा जाता है उनके सिर नहीं। मेरे लिए तो अवर्ण हिन्दू शब्द ही बेमानी है और हिन्दू-धर्म पर कलंक है। इस समय तो आगे बढ़ने का काम उनका नहीं बल्कि नामधारी सवर्ण हिन्दुओं का है जिन्हें अछूतपने के पाप से अपने को मुक्त करना है। मुझे आप यह कहने देंगे कि आपके लिए हाथ पर हाथ धरे यह विश्वास रखना ही काफ़ी नहीं है कि अछूतपन पाप है। जो कोई गुनाह होते देखता रहता है, वह भी उसमें हिस्सेदार है और कानून उसे भी गुनाह करने में शामिल मानता है। इसलिए आपको आन्दोलन जरूर शुरू करना होगा और सभी वैध और कानूनी उपायों से करते जाना होगा। अगर ऐसा स्वर उनतक पहुँच सके तो मैं ब्राह्मण धर्माध्यक्षों तक जो इस सुधार को रोक रहे हैं, अपनी आवाज पहुँचाऊँगा। यह दुःखद बात है, मगर ऐतिहासिक सत्य

है कि जो धर्माध्यक्ष धर्म के सच्चे रक्षक होने चाहिएँ थे, वे ही धर्म के नाशक सिद्ध हुए हैं। मैं अपनी आँखों के आगे देख रहा हूँ कि ट्रावनकोर में और दूसरी जगहों पर जो ब्राह्मण पुजारी धर्म के सच्चे रक्षक होने चाहिए थे वे ही अपने अज्ञान या उससे भी बुरी बातें से अपने धर्म का सत्यानाश कर रहे हैं। उनका सारा पांडित्य अगर एक वीभत्स वहम के, घोर अन्याय के समर्थन में लगाया जाय तो वह खाक़ में मिल जाता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि वे समय रहते, समय की रंगत पहचान जायँ, और ज़माने के सथ बढ़े चलें, जो हम चाहें या न चाहें मगर हमें सत्य के रास्ते की ओर लिए चला जा रहा है। संसार के सभी धर्मों में और चाहे जो-जो अन्तर हों, मगर सभी इस बात को मिलकर कहते हैं कि 'सत्यमेव जयते' संसार में केवल सत्य ही रहता है।

अस्पृश्यता-निवारण

[बेलगाँव कॉंग्रेस के अवसर पर एक अस्पृश्यता-निवारण परिषद् हुई थी। इसमें गाँधीजी ने यह महत्वपूर्ण भाषण किया था।]

"मेरे लिए अस्पृश्यता के विषय में कुछ कहना फ़िजूल है। मैं बारबार कह चुका हूँ कि यदि इस जन्म में मुझे मोक्ष न मिले तो मेरी आकांक्षा है कि अगले जन्म में भंगी के घर मेरा जन्म हो। मैं वर्णाश्रम को मानता हूँ और उसके विषय में जन्म और कर्म दोनों को मानता हूँ पर इस बात को नहीं मानता कि भंगी कोई पतित योनि है। ऐसे कितने ही भंगी देखे हैं जो पूज्य हैं और ऐसे कितने ही ब्राह्मण भी देखे हैं जिनकी पूजा करना मुश्किल है। ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर ब्राह्मणों की या भंगी की सेवा कर सकने के बजाय मैं भंगी के घर पैदा होकर भंगी की सेवा ज्यादा कर सकूँगा और दूसरी जातियों को भी समझा सकूँगा। मैं भंगियों की अनेक तरह से सेवा करना चाहता हूँ। मैं उन्हें यह सीख देना नहीं चाहता कि वे ब्राह्मण से घृणा करें। घृणा से मुझे अत्यन्त दुःख होता है' भंगियों का मैं उत्कर्ष चाहता हूँ; पर मैं अपना यह धर्म नहीं समझता कि उन्हें पश्चिमी तरीक़ों से हक़ माँगने की सलाह दूँ। इस तरह कुछ भी हासिल करना

हमारा धर्म नहीं । मार-पीट से प्राप्त की हुई चीज दुनिया में क़ायम नहीं रह सकती । मैं अपनी आँखों के सामने उस ज़माने को आता हुआ देखता हूँ जब कि मार-पीट के बल पर कोई भी काम सिद्ध न हो सकेगा ।

मैं हिन्दू-धर्म की उन्नति चाहता हूँ और अस्पृश्यों को अपना बनाना चाहता हूँ । इससे जब कोई भी अछूत अपना धर्म छोड़ कर दूसरे धर्म में मिलता है तब मुझे भारी धक्का पहुँचता है । पर हम करें क्या ? हम हिन्दू पतित हो गये हैं । हमारे दिलों से त्याग-भाव चला गया; प्रेमभाव जाता रहा और सच्चा धर्म-भाव नष्ट हो गया । गीता में तो कहा है कि ब्राह्मण और चाण्डाल को समान समझो । समान के मानी क्या हैं ? यह नहीं कि ब्राह्मण और भंगी के धर्म एक हो जाते हैं । पर इस हद तक दोनों में समानता जरूर होनी चाहिए कि दोनों के साथ एक-सा न्याय कर सकें । मुझे भंगी की जरूरतें रफा करनी चाहिए। भंगी की तकलीफ़ तो यह है कि हम उसकी मामूली से मामूली जरूरतें भी पूरी नहीं करते । भंगी को भी सोने की जगह तो चाहिए ही, साफ–सुथरी हवा और पानी तो चाहिए ही, भोजन तो चाहिए ही । इतनी बातों में तो वे ब्राह्मण के समान ही हैं । जिस भंगी को सेवा की जरूरत है, जैसे कि किसी भंगी को साँप ने काटा हो तो मैं जरूर उसकी सेवा करूँगा । भंगी को यदि मैं अपनी जूठन खिलाऊँ तो मैं

पतित हूँगा। इसी से मैं कहता हूँ कि अस्पृश्यता हिन्दूधर्म का महापाप है।

एक प्रकार की अस्पृश्यता के लिए हिन्दूधर्म में स्थान है। एक आदमी मैले को छूकर जबतक स्नान न करले तबतक वह अस्पृश्य भले ही रहे। मेरी माँ जब मल-मूत्र साफ़ करती तब नहाये बिना किसी चीज को छूती न थी, मैं वैष्णव-सम्प्रदाय का अनुयायी हूँ, इसीलिए इतनी अस्पृश्यता—कर्म की क्षणिक अस्पृश्यता को मैं मानता हूँ। परन्तु जन्म की अस्पृश्यता को मैं नहीं मानता। जब मैं अपने मल-मूत्र को उठानेवाली अपनी माता की मूर्ति का स्मरण करता हूँ तब वह मुझे अधिक पूज्य मालूम होती है। उसी तरह जब भंगी की सेवा का विचार करता हूँ तब मेरी दृष्टि में वह पूज्य हो जाता है।

मैंने यह कभी नहीं कहा कि अन्त्यजों के साथ रोटी-बेटी-व्यवहार रक्खा जाय, हालाँ कि मैं रोटी-व्यवहार रखता हूँ। बेटी-व्यवहार के लिए मेरे पास गुँजाइश नहीं। मैं वानप्रस्थाश्रम का पालन करता हूँ,—संन्यास का पालन करता हूँ या नहीं, सो नहीं कह सकता। क्योंकि कलियुग में संन्यास धर्म का पालन करना महा कठिन है। मैं तो प्राकृत प्राणी हूँ। मैंने वेदाध्ययन नहीं किया और मैं मोक्ष के लायक़ हूँ या नहीं, इस विषय में सन्देह है। क्योंकि मैं राग-द्वेष का

पूर्ण त्याग नहीं कर पाया हूँ। वेद का उच्चार पण्डित मालवीयजी की तरह नहीं कर सकता। उसके कारण मोक्ष न मिलता हो, सो बात नहीं। पर जबतक मेरे अन्दर राग-द्वेष मौजूद हैं तब तक मुझे मोक्ष नहीं मिल सकता। इससे मैं संन्यासी चाहे न होऊँ पर इस बात में कुछ भी दोष नहीं दिखाई देता कि मेरी स्थिति का हिन्दू सारे संसार के साथ रोटी-व्यवहार रक्खे। परन्तु जिस दोष के दूर होने की आवश्यकता है वह है अछूतपन। उसमें रोटी-व्यवहार का समावेश नहीं है।

अस्पृश्यता-निवारण को जो मैंने महासभा का एक कार्य माना है वह केवल राजनैतिक हेतु पूरा करने के लिए नहीं है। यह हेतु तो तुच्छ है, स्थायी नहीं। स्थायी बात तो है हिन्दूधर्म में, जिसे कि मैं सर्वोपरि मानता हूँ, अस्पृश्यता का कलंक न रहे। स्थूल स्वराज्य के लिए मैं अन्त्यजों को फुसलाना नहीं चाहता। मैं तो मानता हूँ कि हिन्दुओं ने अस्पृश्यता को अंगीकार करके भारी पाप किया है। उसका प्रायश्चित्त उन्हें करना चाहिए। मैं अस्पृश्यों की 'शुद्धि' जैसी किसी चीज को नहीं मानता। मैं तो अपनी ही शुद्धि का कायल हूँ। जब मैं स्वयं ही अशुद्ध हूँ तो दूसरे की शुद्धि क्या करूँगा? जब कि मैंने अस्पृश्यता का पाप किया है तो शुद्ध भी मुझे ही होना चाहिए। इसलिए हम जो अस्पृश्यता निवारण कर रहे हैं वह केवल आत्म-शुद्धि है; अस्पृश्यों

की शुद्धि नहीं। मैं तो हिन्दूधर्म की इस शैतानियत को निर्मूल करने की बात कर रहा हूँ, अस्पृश्यों को फुसलाने की बात मेरे पास नहीं है।

परन्तु हिन्दूजाति के लिए खान-पान का सवाल जुदा है। मेरे कुटुम्ब में ऐसे लोग हैं जो मर्यादा-धर्म का पालन करते हैं। वे और किसी के साथ भोजन नहीं करते। उनके लिए खाने-पीने के बरतन और चूल्हा भी अलहदा होता है। मैं नहीं मानता कि इस मर्यादा में अज्ञान, अन्धकार, या हिन्दू-धर्म का क्षय है। मैं खुद इन बाहरी आचारों का पालन नहीं करता। मुझसे यदि कोई कहे कि हिन्दू-संसार को इसका अनुसरण करने की सलाह दो, तो मैं इन्कार करूँगा। मालवीयजी मुझे पूज्य हैं, मैं उनका पाद-प्रक्षालन भी करूँ, ऐसी इच्छा होती है। वे मेरे साथ खाना नहीं खाते। ऐसा करके वे मेरे साथ घृणा नहीं करते हैं। हिन्दू-धर्म में इस मर्यादा को अटल स्थान नहीं है, परन्तु एक खास स्थिति में वह स्तुत्य मानी गई है। रोटी-बेटी व्यवहार का सम्बन्ध जिस दरजे तक संयम से है उस दरजे तक भले ही रहे। पर यह बात सब जगह सच नहीं है कि किसी के साथ भोजन करने से मनुष्य का पतन होता है। मैं नहीं चाहता कि मेरा लड़का जहाँ चाहे और जो चाहे खाता फिरे; क्योंकि आहार का असर आत्मा पर पड़ता है। पर यदि संयम या सेवा की सुविधा के

लिए वह किसी के यहाँ कुछ खास चीजें खाय तो मैं नहीं समझता कि वह हिन्दूधर्म का त्याग करता है। मैं नहीं चाहता कि खान-पान की जो मर्यादा हिन्दूधर्म में है उसका क्षय हो। संभव है कि इस मर्यादा को भी छोड़ देने का युग आ जाय। ऐसा होने से हमारा विनाश नहीं हो जायगा। आज तो मैं वहीं तक जाने के लिए तैयार हूँ जहाँ तक मेरा दिल मानता है। मेरी विचार-श्रेणी में इस युग में रोटी-बेटी के व्यवहार की मर्यादा का लोप नहीं आ सकता। मेरी इस वृत्ति के कारण मेरे कितने ह मित्र मुझे दम्भी मानते हैं, पर इसमें किसी तरह का ढोंग नहीं है। स्वामी सत्यदेव और मैं अलीगढ़ जा रहे थे। उन्होंने मुझे कहा—"आप यह क्या करते हैं? ख़्वाजा साहब के यहाँ खावेंगे!" मैंने कहा,—"मैं खाऊँगा, आपके लिए मर्यादा है तो आप न खावें। मेरे लिए ख़्वाजा साहब के यहाँ खाद्य वस्तुएँ न खाना पतितता है। पर यदि आप खायँगे तो पतन होगा, क्योंकि आप मर्यादा का पालन करते हैं।" स्वामी सत्यदेव के लिए ब्राह्मण बुलाया गया, उसने उनके लिए रसोई बनाई। मौलाना अब्दुल बारी के यहाँ भी ऐसा ही इन्तजाम होता है। यहाँ तक कि हम जब जाते हैं तब ब्राह्मण बुलाया जाता है, और उसे हुक्म होता है कि तमाम चीजें भी बाहर से लावे। मैंने मौलाना से पूछा कि इतने एहतियात की क्या जरूरत? तो कहते

हैं कि मैं दूसरों को भी यह मानने का मौक़ा नहीं देना चाहता कि मैं आपको भ्रष्ट करना चाहता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि हिन्दू धर्म के अनुसार बहुत-से लोगों को हमारे साथ खाना खाने से परहेज होता है। मौलाना को मैं आदर की दृष्टि से देखता हूँ। वे सीधे-सादे भोले आदमी है। कभी-कभी भूल कर जाते हैं; पर हैं खुदापरस्त और ईश्वर से डरनेवाले।

बहुतेरे लोग मुझे कहेंगे कि आप सनातनी कहाँ से हो गये? आप न तो काशी विश्वनाथ के दर्शन करते हैं; यही नहीं उल्टा डेढ़ की लड़की को गोद ले लिया है। मुझे इन सवाल पूछने वालों पर रहम आता है।

अन्त्यज भाइयो, आपके साथ बहुत बातें करने नहीं आया था, फिर भी कर गया, क्योंकि आपके साथ मुझे प्रेम है। आपके साथ जो पाप किये गये हैं उनके लिये मैं आपसे माफी चाहता हूँ। पर आपकी अपनी उन्नति की शर्त भी समझ लेनी चाहिए। मैं जब पूना गया था तब एक अन्त्यज भाई ने उठकर कहा था—'हिन्दू जाति यदि हमारे साथ न्याय न करेगी तो हम मार-काट से काम लेंगे।' यह सुनकर मुझे दुःख हुआ था। क्या इससे हिन्दू जाति का या आपका उद्धार हो सकता है? क्या इससे अस्पृश्यता दूर हो सकती हैं? उपाय तो सिर्फ यही है कि धर्मान्ध हिन्दुओं को समझावें-बुझावें और जो कष्ट वे दें उन्हें

सहन करें। आप यदि मदरसे में जाने का हक चाहें, चारों वर्ण जहाँ-जहाँ जा सकते हों वहाँ जाने का हक़ चाहें, जो-जो स्थान और पद प्राप्त कर सकते हों उनको पाने का हक़ मांगें तो वह बिलकुल ठीक है। अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ है कि आपके लिए कोई भी ऐहिक स्थिति अप्राप्य न हो। पर आप इन सब को पश्चिमी तरीक़ों से नहीं प्राप्त कर सकते। हिन्दू धर्म में जो विधि कल्याणकारिणी बताई गई है उसीके द्वारा कर सकते हैं। यदि यह मानें कि शरीर बल के द्वारा कार्य सिद्ध होता है तो इसका अर्थ यह होता है कि आसुरी साधनों के द्वारा हम धर्म-कार्य सिद्ध करना चाहते हैं। मैं आपसे चाहता हूँ कि आपके अन्दर यह आसुरी भाव न पैठे और आप सच्चे भागवत धर्म का पालन करें। ईश्वर हमें ऐसी बुद्धि दें कि जिससे अस्पृश्यता एक क्षण में दूर हो जाय।"

अस्पृश्यता का पाप

[काठियावाड़ राजनैतिक परिषद् में सभापति की हैसियत से दिया गया गाँधीजी का प्रारम्भिक मौखिक भाषण]

मैंने सोचा था कि इस परिषद् में मैं एक ही बात को प्रधानता दूँगा। परन्तु खुशक़िस्मती से अब दो बातों को प्रधानता देनी पड़ेगी। एक बात है खादी, जिसके बराबर प्यारी चीज मुझे कोई नहीं। कितने ही लोग मुझे चरखे के पीछे—खादी के पीछे—पागल मानते हैं। और यह बात सच है। क्योंकि आशिक़ को ही माशूक की क़ीमत मालूम हो सकती है। आशिक़ ही कह सकता है कि मुहब्बत, प्रेम, इश्क़ क्या है। मैं आशिक़ हूँ, इसी से मैं जान सकता हूँ कि मेरा प्रेम क्या चीज है और मेरे अन्दर न-सी आग धधक रही है। पर उस आग के बारे में मैं यहाँ कुछ नहीं कहना चाहता।

यह राजनैतिक परिषद् है और आप राजनैतिक बातों की चर्चा करने की आशा रखते होंगे। पर मेरे अन्दर तो किसानों के भाव भरे हुए हैं—हालांकि जन्र आ है मेरा बनिये के घर, और मेरे पिता तथा दादा राजकाज करते आये हैं। फिर भ

मेरे पास राज-काजी-पन नहीं है; अथवा हो भी तो मैं लाचार हूँ। मेरे पास एक और चीज है, जो मुझे विरासत में नहीं मिली है। मैंने खुद हासिल की है। वह है किसानपन, भङ्गीपन, ढेड़पन— संसार में जो-कुछ नीचपन समझा जाता है वह। मेरी यह विशेषता है। इससे मैं 'राजनैतिक' का अर्थ आपकी तरह 'राज-काजी-पन' नहीं करता हूँ, 'राज्यविधान' नहीं करता हूँ। क्योंकि किसान अपने खेतों की देख-भाल व्याख्यानों के द्वारा नहीं कर सकता, केवल हल से ही कर सकता है, कड़ी धूप में भी वह हल को नहीं छोड़ सकता। बुनाई का पेशा करनेवाला तभी अपना पेशा कर सकता है जब वह उद्यम करता रहे। 'राजनैतिक' का साधारण अर्थ है व्याख्यान देना, आन्दोलन करना, राजा के नुक़्स देखना। पर मैं इससे उलटा अर्थ करता हूँ। हिन्दुस्तान के बाहर अपने २२ वर्ष के कार्यमय जीवन में भी मैंने इससे उलटा ही अर्थ किया है। पर जिस तरह दूर के पर्वत सुहावने मालूम होते हैं, लोग मुझे भी राजकाजी मानते आते हैं। हाँ, मैं 'राज-काज' जानता हूँ, पर वह दूसरे ढङ्ग का है। उसमें विवेक और प्रेम है; षड्यन्त्र और कुचक्र के लिए वहाँ जगह नहीं है। षड्यन्त्र और कुचक्र से जितना काम निकलता है, उससे सौगुना काम विवेक और प्रेम से निकला है। और उसमें किसान, भङ्गी, ढेड़ सबके हित का विचार आ जाता है। आप

जानते हैं कि मैंने महासभा में 'राजनीति' की यही व्याख्या की थी और उसमें मुझे जरा भी शर्म न मालूम हुई। इसी दृष्टि से मैंने खादी का समावेश राज-काज में किया है। मेरा दावा है कि मेरी बात ज्ञान और समझदारी से भरी हुई है। और मैं कह सकता हूँ कि एक दिन आप कहेंगे कि गाँधी की चरखे की बात अत्यन्त चतुराई, ज्ञान और समझदारी से युक्त थी। आज जब लोग मेरी बात पर हँसते हैं और कहते हैं कि चरखा तो गाँधी का खिलौना है, तो मुझे उन पर रहम आता है। वे मेरी चाहे जितनी हँसी उड़ावें, मैं खादी की बात को छोड़ने वाला नहीं हूँ।

अब दूसरी बात पर आता हूँ। जब से 'नवजीवन' में मैंने लिखा था कि परिषद् में यदि ढेड़ों के लिए अलहदा जगह रक्खी जायगी तो मैं भी उनमें जाकर बैठूँगा, तब से भावनगर में बड़ी खलबली मच रही है। काठियावाड़ में अस्पृश्यता कैसी है, यह मैंने अपनी आंखों देखा है। मेरी पूजनीया माता भङ्गी को छूना पाप समझती थी, पर इससे उनके प्रति मेरे दिल में घृणा नहीं; पर मैं माँ-बाप के कुएँ में डूब मरना नहीं चाहता। मेरे माँ-बाप ने तो मुझे स्वतन्त्रता विरासत में दी है और यद्यपि मैं आज उनसे उलटे विचार रखता हूँ, तो भी मुझे विश्वास है कि मेरी माता की आत्मा कहती होगी—'धन्य है बेटा, तुझे धन्य है, क्योंकि तूने जो प्रतिज्ञायें मुझसे की थीं उनमें यह प्रतिज्ञा नहीं थी कि किसी को

छूना पाप है।' विलायत भेजते समय उन्होंने मुझसे तीन प्रतिज्ञाएँ कराईं थीं, पर उनमें ऐसी कोई प्रतिज्ञा न थी कि विलायत में अस्पृश्यता को धर्म मानना। मैं मानता हूँ कि भावनगर में आज कुछ (अथवा बहुत, मैं नहीं जानता) खलबली मच रही है और नागर तथा वैश्य और दूसरे लोग सन्तप्त हो रहे हैं। उनमें से जो लोग यहाँ मौजूद हों वे यदि यह मानते हों कि गाँधी भ्रष्ट हो गया है और सनातन-धर्म की जड़ उखाड़ने पर तुला हुआ है, तो उन्हें मैं विवेक और दृढ़तापूर्वक कहना चाहता हूँ कि गाँधी सनातन-धर्म की जड़ नहीं उखाड़ रहा है, वह जो कुछ कहता है उसी पर सनातन-धर्म की जड़ कायम रहेगी। आप में भले ही कोई पंडित हों, जिन्होंने वेद के एक-एक शब्द को रट डाला हो, तो भी मैं उनसे कहूँगा कि आप बड़ी भूल कर रहे हैं। सनातन-धर्म की जड़ वही लोग उखाड़ रहे हैं जो अस्पृश्यता को हिन्दू-धर्म का मूल मानते हैं। मैं आदरपूर्वक यह बात कहता हूँ कि इस विश्वास में न तो दूरंदेशी है, न विचार है, न विवेक है, न विनय है, न दया है। और यदि ऐसे विचार रखने वाला मैं अकेला ही रह जाऊँ तो भी मैं अन्त तक कहूँगा कि आज हम अस्पृश्यता का जो अर्थ कर रहे हैं उसे यदि हिन्दू-धर्म में स्थान देंगे तो हिन्दू-धर्म को क्षय-रोग हो जायगा। और उसका नतीजा होगा उसका

विनाश । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से मैं कहता हूँ कि हिन्दुस्तान का उद्धार मुसलमानों पर उतना अवलम्बित नहीं, ईसाइयों पर उतना अवलम्बित नहीं, जितना इस बात पर है कि हिन्दू अपने धर्म की रक्षा किस प्रकार करते हैं । क्योंकि मुसलमानों का काशी-विश्वनाथ यहाँ नहीं, मक्का में है, ईसाइयों का जेरूसलम में है । पर आप तो हिन्दुस्तान में ही रह कर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं । यह युधिष्ठिर की भूमि है, यह रामचन्द्र की भूमि है । ऋषि-मुनियों ने हमसे कह रक्खा है कि यह कर्म-भूमि है, भोग-भूमि नहीं है। मैं इस भूमि के निवासियों से कहता हूँ कि हिन्दू-धर्म आज तराजू पर चढ़ा हुआ है और संसार के तमाम धर्मों के साथ उसकी तुलना हो रही है और जो बात बुद्धि के बाहर होगी, दया-धर्म के बाहर होगी उसका समावेश यदि हिन्दू-धर्म में होगा तो उसका नाश निश्चित समझ रखना । दयाधर्म का मुझे भान है और उसी के कारण मैं देख रहा हूँ कि हिन्दू-धर्म के नाम पर कितना पाखण्ड, कितना अज्ञान फैल रहा है । इस पाखण्ड और अज्ञान के खिलाफ यदि जरूरत पड़े तो मैं अकेला लड़ूँगा । अकेला रहकर तपश्चर्या करूँगा और उसका नाम जपते हुए मरूँगा । शायद ऐसा भी हो कि मैं पागल हो जाऊँ और कहूँ कि मैंने अपने अस्पृश्यता-सम्बन्धी विचारों में भूल की है, और मैं कहूँ कि अस्पृश्यता को हिन्दू-धर्म का पाप

कह कर मैंने पाप किया था तो आप मानना कि मैं डर गया हूँ, सामना नहीं कर सकता और दिक होकर मैं अपने विचार बदल रहा हूँ। उस दशा में आप ऐसा ही मानना कि मैं मूर्च्छित दशा में ऐसी बात बक रहा हूँ।

आज जो बात मैं आपसे कह रहा हूँ, उसमें मेरा स्वार्थ नहीं; उससे मैं कोई उपाधि नहीं लेना चाहता। उपाधि तो मैं 'भंगी' की चाहता हूँ। सफ़ाई करना कितना पुण्य-कर्म है? यह काम या तो ब्राह्मण कर सकता है या भंगी कर सकता है। ब्राह्मण ज्ञान-पूर्वक करता है और भंगी अज्ञान-पूर्वक करता है। मुझे दोनों पूज्य हैं, आदरणीय हैं। दोनों में से यदि एक का भी लोप हो तो हिन्दू धर्म का लोप हुए, बिना न रहेगा।

और मुझे सेवा-धर्म प्रिय है। इसीसे भंगी प्रिय है। मैं तो भंगी के साथ बैठकर खाता भी हूँ। पर आपसे नहीं कहता कि आप भी उसके साथ बैठकर खाओ या रोटी-बेटी-व्यवहार करो। आपसे कह भी किस तरह सकता हूँ? मैं एक फकीर जैसा हूँ,—सच्चा फकीर हूँ या नहीं, सो नहीं जानता। मैं संन्यासी हूँ या नहीं सो भी नहीं जानता। हाँ, संन्यास मुझे पसंद है। ब्रह्मचर्य मुझे प्रिय है; पर नहीं जानता कि मैं सच्चा ब्रह्मचारी हूँ या नहीं। क्योंकि ब्रह्मचारी के मनमें यदि दूषित विचार आते हों, वह सपने में भी व्यभिचार करने का विचार करता हो तो मैं कहूँगा कि वह

ब्रह्मचारी नहीं। मेरे मुँह से यदि गुस्से में एक भी शब्द निकले, द्वेष से प्रेरित होकर कोई काम हो, जिसे लोग मेरा कट्टर से कट्टर दुश्मन मानते हों उसके खिलाफ भी यदि क्रोध में कुछ वचन कहूँ तो मैं अपने को ब्रह्मचारी कह नहीं सकता। सो मैं पूर्ण संन्यासी हूँ कि नहीं, यह नहीं जानता। पर हाँ, इतना मैं जरूर कहूँगा कि मेरे जीवन का प्रवाह इसी दिशा में बह रहा है। ऐसी अवस्था में मैं यह नहीं कह सकता कि किसी भंगी की लड़की या कोई कोढ़ी आदमी मेरी सेवा चाहता हो तो मैं उसकी सेवा नहीं कर सकता या मुझे यदि अपने हाथ का खाना खिलाना चाहे तो मैं नहीं खा सकता। फिर ईश्वर की इच्छा हो तो मुझे बचावे अथवा मार डाले। पर मैं तो कोढ़ी की सेवा किये बिना नहीं रह सकता। ऐसा करते हुए यह भी दावा करूँगा कि यदि ईश्वर को गरज हो तो मुझे रक्खे। क्योंकि मैं अपना यही धर्म समझता हूँ कि भंगी को, कोढ़ी को, ढेड़ को खिलाकर खाऊँ। पर मैं आपसे नहीं कहता कि आप व्यवहार-धर्म की मर्यादा को तोड़ डालें। आपसे तो मैं इतना ही चाहता हूँ कि आप पाँचवाँ वर्ण न बनावें। ईश्वर ने चार वर्ण की रचना की है। इसका अर्थ मैं समझ सकता हूँ। पर आप पाँचवाँ—अछूतों का वर्ण न पैदा करें। मैं अछूतपन को गवारा नहीं कर सकता। इस शब्द को सुनकर मुझे चोट पहुँचती हैं। जो लोग मेरा विरोध करते हैं उनसे

कहता हूँ कि आप विचार करो। आप मेरे साथ आकर चर्चा करो, समझ जाओ कि मैं क्या बक रहा हूँ। आप विवेक और विचार को छोड़कर बात कर रहे हैं। उसका फल नहीं निकल सकता। आज मुझे दो पण्डित महाशयों के दस्तख़ती तार मिले हैं। उन्हें मैं नहीं पहचानता। पर वे लिखते हैं कि हिन्दू-धर्म का सहारा लेकर तथा पण्डितों के नाम पर आप पर जो आक्षेप हो रहे हैं वे मिथ्या हैं। हम अपनी श्रेणी के लोगों के दस्तख़त भेजेंगे जिससे आपको मालूम हो जायगा कि अनेक शास्त्री लोग आपका साथ दे रहे हैं। हाँ, यह सच है कि आप जिस जोर-शोर के साथ काम ले रहे हैं उस तरह हमसे नहीं होता; क्योंकि आप तो ठहरे निडर आदमी। हमें बहुत आगा-पीछा सोचना पड़ता है। द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह से आकर श्रीकृष्ण ने कहा कि आप पांडवों के खिलाफ लड़ेंगे ? तो उन्होंने कहा कि भाई क्या करें ? हमारे सामने आजीविका का सवाल है। हमारे अन्दर कितने ही द्रोणाचार्य और भीष्माचार्य हैं। जब तक पेट पीछे लगा हुआ है तब तक वे बेचारे क्या करें ? उनसे जो कुछ नहीं हो सकता, इसमें उन विद्वानों का दोष नहीं, विधि का दोष है। परिस्थिति का दोष है। पर वे दिल में तो समझते हैं कि गाँधी अच्छा काम कर रहा है और उनका दिल मुझे दुआ दे रहा है। पर इसके साथ मैं एक और बात भी कहता हूँ। मैं तो सत्याग्रही हूँ। 'मारना नहीं, पर

मरना मेरा धर्म है। सो मैं तो अपने ही तरीके से काम लूँगा। इसलिए आपसे एक प्रार्थना करता हूँ। अगर आप ऐसा समझते हों कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म की जड़ है तो आप ऐसा समझते रहिए। पर मुझे भी यह कहने का अधिकार दीजिए कि यह हिंदू-धर्म का पाप है। आपसे हो सके तो आप हिन्दू-संसार के हृदय को जागृत कीजिए। पर मुझे भी वैसा करने का उतना ही अधिकार दीजिए। सत्याग्रही तो एकमार्गी होता है। उसे दूसरे के साथ सलाह-मशविरा नहीं करना है; न किसी के साथ सुलह-नामा करना है। इसलिए मैं आपको वचन देता हूँ कि आपके साथ प्रेम-भाव से बरतूँगा। यदि मैं अकेला रह गया तो भी 'बचना, बचना' कह कर यही आवाज़ उठाऊँगा।

जो लोग आज अस्पृश्यता के विषय में मेरा साथ दे रहे हैं उनसे मैं कहता हूँ—ढेड़-भंगियों से भी कहता हूँ—कि जो लोग आपको गालियाँ देते हों उनके प्रति सहनशील रहना। तुलसीदास कह गये हैं—'दया धर्म का मूल है।' सो अगर प्रेम-भाव को छोड़ोगे तो बाज़ी हार जाओगे। जिस प्रकार आप अस्पृश्यता को पाप मानते हैं उसी प्रकार आप अपने विरोधियों के तिरस्कार के पाप में भी न पड़ना। जो आपको गालियाँ दें उनसे हँसकर बोलना। सच्चे दिल से उनके साथ प्रेम करना और शुद्ध आचार और विचार रखना। ऐसा करोगे तो यह अस्पृश्यता रूपी पाप मिट जायगा।

पंचम जातियाँ

अछूतों पर जितना अत्याचार मद्रास प्रान्त में होता है उतना अन्यत्र कहीं नहीं होता। यदि ब्राह्मणों पर उनकी परछाईं भी पड़ जाय तो वे अपने को अपवित्र समझते हैं। अछूत जातियाँ उन सड़कों पर से नहीं चल सकतीं जिनपर से ब्राह्मण लोग चलते हैं। अब्राह्मण भी उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते, इस तरह से अछूत जातियाँ—जिन्हें पञ्चम कहते हैं—इन दोनों—ब्राह्मण और अब्राह्मण-वर्ग के बीच में पड़कर बुरी तरह पीसी जा रही हैं। आश्चर्य तो यह है कि यहाँ सभी की धार्मिकता प्रसिद्ध है और यहाँ के मन्दिरों की तो चर्चा ही नहीं करनी चाहिए। यहाँ के निवासी बड़ी-बड़ी चोटियाँ रखे, लम्बा तिलक लगाये, खुले बदन इस तरह प्रतीत होते हैं मानों प्राचीन समय के ऋषिगण सशरीर उतर आये हों। पर इन लोगों की सारी धार्मिकता इन्हीं बाहरी दिखावटों तक ही बस है। जिस भूमि में शंकर भगवान् और महर्षि रामानुजाचार्य ने जन्म लिया था उस भूमि की इतने परिश्रमी और उपयोगी जाति के साथ इस तरह का आचरण समझ में नहीं आता। यहीं पर हमारे बन्धु-बान्धवों के साथ इस तरह का शैतानी व्यवहार होता

है और इसी दक्षिण पर हमारा अनन्य भरोसा है । मैंने उन्हें
बराबर समझाया है, उनकी सभाओं में इस बात पर जोर देकर
कहा है कि जबतक हम लोग अपने बीच से इस तरह के पापा
चार को नहीं उठा देते तब तक हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता
हम लोगों ने उनसे यह भी कह दिया है कि सारे बृटिश साम्राज्य
में हमारी गणना इस घृणा के साथ इसलिए की जाती है कि
हम लोगों ने स्वयं अपने घरों में उन हजारों अपने भाइयों को
क़ैदियों की तरह अलग कर रक्खा है । असहयोग हृदय में परि
वर्तन लाने के लिए एक शस्त्र है पर यह परिवर्तन केवल अंग्रेजों
के चित्त में परिवर्तन हो जाने से नहीं चल सकता बल्कि हमें
अपने हृदय में भी परिवर्तन करना चाहिए । वास्तव में बात
तो यह है कि हमें उचित है कि हम सबसे पहले अपने दिलों में
परिवर्तन करें और तब अंग्रेजों से इस परिवर्तन के लिए कहें
जो जाति जन्म-भर का कोढ़ एक ही विचार में साफ़ कर सकती
है, जो जाति फटे-पुराने कपड़ों की तरह शराब का त्याग कर
सकती है, जो जाति एकाएक अपने प्राचीन व्यवसाय को ग्रहण
कर सकती है, जो जाति अपने फालतू समय में ६० करोड़ रुपये
की मालियत का कपड़ा तैयार कर सकती है उस जाति को हम
लोग सुधरी जाति अवश्य कह सकते हैं, उसके इस परिवर्तन
का असर संसार के इतिहास पर अवश्य पड़ेगा । उसके इस

आचरण से नास्तिक भी इस बात पर विश्वास करने लगेगा कि ईश्वर है और ईश्वर की कृपा कोई वस्तु है। इसलिए मैं इस बात पर जोर देकर कहता हूँ कि भारतवर्ष अपनी चित्त-वृत्ति बदल देगा तो संसार में कोई भी जाति नहीं है जो उसके स्वराज्य के अधिकार को अस्वीकार कर सके। यह मैं मानता हूँ कि भारतीय क्षितिज पर अनेक तरह के काले बादल भीषण रूप धारण करके मँडरा रहे हैं, फिर भी मैं इस बात को दावे के साथ कह सकता हूँ कि जिस समय भारत इन अछूतों के साथ अपने बुरे व्यवहार के लिए पश्चात्ताप प्रकट कर लेगा और विदेशी कपड़ों का पूर्णतया बहिष्कार कर देगा उसी समय वे अंग्रेज भी भारत का स्वागत करने के लिए उतारू हो जायँगे और उसे स्वतन्त्र और वीर जाति मानने लग जायँगे जो इस समय कठोर-हृदयता का परिचय दे रहे हैं। मुझे इस बात का पक्का विश्वास है कि यदि हिन्दू चाहें तो वे इन पंचम जातियों का उद्धार कर सकते हैं और उनको भी वही अधिकार दे सकते हैं जिसका उपयोग आप कर रहे हैं और यदि भारतवासी चाहें तो अपनी आवश्यकता भर कपड़ा भी तैयार कर सकते हैं; ठीक वैसे जैसे वे अपने लिए भोजन बना लेते हैं। इसलिए मुझे इसका भी भरोसा है कि हम इस वर्ष में स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। पर यह परिवर्त्तन किसी विस्तृत यंत्रादि की कार्रवाई से साध्य नहीं है। केवल ईश्वर की

कृपा से ही हमें यह प्राप्त हो सकता है। इस बात को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि इस समय ईश्वर हम लोगों में से प्रत्येक के दिल में बैठा विचित्र तरह से काम कर रहा है। हर तरह से काँग्रेस में काम करने वालों का यह धर्म है कि अछूत भाइयों की सहायता करें और हिन्दुओं को यह समझाने की चेष्टा करें कि किसी भी हिन्दू-धर्म के अनुसार,—चाहे वह गीता-विहित हो, वेद-विहित हो, शंकर समुदाय हो या रामानुज-सम्प्रदाय हो, किसी में भी किसी मनुष्य के साथ—चाहे वह कितना ही गिरा क्यों न हो—इस तरह का व्यवहार विहित नहीं है। प्रत्येक कांग्रेस कार्यकर्त्ता का धर्म है कि कट्टर हिन्दुओं को विनम्र भाव से समझावें कि अछूतों के प्रति इस तरह की जड़ता अहिंसा के भाव के प्रतिकूल है।

पतित जातियाँ

स्वामी विवेकानन्द मद्रास की पंचम जातियों को 'दबाई हुई जाति' कहा करते थे। उनका यह विशेषण अति उपयुक्त था। हम लोगों ने उन्हें इस तरह दबाया है कि हम स्वयं पतित बन गये हैं। स्वर्गीय गोखले ने कहा था कि हम लोगों ने जो पाप किया है उसके लिए ईश्वर ने हमें यही दण्ड दिया है कि हम लोग इस समय साम्राज्य के 'परिया'* समझे जाते हैं और यह दण्ड सर्वथा उपयुक्त भी है। एक संवाददाता ने जले-कटे हृदय से मेरे पास एक पत्र लिखकर पूछा है कि आप इस सम्बन्ध में क्या कर रहे हैं। अपने लेख का जो शीर्षक उसने दिया है उसी शीर्षक का प्रयोग करके मैंने उस पत्र को प्रकाशित किया है।† क्या हम हिन्दुओं को यह उचित नहीं है कि अंग्रेजों से पहले हमें अपने हाथ के खून के दाग़ को मिटा देना चाहिए। यह प्रश्न बहुत ही उचित और समयोपयोगी है। यदि दासता के पाश में बँधे किसी राष्ट्र का आदमी हमें हमारी अवस्था से मुक्त किये बिना ही इन पतित जातियों का उद्धार करना चाहता है तो इसे हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। पर यह बात एकदम असम्भव है। एक दास सच्चा काम करने के लिए भी स्वतन्त्र नहीं है। विदेशी माल की आमद को रोकना हमारे लिए उचित और ठीक है पर इसका हमें कोई अधिकार नहीं है।

---

*परिया=हीन-जाति, अछूत †इस संग्रह मे यह लेख नहीं रखा गया है। —संपा०

यदि राष्ट्र के हाथ में आज क़ानून बनाने का अधिकार होता तो मैं इन पतित जातियों के लिए अच्छा से अच्छा कुआँ बनवा देता और उनके लड़कों के लिए अलग शिक्षालय बनवा देता जिससे उनमें अनिवार्य शिक्षा का प्रचार हो जाता। पर जबतक वह शुभ दिन उपस्थित नहीं होता। तबतक तो शान्ति रखना ही उचित होगा।

पर तब तक क्या इन्हें इसी तरह छोड़ देना चाहिए? इस तरह की कोई कार्रवाई अनुचित और अन्यायपूर्ण होगी। मेरी समझ में जो उचित प्रतीत होता है और जो मेरी शक्ति में है उसे मैं इन पंचम भाइयों के लिए उठा नहीं रक्खूँगा।

राष्ट्र की इन पतित जातियों के लिए तीन द्वार खुले हैं। अधीर होकर इस सरकार की वे सहायता ले सकते हैं, जो लोगों को दास बनाकर रखना चाहती है। उन्हें सहायता मिल सकती है। पर इससे तो गड्ढे से निकलकर अगाध सागर में जा गिरेंगे। आज वे गुलामों के भी गुलाम हैं पर सरकार की सहायता लेने पर तो वे अपने ही बन्धु-बाधवों को सताये जाने के आधार-यंत्र बन जायँगे। अभी तो उनपर ही अत्याचार किया जा रहा है इसलिए वे पाप से बचे हैं। पर उस समय वे पापाधार के यंत्र हो जायँगे। मुसलमानों ने पहले इसी मार्ग का अनुसरण किया पर अन्त में उन्हें भी असफलता ही मिली। उन्होंने देखा कि

उनकी अवस्था पहले से भी कहीं ख़राब हो गई है सिक्खों ने भी इसका पूर्णतया अनुकरण किया पर उन्हें भी असफलता ही मिली। आज भारत की जातियों में इस सरकार से सबसे अधिक असन्तुष्ट सिक्ख जाति ही है। इसलिए सरकार की सहायता से उनकी कठिनाई नहीं दूर हो सकती !

दूसरा उपाय यह है कि वे हिन्दू-धर्म को छोड़ कर ईसाई या मुसलमान हो जायँ। पर यदि धर्म-परिवर्तन से सांसारिक (इह-लौकिक) जीवन में भी सुख और शान्ति मिल सके तो मैं विना किसी संकोच के उसकी सलाह दे सकता हूँ। पर धर्म हृदय की बात है। शारीरिक यातना या असुविधा से धर्म-त्याग की भावना नहीं उठ सकती। यदि पंचम जातियों के साथ यह अत्याचार-पूर्ण व्यवहार हिन्दू-धर्म में विहित हो तो उन्हें उचित है कि उस धर्म को तुरंत त्याग दें और अपनी इस हीनता का सारा दोष उसी हिन्दू-धर्म के सिर पर मढ़ें। पर मैं जानता हूँ कि हिन्दू-धर्म में अछूतों का कोई प्रश्न ही नहीं आया है। हिन्दू-धर्म का कथन है कि इस तरह की बातें उठा देनी चाहिए। इस समय अनेक हिन्दू समाज-सुधारक हिन्दू-धर्म पर से यह काला धब्बा मिटा देने के लिए प्राणपण से यत्न कर कर रहे हैं इसलिए धर्म-परिवर्तन से भी कोई लाभ नहीं हो सकता और न वह उसके लिए उपयुक्त उपचार है।

इसलिए तीसरी ही युक्ति उनके लिए शेष रह जाती है। और वह यह है कि वे आत्म-निर्भर हों और सवर्ण हिन्दू अपना धर्म समझकर अपनी पूर्ण इच्छा से उनकी जो कुछ सहायता करें उससे ही अपना काम चलावें। यहीं असहयोग की आवश्यकता पड़ती है। इस व्यक्त बुराई को दूर करने के लिए मैं सुसंगठित असहयोग की योजना ही उचित समझता हूँ। पर असहयोग के माने हैं बाहरी सहायता से एकदम बरी रहना, अपनी शक्ति के उपयोग की सहायता ही उसका मर्म है। केवल उन स्थानों में घुस जाना जहाँ जाने की मनाही है असहयोग नहीं है। यदि शांति-पूर्वक जारी किया जा सके तो उसे सविनय अवज्ञा भले ही कह सकते हैं। पर मैंने यह भली-भांति देख लिया है कि सविनय अवज्ञा के लिए अधिक शिक्षा और आत्म-संयम की आवश्यकता है। असहयोग सभी कर सकते हैं पर सविनय अवज्ञा सब नहीं कर सकते। इसलिए उनके साथ जो दुर्व्यवहार किया जा रहा है उसके विरोध में पंचम जातियों को उचित है कि वे हिन्दुओं के साथ तब तक असहयोग कर अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लें जब तक उनकी उस अयोग्यता का प्रतीकार न कर दिया जाय। पर इसके लिए सुसंगठित प्रयास की आवश्यकता है। पर जहां तक मुझे दिखाई देता है पंचम जातियों में ऐसा कोई नहीं है जो असहयोग द्वारा उन्हें सफल-मनोरथ कर सके।

इसलिए पंचम जातियों के लिए सब से उत्तम उपाय यहा है कि वे इस संग्राम में आकर सम्मिलित हो जायँ पंचम भाई इस बात को भी समझ सकते हैं कि इससे परस्पर सहयोग की भी अधिक संभावना है क्योंकि भारत की भिन्न-भिन्न जातियाँ परस्पर मिले बिना सरकार के साथ सफल असहयोग नहीं कर सकतीं। हिन्दुओं को यह बात भली-भाँति समझ लेनी चाहिए। कि यदि वे सरकार के साथ असहयोग कर उसमें सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें पंचम जातियों को अपने में मिलाना होगा, जिस तरह उन्होंने मुसलमानों को मिलाया है। अहिंसात्मक असहयोग आत्म-शुद्धि का मंत्र है। यह यज्ञ आरम्भ हो गया है। इसमें पंचम जातियाँ भाग लें या न लें पर हिन्दू-जाति उनकी उपेक्षा नहीं कर सकती, क्योंकि इससे उनकी उन्नति में कठिन वाधा उपस्थित होने की सम्भावना है। इसलिए यद्यपि पंचम भाइयों की समस्या मुझे प्राणों से भी प्यारी है तो भी मैं इस समय केवल राष्ट्रीय आन्दोलन की योजना से ही काम चलाना चाहता हूँ। मुझे पक्का विश्वास है कि यदि हम लोग इस महती समस्या को हल कर लेंगे तो इस छोटी समस्या को अवश्य हल कर सकेंगे।

पढ़िए, सोचिए और रोइए !

[अछूतों के परम हितैषी एवं सेवक श्री० अमृतलाल ठक्कर ने गांधीजी को निम्नलिखित पत्र कई वर्ष पूर्व लिखा था, जिससे हरिजनों की करुण एवं दयनीय स्थिति तथा उनपर होने वाले पाशविक अत्याचारों पर प्रकाश पड़ता है। यहां हम श्री. ठक्कर का पत्र एवं उस पर गांधीजी की टिप्पणी साथ देते हैं। —सं०]

काठियावाड़ के एक गांव में एक अन्त्यज-शाला है। उसके शिक्षक भाई..................संस्कारी, सेवाभाव वाले और जन्मतः जुलाहे (अर्थात् ढेढ़) हैं। गायकवाड़ सरकार की अनिवार्य शिक्षा-नीति की योजना के अनुसार वे पढ़े हैं, और अपनी जाति की उन्नति के लिए जो कुछ सेवा उनसे बन पड़ती है, कर रहे हैं। वे सुघड़ हैं, सुविचार वाले हैं, और उनकी रहन-सहन भी ऐसी है जिससे उन्हें सहसा कोई ढेढ़ नहीं कह सकता। पुराण-प्रिय काठियावाड़ के एक छोटे-से गांव में रहकर अपनी जाति के बच्चों को पढ़ाने का सौभाग्य या दुर्भाग्य उन्हें प्राप्त हुआ है। इसलिए वहाँ का प्रत्येक आदमी उन्हें ढेढ़ और अस्पृश्य समझता है, परन्तु वह तो अपना काम उसी तरह चुपचाप करते जा रहे हैं। परन्तु इस असह्य स्थिति में रहने पर कभी-कभी मनुष्य का रोष, कष्ट, और दुःख शब्दों में प्रकट हो ही जाता है। इन भाई के नीचे वाले पत्र से यह बात साफ़-साफ़ प्रकट होगी। इस पत्र के प्रत्येक छोटे वाक्य में करुणा कूट-कूट कर भरी है। गांव, डाक्टर, लेखक, सज्जन नगर सेठ और अन्य 'गरासिया' भाई के नाम जान-बूझ कर इसलिए छोड़ दिये हैं कि संभव है, उनके मालूम हो जाने पर शिक्षक को कोई नुक़सान पहुँचे।

(१)

ता० ९-४-२७

नमस्कार के साथ विनय है कि ता० ५-४-२७ को मेरी धर्मपत्नी प्रसूता हुई। ता० ७-४-२७ के दो पहर के बाद वह बहुत बीमार हो गई। कई दस्त हुए और ज़बान भी बंद हो गई। सांस बढ़ गया, छाती सूज गई, और पसलियाँ भी दुखने लगीं। इसलिए मैं यहाँ के मिहरबान डा............को बुलाने के लिए गया। परन्तु उन्होंने कहा कि मैं ढेड़वाड़े नहीं जाऊँगा। ढेड़ को छूकर उसकी जाँच नहीं करूँगा। अन्त में नगरसेठ और गरासिया दरबार को लेकर मैं डा० सा० के पास गया। नगरसेठ से फ़ीस देना कुबूल कराया, तब उन्होंने इस शर्त पर आना कुबूल किया कि मरीज़ को ढेड़वाड़े से बाहर लाओ तो चलता हूँ। दो दिन की प्रसूता ज़च्चा को ढेड़वाड़े से बाहर लाया गया। तब डाक्टर साहब ने मुसलमान को थर्मामीटर दिया और उन्होंने मुझे। मैंने उसे लेकर अपनी पत्नी की बग़ल में रक्खा और निकाल कर फिर मुसलमान को दे दिया। मुसलमान ने पुनः उसे डाक्टर साहब को लौटा दिया। उन्होंने अन्धेरे में, दूर से, बिना देखे ही कह दिया कि इसे न्यूमोनिया हो गया है। रात के आठ बजे होंगे। डाक्टर साहब गये, हम लोग दवा लाये, अलसी के लेप का डिब्बा मैं दुकान से खरीद कर लाया, दवा कर रहे हैं। डाक्टर साहब ने शरीर की जाँच नहीं की, दूर से देखकर चले गये। ऐसी गम्भीर बीमारी है।.........से मेरी स्त्री के कुशल-समाचार लेने के लिए आये हैं। परमात्मा करेगा सो होगा। अब क्या करना चाहिए, कृपया लिखें।

आपका नम्र-सेवक

....

(२)

विशेष यह है कि चिराग़ गुल हो गया । मेरी स्त्री आज दोपहर के दो बजे चल बसी ।

सेवक

....

ऊपर उद्धृत किये पत्र पर चर्चा करके दिल के फफोले फोड़ना व्यर्थ है । पढ़े-लिखे डाक्टर एक मुसलमान भाई को मध्यस्थ बना लेने से काँच और पारे के थर्मामिटर को शुद्ध समझने लग जाते हैं, और दो दिन की ज़च्चा को कुत्ते-बिल्ली से भी बुरी और दीन समझकर उसकी जांच करने से इन्कार करते हैं ? ऐसे निर्दय डाक्टर को क्या कहा जाय ? और जो समाज ऐसे निंद्य बर्ताव को बर्दाश्त कर ले उसे भी क्या कहा जाय ? शोक ! शोक !!

घोर अमानुषिकता

[उपर्युक्त पत्र पर गाँधीजी की टिप्पणी]

पाठक ऊपर एक डाक्टर की घोर अमानुषिकता का हाल पढ़ेंगे जो उसने काठियावाड़ के एक गाँव में रहनेवाले अन्त्यज की पत्नी के प्रति दिखाई है । श्रीयुत अमृतलाल ठक्कर ने, जिन्होंने इस मामले की तफ़सील नवजीवन में प्रकाशनार्थ भेजी थी, उस स्थान और व्यक्तियों के नाम इस ख़याल से जान-बूझ कर छोड़ दिये हैं, कि प्रकट करने से कहीं वह अन्त्यज स्कूल-मास्टर उस डाक्टर के द्वारा अधिक न सताया जाय । पर मैं तो चाहता हूँ

कि नाम प्रकाशित कर दिये जाने चाहिए। ऐसा समय भी आवेगा जब हमें अन्त्यजों को अधिक कष्ट और अत्याचार सहने के लिए उत्साहित करना होगा। उन्हें तो पहले से ही इतने अधिक कष्ट हैं कि कुछ और कष्ट बढ़ जावें तो वे उनके लिए असह्य नहीं होंगे। एसे अत्याचारों पर लोकमत को जागृत नहीं किया जा सकता, जिनको साबित न किया जा सकता हो, या जिनकी तह तक हम नहीं पहुँच सकते हों। मैं बम्बई की मेडीकल कौन्सिल के नियम तो नहीं जानता, पर अन्य स्थानों पर ऐसे पेशेवर डाक्टर का नाम, जो फीस लेने के पहले मरीज़ की शुश्रूषा करने से इन्कार करता है, कौन्सिल के सदस्यों की फेह-रिस्त से हटा लिया जाता है; तथा अन्य रीति से भी उसे कड़ी सज़ा दी जाती है। निस्सन्देह फीस तो वसूल की ही जा सकती है; परन्तु मरीज़ों का ठीक-ठीक तरह से इलाज करना एक डाक्टर या वैद्य का सबसे पहला कर्तव्य है। परन्तु यदि घटना का वर्णन ठीक है तो सबसे बड़ी अमानुषिकता तो यह है कि डाक्टर ने अन्त्यजों के मुहल्ले में जाने, मरीज़ को जाँच करने और खुद थर्मामीटर लगाने तक से इन्कार कर दिया। सचमुच यदि अस्पृश्यता का सिद्धान्त किसी परिस्थिति में संसार में लागू करना ठीक हो तो वह अपने पेशे को कलंकित करनेवाले इस मनुष्य को नस्सन्देह लगाया जा सकता है। पर मैं आशा करत

हूँ कि श्री ठक्कर के संवाददाता ने कहीं अत्युक्ति कर दी होगी। और यदि यह घटना पूरी तरह सत्य हो, तो मैं यह आशा करता हूँ कि वह डाक्टर स्वयं आगे बढ़कर उस समाज की सेवा-द्वारा अपनी ग़लती की भरपाई कर देगा जिसके साथ उसने अपनी अमानुषिकता-द्वारा ऐसा घोर अत्याचार किया है।

अस्पृश्यता का विष

[हिन्दू-धर्म के सब प्रेमियों को नीचे लिखा पत्र पढ़कर हर्ष के साथ दुःख भी अवश्य ही होगा—]

"कुगालुर तामिलनाड के कोयम्बटूर ज़िले का एक गाँव है। गांव के सब रहनेवाले किसान हैं। इस गांव में महासभा के एक उत्साही और सच्चे दिल वाले सेवक श्री सुब्रानागवंडर रहते हैं, जो इस गाँव की शोभा हैं। अपने निःस्वार्थ खादी प्रचार के काम के कारण लोग उन्हें 'गांधी' सुब्रानागवंडर कहते हैं। पिछले छः सालों से वह तहसील कांग्रेस कमिटी में सभापति या मंत्री की हैसियत से काम करते रहे हैं। इस गांव के ही नहीं, परन्तु इस सारी तहसील के लोग खादी का अर्थशास्त्र समझ कर जो खादी पहनने लगे हैं, उसका श्रेय आप ही को है। वह 'यंग इण्डिया' के ग्राहक हैं, और आपके आंदोलन से परिचित हैं। गत आंदोलन में उन्होंने कुछ स्वयं-सेवक खड़े करके गांवों में शराब की दुकानों पर पिकेटिंग शुरू करवा कर सफलता प्राप्त की थी। ज़िले के अफ़सरों ने उन्हें दबाने की बहुतेरी कोशिशें कीं, परन्तु चूँकि वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार थे, हाकिमों की कोशिशें बेकार हुईं। उनके

अभाव में सारा तालुका जड़ता छोड़कर जगा न होता। संक्षेप में, वह दक्षिण भारत के सच्चे और निःस्वार्थ सेवकों में एक हैं। अब इस गाँव में ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है, जिसकी वजह से गांव के तमाम लोग उनके विरोधी बन गये हैं। ऐसे समय उनके एक साथी की हैसियत से मैं आपकी सहायता चाहता हूँ।

इस परिस्थिति को समझाने के लिए इस गाँव के सामाजिक रीति-रिवाजों का वर्णन करना आवश्यक है। गांव वाले बड़े कट्टर हैं, और उन्हें रूढ़ियों पर अन्धविश्वास है। कैसी ही दलीलें और समझाने की कोशिशें क्यों न की जायँ, वे अपने मार्ग से हटाये न हटेंगे। यदि कोई अस्पृश्यता-निवारण की बात कहता है, तो उसका मजाक उड़ाया जाता है; और हिन्दू-धर्म का द्रोही कह कर उसकी निन्दा की जाती है। इस गांव में 'अस्पृश्य' कहे जाने वाले लोगों के अनेक कुटुम्ब हैं। उनका एक जुदा मुहल्ला है। वे उच्चवर्ण के लोगों की जमीन में मजदूरी करके अपना गुजर-बसर करते हैं। जिस मुहल्ले में 'दूरित' रहते हैं, उसमें एक कुँआ है, परन्तु अस्पृश्यों (जिन्हें यहां पल्ला कहते हैं) के मुहल्ले में एक भी कुँआ नहीं है।

इन 'पल्लाओं' के मुहल्ले के पास श्री सुबानागवंडर की बाड़ी है। इस बाड़ी की बावली से पल्लाओं को पानी भरने देने का उनका विचार बहुत पुराना था। एक महीना हुआ, एक दिन

सुबह अपने एक मित्र के साथ बाड़ी में जाकर उन्होंने दो अस्पृश्यों को बावडी से पानी ले जाने दिया, और उनके चले जाने पर उन्होंने और उनके मित्र ने उसी बावली में स्नान किया। यह समाचार एकाएक दावानल की तरह गांव भर में फैल गया। लोगों की दृष्टि में किसी भी हिन्दू के लिए यह बड़ा भयंकर अपराध था। लोगों ने उनकी निन्दा की, और उनके नौकरों ने नौकरी से स्तीफे दे दिये। क्योंकि जिस आदमी ने अपनी बावली से पल्लाओं को पानी भरने दिया और फिर उसी में खुद स्नान किया, उसके यहां काम करने में वे अपनी तौहीन समझने लगे—भयंकर पाप मानने लगे। इस प्रकार गांव दो दलों में बँट गया है—एक ओर श्री सुबानागवंडर और उनके चार मित्र हैं, और दूसरी ओर सारा गांव, जिसमें दो-तीन गुण्डे भी हैं। अधिक कट्टर लोगों ने ऐलान किया कि श्री सुबानागवंडर और उनके मित्रों ने पाप किया है, इसलिए ब्राह्मण के हाथ का तीर्थजल पीकर उन्हें शुद्ध हो जाना चाहिए। परन्तु श्री. सुबानागवंडर ने इसे मंजूर न किया, इस पर गांव वालों ने ठहराया है कि उनके और उनके मित्रों के साथ किसी प्रकार का व्यवहार न रक्खा जाय। उनके और उनके मित्रों के खेतों में काम करनेवाले लोगों को धमकाया और मना किया जाता है।

ऊपर की घटना के बाद एक आदमी, जो आज भी श्री

सुबानागवंडर का नौकर है, गाँव की बावली पर पानी भरने गया। जो लोग वहाँ मौजूद थे, उन्होंने दो कारणों से बावली में उतरने न दिया—एक, वह अब तक सुबानागवंडर का नौकर था, दूसरे अगर वह बावली में घुसे तो पानी अशुद्ध हो जाय, उस आदमी ने एक दम दौड़ते हुए आकर सुबानागवंडर को यह ख़बर सुनाई। बावली सार्वजनिक थी, इसलिए सुबानागवंडर और उनके चार मित्रों ने सोचा कि उसमें उतरने का हर एक आदमी को हक़ है। वे उस आदमी के साथ बावली पर गये और उसे अन्दर जाकर पानी लाने को कहा। लोग सैकड़ों की तादाद में जमा हो गये थे। उन्होंने उसे यह कहकर धमकाया और रोका कि अन्दर गये तो मार खाओगे। सुबानागवंडर ने मित्रों के आग्रह से पुलिस को इत्तला की, पुलिस ने तहक़ीक़ात करके मजिस्ट्रेट के सामने मामला पेश किया। ९ जून को इस मामले की पेशी रक्खी गई है।

इस गाँव के बाहर बहुतेरे लोग सुबानागवंडर के सेवा-कार्य की प्रशंसा करते हैं; परन्तु अन्धी धर्म श्रद्धा से सराबोर यह सारा गाँव आज उनका विरोधी है। सुबानागवंडर दृढ़ हैं, वह अपना काम कभी छोड़ेंगे नहीं। गाँव वाले उन्हें अपना काम करने देंगे नहीं। उनका और उनके मित्रों के सार्वजनिक काम की ही नहीं, बल्कि घेरलू काम-काज की भी बड़ी हानि हो रही है। लोक-समूह की इस धर्मभावना और कुछ विघ्नसंतोषियों की व्यक्तिगत

शत्रुता के कारण जो मुट्ठीभर लोग सुबानागवंडर के साथ हैं, उनका बहुत नुकसान हो रहा है। उन्हें सार्वजनिक कुओं या गाँव के मन्दिरों में भी घुसने नहीं दिया जाता।

मैं सुबानागवंडर का एक साथी और शुभेच्छु हूँ। अपने कार्य को हानि पहुँचाये बिना गाँववालों को शान्त करने के लिए वह कौनसा मार्ग ग्रहण करें, इस बारे में आपका एक शब्द इस मौके पर बड़ा सहायक होगा।"

अपनी बहादुरी और दृढ़ता के लिए श्री सुबानागवंडर अत्यन्त धन्यवाद के पात्र हैं। मैं उन्हें यही सलाह दे सकता हूँ कि वह अपने गाँव के अस्पृश्यों की रक्षा करते हुए अपने सिर हर तरह के जोखिम उठालें, और फिर भी गाँव वालों के लिए दिल में थोड़ा भी वैर-भाव न रक्खें। आखिरकार वह देखेंगे कि गाँव वाले उन्हें सताने से बाज आये हैं। पहले तो लोग उनकी भलाई को कमजोरी मान बैठेंगे, परन्तु बाद में वे उस भलाई की तह में छिपी हुई शक्ति के दर्शन कर सकेंगे। क्योंकि जब लोग देखेंगे कि वह उनके प्रति नम्र और क्षमाशील हैं, और तो भी अस्पृश्यों की रक्षा करने में पहाड़ की तरह अटल हैं, तो उन्हें फ़ौरन् ही अपनी भूल नजर आने लगेगी। जैसे-जैसे समय बीतेगा, गाँववालों के साथ लोगों की हमदर्दी न रह जायगी, और सुबानागवंडर भी प्रजा की सक्रिय सहानुभूति और सहायता प्राप्त करेंगे। शर्त्त सिर्फ

यही है कि उन्हें अपने सर्वस्व की कुर्बानी के लिए तैयार हो जाना चाहिए; गाँववालों का पापपूर्ण बहिष्कार यदि मज़दूरों को भड़-काने में सफल रहे, तो उन्हें अपने खेत बग़ैर जुते ही पड़े रहने देने को तैयार होना चाहिए। उनका साथ देनेवाले उनके चार मित्र हैं, इस समाचार से कुछ आश्वासन मिलता है। परन्तु इन मित्रों को खो बैठने पर भी उन्हें अपने संकल्प को पूरा करने की तत्परता रखनी चाहिए, क्योंकि मेरा विश्वास है कि वह जो खोवेंगे, सो प्राप्त करने के लिए ही। ईश्वर जिसे आशीर्वाद देना चाहता है, कभी-कभी उसकी पूरी-पूरी परीक्षा करता ही है।

अस्पृश्यता + दूरता

हिन्दुओं के पापों का पुञ्ज कोई छोटा-मोटा नहीं है। परमार्थ-शास्त्र को हमने स्वार्थमय बना दिया है। शास्त्र में निहित अटल सिद्धान्तों को छोड़ उसमें के क्षणिक व्यवहार वाले श्लोकों को स्थायी रूप देकर दुराचार को धर्म की जगह रख दिया है। अस्पृश्यता ऐसा ही एक दुराचार है, यह मेरे अंतः-करण में दिन-दिन निश्चय होता जा रहा है। कौन जाने कि अस्पृश्यता का पाप काफ़ी न हो, इससे रही-सही पूरी करने के लिए अब दूरता के पाप की शोध हुई है। दक्षिण में, अर्थात् मद्रास इलाक़े में तो लोग इस पाप से परिचित हैं। इन दूरित लोगों की सेवा के लिए एवं अपने प्रायश्चित्त के लिए वहाँ के महासभावादी (कांग्रेसी) हिन्दुओं ने त्रावणकोर में सत्याग्रह शुरू किया है। त्रावणकोर हिन्दू राज्य है। वहां यह 'दूरता' अपने पूरे जोर में फैली हुई है। यहां वाले तो बहुत से 'दूरता' का अर्थ भी नहीं जानते होंगे। शब्दकोष में उसका अर्थ मिले, सो भी नहीं। शास्त्रों में तो हो ही कहां से? 'दूरता' का अर्थ तो है अस्पृश्य लोगों का हिन्दू से अमुक हद से बाहर रहना-चलना। इन दूरित लोगों की छाया से भी दूसरे हिन्दू और ख़ास कर ब्राह्मणों को छूत लगती है, इस मान्यता के कारण जहाँ ब्राह्मण इत्यादि चलते हों उस रास्ते चलते हुए उन्हें अमुक गज के अन्तर से चलना पड़ता

है। ऐसा न करें तो उनपर गालियों की बौछार पड़े और साथ ही मार भी पड़े। त्रावणकोर में ऐसे कई रास्ते भी हैं, जिनमें इन बेचारे भाइयों को प्रवेश तक नहीं करने देते। इस असह्य दूषण से पीड़ित होकर, जैसा कि ऊपर कहा गया, महासभावादी हिन्दुओं ने सत्याग्रह का आश्रय लिया है। जिस रास्ते ये जाने का अपना हक़ सिद्ध करना चाहते हैं उस रास्ते में दूरित हिन्दू एक अन्य हिन्दू को लेकर प्रवेश करते हैं। इस प्रकार हमेशा तीन-तीन आदमी जाते हैं और गिरफ़्तार होते हैं। तीन जने इस तरह गिरफ़्तार होकर छः महीने के लिए जेल गये हैं। इसमें ज़रा भी शक नहीं कि यदि शान्तिपूर्वक और लगातार यह सत्याग्रह चलेगा तो लोगों की जय होगी।

उत्तर भारत में अस्पृश्यता का दोष दूर करने के प्रयत्नशील हिन्दू इससे बहुत आगे बढ़े हैं। भारतभूषण मालवीयजी की मदद से, और उनके नेतृत्व में अन्त्यज लोग हिन्दू कुओं से पानी भरते हैं। स्पर्श का दोष तो बहुत जगह नष्ट हो गया माना जाता है। अब अस्पृश्य गिने जाने वाले लोगों को कुओं का उपयोग मिलने लगा है, ऐसी ख़बर दाहोद-ताल्लुका-समिति के मंत्री ने भेजी है। वह बतलाते हैं कि लोकल बोर्ड के कुएँ से अन्य हिन्दू-अन्त्यजों को पानी नहीं भरने देते थे। एक बुनकर, जिसने वर्नाक्युलर फ़ाइनल की परीक्षा पास की है, उसने उक्त कुँए का उप-

योग करने की हिम्मत करके अपने दूसरे जाति-भाइयों को समझाया। वे समझे और कुएँ पर पानी भरने गये। अन्त्यजेतर हिन्दुओं ने अटकाने का प्रयत्न किया, पर फ़ौजदार साहब ने दाद न देकर समझाया कि जब देश में इस प्रतिबन्ध के विरुद्ध आन्दोलन हो रहा है, तब उन्हें कोई रुकावट नहीं डालनी चाहिए। तब अन्त्यजेतर हिन्दूभाई शान्त हो गये। यह समाधान अच्छा कहा जायगा। पर यह घटना बतलाती है कि अभी गुजरात में भी सार्वजनिक कुएँ में से पानी भरने देने का प्रतिबन्ध अन्त्यज भाइयों के सामने बना ही हुआ है। दाहोद के हिन्दू भाइयों को मैं मुबारिकबादी देता हूँ, किन्तु साथ ही दाहोद-समिति को सूचित करता हूँ कि अन्त्यजों के मुहल्ले में जाकर उन्हें सफ़ाई का ज्ञान कराना चाहिए और घड़े इत्यादि साफ़ रखने की हिदायत करनी चाहिए। साथ-साथ ये सुधार न होंगे तो अभी जो शुरुआत हुई है उसमें ही अन्त्यजों के पानी भरने के सम्मुख विरोध उठाना सम्भव है। सुना है उत्तर में कई जगह ऐसा हुआ भी है।

[नोट—ऊपर के लेख मे त्रावणकोर के सत्याग्रह की बात का जो उल्लेख आया है उस सम्बन्ध में उसके आगे-पीछे की थोड़ी बातें बताना असंगत न होगा। १३ मार्च को केरल प्रांतिक समिति के मंत्री श्री केशव मेनन ने गांधीजी को पत्र लिखकर सत्याग्रह के सम्बन्ध में उनका सन्देश माँगा था। उस पत्र में उन्होंने बतलाया था—

"जिस सड़क पर जलूस निकालने का निश्चय किया है वह ाड़क सार्वजनिक कोष से क़ायम रक्खी जाती है और इस समय आजकल) ईसाई, मुसलमान एवं शिष्ट हिन्दू बेरोक-टोक उसका ापयोग करते हैं।"

इस पत्र का जवाब देते हुए गाँधीजी ने लिखा था—

"आपने जलूस निकालने का निश्चय किया है, यह एक तरह ा सत्याग्रह ही कहा जायगा। मैं समझता हूँ इस सत्याग्रह की ार्त्तों के बारे में आपका ध्यान आकर्षित करने की जरूरत नहीं ोगी। जलूस को यदि हमारे कोई आदमी अटकावें तो बेलकुल बल का प्रयोग हो। आपको तो बिना किसी झगड़े ो झुक ही जाना चाहिए और मार पड़े तो उसे सहन कर लेना ाहिए। जलूस में भाग लेनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को यह शर्त्त ालूम रहनी चाहिए और वह उसको पालन करने के लिए तत्पर हे। उद्दामता (उद्दण्डता) तो बिलकुल होनी ही नहीं चाहिए ौर आपको ऐसा लगे कि जलूस में शामिल होनेवाला इस शर्त्त ा पालन न करेगा तो आपको जलूस रोकने में भी नहीं हिचकना ाहिए। मेरा विश्वास है कि हमने सुधार-विरोधियों के साथ हुत विचार-विमर्श नहीं किया; इसलिए तो और भी सावधानी ो जरूरत है। प्रश्न विकट है और बिछौने पर पड़े-पड़े मेरा ापको सलाह देना आसान है। अतएव सावधानी का इशारा

करके आपकी सफलता चाहते हुए ही मैं विराम लूँगा ।"

इस पत्र की तारीख़ १९ वीं मार्च की है। इसके बात कितने ही स्थानिक भाई गाँधीजी से मिले और उनसे मिलने के बाद गाँधीजी ने १५ अप्रेल को श्री केशवमेनन को निम्न पत्र लिखा है—

"भाई शिवराम ऐयर और बंचेसुरू ऐयर आपके सत्याग्रह के सिलसिले में मुझ से मिलने आये हैं। वे बताते हैं कि जिस रास्ते से जलूस जाता है वह रास्ता खानगी है और जिस मन्दिर को वह जाता है उस मन्दिर का है। और वह मन्दिर ब्राह्मण ट्रस्टिओं के एकाधिकार स्वामित्व का है, जो इन भाइयों के कहने के मुताबिक, रास्ते पर के आवागमन पर क़ाबू रखने के लिए खुदमुख़्त्यार हैं। मैंने उनसे पूछा कि यदि यह रास्ता ब्राह्मणों के ही निजी स्वामित्व का हो तो उस पर से ब्राह्मणेतर लोग जाते हैं या नहीं और उन्होंने यह स्वीकार किया कि वे जाते हैं। तब मैंने उनसे कहा कि जतबक एक भी ब्राह्मणेतर इस रास्ते पर से जा सके तबतक कथित अस्पृश्यों और दूरितों को भी वही हक़ होना चाहिए। वे मेरे साथ सहमत हुए और उन्होंने बतलाया कि मन्दिर और रास्ते से सम्बन्ध रखनेवाले ट्रस्टियों तथा ब्राह्मणों को ठीक-ठीक समझा सकने में कुछ देर लगेगी। फिर पं० मालवीयजी भी दो महीने में दक्षिण की ओर जानेवाले हैं। यदि मन्दिर के ट्रस्टी और अस्पृश्यों एवं दूरितों के प्रतिनिधि

उनके और आपके बीच के झगड़े का निबटारा मालवीयजी को पंच बनाकर करना मंजूर करें और निश्चय हो जाय कि अमुक समय तक वह अपना निर्णय दे दें तो मैं आपको सलाह दूँगा कि फिलहाल आप सत्याग्रह स्थगित करदें, और ऐसा करते समय आप के आदमियों को यह भी जाहिर करना चाहिए कि सिर्फ पंच चुनने के कारण सत्याग्रह बन्द रहता है। यह तो निश्चय है कि यह सलाह यह मानकर ही दी है कि ऐयर-बन्धुओं की बताई हुई सारी बातें सही हैं। वे कहते हैं कि सुधार करने के लिए वे भी हमारी ही तरह आतुर हैं; और यदि उनका कहना सत्य हो तो अपने सिद्धान्त को धक्का न लगे इस रीति से हमें उनके सामने नम जाना चाहिए।

इस पत्र-व्यवहार से यह भी समझा जा सकता है कि गाँधीजी सत्याग्रह की कैसी और कितनी मर्यादा रखते हैं।

म० दे०]

कुछ उचित प्रश्न

कुछ दिन हुए मैंने अस्पृश्यता के बारे में बंगाल से प्राप्त एक विचारपूर्ण पत्र छापा था। उसके लेखक आज भी उस विषय में बड़ी सरगर्मी से खोज कर रहे हैं। अब मद्रास की तरफ से भी एक सज्जन ने पत्र लिख कर उसकी वैसी ही खोज करने के लिए कितने ही प्रश्न पूछे हैं। इस जटिल प्रश्न की खोज करने के लिए कट्टर हिन्दू लोग भी प्रवृत्त हुए हैं, यह बड़ा शुभ चिन्ह है। इसमें कोई शक नहीं कि प्रश्न पूछने वाले को सच्ची उत्कंठा है। प्रश्न नमूनारूप हैं। क्योंकि इतनी बड़ी सूची में एक भी प्रश्न ऐसा न होगा जो मेरे प्रवास-काल में मुझसे पूछा न गया हो। इन सज्जन के पूछे इन जटिल प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न इसी आशा से करता हूँ कि मेरे जवाब से पत्र लिखने वाले सज्जन को—जो एक कार्यकर्त्ता और सच्चे शोधक होने का दावा करते हैं—और दूसरे कार्यकर्त्ताओं और शोधकों को कुछ, रास्ता दिखाई दे।

१—अछूत-पन को दूर करने के लिए असली उपाय क्या क्या करने चाहिए ?

(अ) अस्पृश्यों के लिए सब सार्वजनिक शालायें, मन्दिर, रास्ते, जो अब्राह्मणों के लिए खुले हैं और जो किसी खास जाति के लिए नहीं होते, खुले कर दिये जायँ।

(ब) ऊँची जाति वाले हिन्दुओं को चाहिए कि उनके बच्चों के लिए मदरसे खोलें; जहाँ जरूरत हो वहाँ उनके लिए कुआँ खोदें और उन्हें सब प्रकार आवश्यक मदद पहुँचावें—जैसे उनके नशे की आदत छुड़ाने और सफाई के नियम पालन करने का रिवाज डालना और उन्हें दवा—दरपन की मदद पहुँचाना।

(२)—जब कि अछूतपन बिलकुल दूर हो जायगा तब अछूतों का धार्मिक दरजा क्या होगा ?

उनकी धार्मिक स्थति वैसी ही मानी जायगी जैसी कि उच्च हिन्दुओं की मानी जाती है। और इसलिए वे शूद्र कहे जायँगे अतिशूद्र नहीं।

(३) जब कि अछूत-पन दूर कर दिया जायगा तब अछूतों और ऊँचे दरजे के कट्टर ब्राह्मणों का क्या सम्बन्ध रहेगा ?

जैसा कि अब्राह्मण हिन्दुओं के साथ है।

(४)—क्या आप जातियों को मिला देने का प्रतिपादन करते हैं ?

मैं सब जातियां तोड़कर सिर्फ चार ही वर्ण रखना चाहता हूँ।

(५)—अछूत लोग मौजूदा देव-मन्दिरों में हस्तक्षेप न करते हुए अपने लिए नये मन्दिर क्यों न बनालें ?

ऊँची कहलाने वाली जातियों ने ऐसे साहस के लिए उनमें अधिक शक्ति ही नहीं रहने दी है। यह कहना कि वे हमारे मंदिरों में दख़ल करते हैं इस सवाल पर ग़लत तौर पर विचार करना है। हम उच्च कही जाने वाली हिन्दू जातियों को इन्हें हिन्दुओं के सार्वजनिक मन्दिरों में आने देना चाहिए और इस तरह अपने इस कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।

६—क्या आप जातिगत प्रतितिधित्व के पक्षपाती हैं, और क्या आपका यह भी मत है कि अछूतों को तमाम शासन-संस्थाओं में प्रतिनिधि भेजने का हक होना चाहिए ?

नहीं, मैं यह नहीं कहता। लेकिन यदि प्रभावशाली जातियों की तरफ से जानबूझ कर अस्पृश्यों को अलग रक्खा जाय तो इस तरह उन्हें अलग रखना अनुचित होगा और यह स्वराज्य के रास्ते में रुकावट डालेगा। जुदी-जुदी जातियों के प्रतिनिधित्व को मैं स्वीकार नहीं करता। पर इसका मतलब यह नहीं है कि किसी एक जाति को प्रतिनिधित्व न मिले, लेकिन इससे तो उलटा प्रतिनिधित्व रखने वाली जातियों पर यह भार डाला जाता है कि वे उन जातियों के प्रतिनिधित्व की ठीक-ठीक रक्षा करें, जिनके प्रतिनिधि न हों या जिनके प्रतिनिधि कम हों।

७—क्या आप वर्णाश्रम-धर्म को मानते हैं ?

हां, लेकिन आज तो वर्ण की हँसी उड़ाई जाती है; आश्रम का ठिकाना नहीं और धर्म का विपर्यय हो रहा है। सारी व्यवस्था का ही परिमार्जन होना चाहिए और धर्म के सम्बन्ध में हुई नई-नई खोजों के साथ उसका ऐक्य स्थापित करना चाहिए।

८—क्या आप यह नहीं मानते कि भारतवर्ष कर्म-भूमि है और इसमें जन्म पाये हर शख्स को अपने भले-बुरे पूर्व कर्म के ही अनुसार विद्या-बुद्धि, धन और प्रतिष्ठा मिलती है ?

पत्र-लेखक सज्जन जिस रूप में मानते हैं उस रूप में नहीं क्योंकि हर शख्स कहीं क्यों न हो जैसा करेगा वैसा पावेगा। लेकिन भारतवर्ष खास करके भोग-भूमि के विपरीत अर्थ में 'कर्म-भूमि' है कर्त्तव्य-भूमि है।

९—अछूतपन के दूर करने की बात करने के पहले क्या अछूतों में शिक्षा-प्रचार और सुधार होना लाजिमी शर्त्त नहीं है ?

अस्पृश्यता दूर किये बिना अस्पृश्यों में सुधार या प्रचार नहीं हो सकता।

१०—क्या यह बात कुदरती नहीं है, जैसी कि होनी चाहिए, कि शराब न पीने वाले शराब पीने वाले से परहेज रखते हैं और शाकाहारी अ-शाकाहारी से ?

यह आवश्यक नहीं है। शराब न पीने वाला अपने शराब

पीने वाले भाई को उस बुरी आदत से बचाने के लिए उसके पास जाकर अपना कर्त्तव्य करेगा। और इसी प्रकार मांस न खाने वाला खाने वाले को ढूँढ़ेगा।

११—क्या यह बात सच नहीं है कि एक शुद्ध (इस अर्थ में कि वह मद्यपी नहीं है और शाकाहारी है) आदमी आसानी से अशुद्ध (इस अर्थ में कि वह मद्यपी और अशाकाहारी है) हो जाता है जब कि वह उन लोगों में मिलता-जुलता है जो शराब पीते हैं, हिंसा करते हैं और मांस खाते हैं ?

यह कोई आवश्यक बात नहीं कि वह आदमी जो उसकी बुराई नहीं जानता है यदि शराब पिये या मांस खाये तो वह अपवित्र (नापाक) है। लेकिन मैं समझता हूँ कि बुरे आदमी की संगत करने से बुराई होना संभव है। इस मामले में अस्पृश्यों के साथ किसी के संगत करते की तो कोई बात नहीं की गई है।

१२—कुछ कट्टर ब्राह्मण जो दूसरी जातियों से (जिनमें अछूत भी शामिल हैं) नहीं मिलते-जुलते हैं और अपनी एक अलहदा जाति बनाकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करते रहते हैं, उसका कारण क्या यही नहीं है ?

वह आध्यात्मिक स्थिति, जिसकी रक्षा से लिए चारों तरफ से बन्द रहना पड़ता है, बड़ी कमजोर होगी। और अलावा इसके

वे दिन भी गये जब कि मनुष्य सदा एकान्त में रहकर अपने गुणों की रक्षा करता था।

१३—अछूत-पन को दूर करने का प्रतिपादन करके क्या आप भारत के धर्म और वर्ण-व्यवस्था (वर्णाश्रम-धर्म) में दख़ल नहीं देते हैं, फिर वह धर्म और व्यवस्था चाहे अच्छी चीज हो या बुरी ?

सिर्फ एक सुधार की हिमायत करने ही से मैं कैसे किसी बात में दखल करता हूँ ? दखल करना तो तब कहा जाता जब कि मैं जो लोग अस्पृश्यता कायम रखते हैं उन पर जोरो जुल्म करके अस्पृश्यता का पक्ष समर्थन करता होता।

१४—पुराने कट्टर ब्राह्मणों को इसका विश्वास कराये बिना ही उनके धर्म में दखल करने से क्या आप उनके प्रति हिंसा के दोषी न होंगे ?

मैं कट्टर ब्राह्मणों के प्रति हिंसा का दोषी नहीं हो सकता, क्योंकि मैं बिना विश्वास उत्पन्न किये उनके धर्म में कोई दखल नहीं करता।

१५—ब्राह्मण लोग जो और दूसरी जातियों को स्पर्श नहीं करते, उनके साथ खाना नहीं खाते, शादी नहीं करते, अस्पृश्यता दोष के दोषी हैं या नहीं ?

दूसरी जाति के लोगों को स्पर्श करने से यदि वे इनकार करते हैं तो वे अवश्य दोषी हैं।

१६—मनुष्य के हक़ का अमल करने के लिए अस्पृश्य लोग ब्राह्मणों के अग्रहारम् में घूमें तो इससे क्या उनकी क्षुधा तृप्त होगी ?

मनुष्य सिर्फ रोटी खाकर ही नहीं जीता है । बहुत से लोग खाने से आत्म-सम्मान को अधिक पसंद करते हैं।

१७—अस्पृश्य लोग इतने शिक्षित नहीं कि वे अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त को पूरी तरह समझ सकें और ब्राह्मण लोग राजनीति के बनिस्बत धर्म की ज्यादा चिन्ता करते हैं, सो क्या इस बारे में सत्याग्रह करने से वह हिंसात्मक न हो उठेगा ?

यदि इससे वायकोम के प्रति इशारा किया गया है तो अनुभव से यह बात मालूम हुई है कि अस्पृश्यों ने आश्चर्य-जनक आत्म-संयम दिखाया है । सवाल का दूसरा भाग यह सूचित करता है कि ब्राह्मण लोग जिनका इससे सम्बन्ध है, सम्भव है मारपीट कर बैठें । यदि वे ऐसा करेंगे तो मुझे बड़ा अफसोस होगा। मेरी राय में तो तब वे धर्म के प्रति सम्मान के बदले धर्म का अज्ञान और उसके प्रति घृणा ही जाहिर करेंगे।

१८—क्या आपका कहना यह है कि जात-पांत धर्म और विश्वास के किसी प्रकार के प्रेम के बिना ही सबको समान हो जाना चाहिए ?

मनुष्य के प्राथमिक अधिकारों के बारे में कानून की दृष्टि

में तो यही होना चाहिए जिस तरह कि जात-पांत और वर्ण का लिहाज रक्खे बिना हम लोगों में भूख-प्यास इत्यादि सर्व-सामान्य है।

१९—यह देखते हुए कि केवल महान् आत्मायें ही, जो कि अपना कर्म-जीवन समाप्त कर चुकी हैं, उच्च दार्शनिक सिद्धान्त को पहचान सकी हैं, और उसका पालन कर सकी हैं, मामूली गृहस्थ नहीं, क्योंकि वे तो ऋषियों के बताये मार्ग का अनुसरण करते हैं और ऐसा करते हुए संयमशील होकर जन्म-मरण के बंधन से छुटकारा पाते हैं, क्या वह सिद्धान्त एक मामूली गृहस्थ के लिए व्यवहार में किसी मसरफ़ का होगा?

इस सीधे-सादे सिद्धान्त को मानने में केवल जन्म के कारण कोई मनुष्य अछूत नहीं माना जा सकता; कोई उच्च दार्शनिक सिद्धान्त बीच में नहीं आता। यह सिद्धान्त इतना सरल है कि अकेले कट्टर हिन्दुओं को छोड़कर सारी दुनिया उसकी कायल है और इस बात पर कि ऋषियों ने वसे और इस अछूतपन की शिक्षा दी है जैसा कि हम पाल रहे हैं, मैंने आपत्ति ही उठाई है।

बहता हुआ जख्म

कुछ समय पहले दक्षिण में एक अन्त्यज पर मन्दिर में प्रवेश करके धर्म का अपमान करने के अपराध में मुक़दमा चलाये जाने के विषय की चर्चा की गई थी। वैसा ही एक दूसरा मुकदमा अभी वहाँ हुआ है और उसमें भी वैसा ही फ़ैसला दिया गया है। मुसगेसन नामक एक माला को तिरुपति के स्टेशनरी सब मजिस्ट्रेट के समक्ष, तिरुचन्नुर के एक मन्दिर में पूजा के लिए प्रवेश करने के अपराध के कारण पेश किया गया था। छोटी अदालत ने उस प्रवेश को फ़ौजदारी कानून की १९५ वीं धारा के अनुसार 'अमुक वर्ग के धर्म का अपमान करने के इरादे से (मंदिर) अपवित्र करने का अपराध मानकर' उसे ७५) जुरमाना या जुर्माना न दे तो एक महीने की सख्त क़ैद की सजा फरमाई थी। बेचारे अन्त्यज के सौभाग्य से वहाँ हितैषी सुधारक भी मौजूद थे। उन्होंने अपील करवाई। अपील की अदालत ने अपील को मंजूर रक्खा और जो फैसला सुनाया उसमें से नीचे का अंश उद्धृत किया गया है।

"नीचे की अदालत में मुद्दई की तरफ से सात गवाहों के इजहार हुए थे। उन्होंने अपने इजहारों में कहा था कि मुजरिम माला जाति का है। मालाओं को मन्दिर में जाने की मुमानियत

है। और यदि वह उसमें प्रवेश करे तो मन्दिर अपवित्र हुआ माना जाता है। यह कहा गया है कि अपील करने वाला मन्दिर में गरबगुडी तक पहुँच गया था। केवल सवर्ण हिन्दुओं को ही उस स्थान तक जाने की इजाजत होती है। उस समय वह सभ्य पोशाक पहने हुए था और भस्म-तिलक इत्यादि किये हुए था। पुजारी ने उसे सवर्ण हिन्दू समझा था और उससे नारियल लेकर उसे कपूर की आरती की रक्षा भी लेने दी थी और इसके लिए अपील करने वाले ने चार आने चन्दा भी दिया था। अपील करने वाला जब वहाँ से चला गया तब मन्दिर के संचालकों को मालूम हुआ कि वह माला जाति का था; और मन्दिर उसके प्रवेश से अपवित्र हुआ था इसलिए उसको शुद्धि की विधि से शुद्ध करने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

"पहले तो इस बात पर विचार होना चाहिए कि मुद्दई की तरफ से जुर्म कायम करने के लिए जिन बातों को साबित करना जरूरी है वे साबित की गई हैं या नहीं। मन्दिर में माला जाति के मनुष्य के जाने से वह भ्रष्ट हो गया यह इसी अर्थ में सिद्ध होता है कि उसको शुद्ध करने के लिए शुद्धि के संस्कार की आवश्यकता मालूम हुई। परन्तु इसके अलावा यह बात साबित करना जरूरी है कि उसके प्रवेश से अमुक वर्ग के मनुष्यों के धर्म का अपमान आ है और दूसरा यह कि मुजरिम का ऐसा

अपमान करने का इरादा था, या वह यह जानता था कि उससे वैसा कोई अपमान होगा। मुद्दई की तरफ से पेश किये गये सबूतों में इतनी त्रुटि है इसलिए जुर्म साबित हुआ नहीं माना जा सकता और इसलिए यह सजा रद होनी चाहिए। मेरे ख़्याल में मुक़दमे की फिर जाँच करने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

पहले के मुकदमे की तरह इसमें भी बेचारे तिरस्कृत अन्त्यज के विरुद्ध मुक़दमा दायर करनेवाले, न्यायाधीश और उसका बचाव करनेवाले सभी हिन्दू थे। और अपराधी दोनों दफ़ा सख़्त कैद की सजा से बच सके थे। (मैं मानता हूँ कि जुरमाना देने की गुंजाइश ही न थी) फिर भी जिसका निर्णय होना चाहिए था वह न उस समय हुआ था और न इस समय ही हुआ। हिन्दू न्यायाधीश यह निर्णय कर सकते थे कि कोई अन्त्यज हिन्दू पूजा करने के लिए किसी मन्दिर में प्रवेश करे तो उससे जिस हिन्दू धर्म में होने का वह दावा करता है उस हिन्दू धर्म का किसी भी प्रकार, किसी भी अर्थ में अपमान नहीं होता है। कुछ हिन्दुओं के विचार से अपराधी का मन्दिर-प्रवेश अयोग्य भले ही हो, रूढ़ि के विरुद्ध हो, और चाहे जो-कुछ हो, वह हिन्दुस्तान के फौजदारी क़ानून के अनुसार जुर्म समझा जाय ऐसा उससे किसी भी वर्ग के धर्म का अपमान नहीं होता है। यह बात उल्लेखनीय है कि अपराधी के शरीर पर तिरस्कृत जाति के कोई

चिन्ह न थे, उसकी पोशाक सभ्य थी और वह भस्म और तिलक किये हुए था। यही नहीं, यदि ये अत्याचार-पीड़ित लोग हमें ठगना चाहें तो उन्हें दूसरों के साथ में पहचान लेना मुश्किल होगा। धर्म का पवित्र नाम लेकर मनुष्यों के पीछे पड़ना यह शुद्ध धर्मान्ध हठ है। इन अन्त्यजों के पीछे पड़नेवालों को यह खबर नहीं है कि वे जितने इज्जतदार होने का दावा करते हैं उतनी ही इज्जतवाले और हिन्दुओं को जिन धार्मिक विधियों का पालन करना चाहिए उन सब धार्मिक विधियों का आदर करनेवाले मनुष्यों को सार्वजनिक मन्दिरों में दाखिल होने से रोक कर वे स्वयं अपने ही धर्म को भ्रष्ट कर रहे हैं। मनुष्य के दिल को तो ईश्वर ही जानता है और यह सम्भव हो सकता है कि फटे-टूटे वस्त्रों में ढका हुआ अन्त्यज का हृदय बड़ी टापटीप के साथ वस्त्रों से सज्जित उच्चवर्ण के हिन्दू के हृदय से कहीं अधिक निर्मल हो।

यदि अछूतों का अछूतपन इस कारण है कि वे जानवर मारते हैं और उन्हें मांस, लहू, हाड़ तथा पाखाना-पेशाब और और गंदगियों से काम पड़ता है तो सभी डाक्टरों और दाइयों (परिचारिकाओं) को अछूत बन जाना चाहिए और इसी प्रकार क्रिस्तानों, मुसलमानों और बड़ी-बड़ी ऊँची जाति वाले हिन्दुओं को भी जो खाने के लिए या बलि देने के लिए जानवरों को मारते है, अछूत बन जाना चाहिए।

इस दलील से तो घोर द्वेष की गन्ध आती है कि चूँकि क़साईख़ानों, ताड़ी की दूकानों और वेश्यालयों को अलग रक्खा जाता है इसीलिए अछूतों को भी अलग रखना चाहिए। क़साई-ख़ानों और शराब को अलग रखा जाता है और रखना चाहिए ही परन्तु क़साइओं और कलालों को तो कोई अलग नहीं करता है। वेश्याओं को अलग रखना चाहिए, क्योंकि उनका पेशा घृणित है और समाज की उन्नति के लिए बाधा-स्वरूप है। परन्तु इधर अछूतों का पेशा तो न केवल इष्ट ही है बल्कि समाज के हित के लिए परमावश्यक है।

यह कहना तो गुस्ताख़ी की हद है कि अछूतों को परलोक के हक़ तो प्राप्त हैं। यदि परलोक के अधिकार भी छीन लेना अपने ही हाथ में होता तो बहुत संभव है कि अछूतपन की राक्षसी प्रथा के समर्थक उनको वहाँ भी अलग ही छाँट देते। यह कहना तो लोगों की आखों में धूल झोंकना है कि गाँधी अछूतों को छू सकता है और-और लोग नहीं, मानों अछूतों को छूना व उनकी सेवा करना इतने बड़े दोष हैं कि जिसके लिए वैसे ही आदमियों की जरूरत है जो अछूतरूपी रोगाणुओं से अपने को बचा लेने की विशेष शक्ति रखते हों। मुसलमानों, किसानों को तथा और लोगों को जो अछूतपन को नहीं मानते हैं, कौनसी नरक-यातना दी जायगी यह तो भगवान ही जानें।

शारीरिक चुम्बकत्त्व की दलील को तो उचित से अधिक दूर तक खींचा गया है। ऊँची जाति के सब आदमी न तो कस्तूरी के ऐसे सुगन्ध वाले हैं और न अछूत ही प्याज़ा के ऐसे दुर्गन्ध करते हैं। ऐसे हज़ारों अछूत हैं जो ऊँची जाति के अनेक आदमियों से हजार-गुने अच्छे हैं।

यह देख कर कष्ट होता है कि अछूतपन के विरुद्ध ५ वर्ष के लगातार प्रचार के बाद भी आज कितने पढ़े-लिखे विद्वान् पुरुष मिलते हैं जो इस अनीतिमूलक और दूषित रिवाज का समर्थन करते हैं। विद्वानों में भी अस्पृश्यता के भाव का रहना, अस्पृश्यता को कोई प्रतिष्ठा नहीं दिला देता है बल्कि इससे तो हम निराश हो जाते हैं कि चारित्र्य और समझदारी की केवल विद्या से ही कुछ वृद्धि हो सकती है।

अस्पृश्यता रूपी रावण

किसी विद्वान् पंडित जी ने दक्षिण के देशी भाषा के पत्रों में एक लेख लिखा है। अछूतपत के सम-र्थन में उनकी जो दलीलें हैं उनका सारांश, एक मित्रयों लिखते हैं—

(१) आदि शंकराचार्य ने किसी चाण्डाल को दूर हटाया था और जब त्रिशंकु को चाण्डाल हो जाने का शाप मिला था तो सब कोई उससे बचे-बचे दूर ही रहते थे । ये बातें यह सिद्ध करती हैं कि अछूतपन की पैदायश हाल की नहीं है।

(२) आर्यजाति में चाण्डालों को जाति-बहिष्कृत गिनते थे।

(३) स्वयं अछूत भी तो इस अछूतपन के दोष से बरी (मुक्त) नहीं हैं।

(४) अछूतों को अछूत तो हम इसलिए मानते हैं कि वे जानवर मारते हैं और उन्हें हाड़, माँस, पाखाना, पेशाब तथा और और तरह की गन्दगियों से बराबर ही काम पड़ता रहता है।

(५) अछूतों को भी उसी प्रकार से अलग रखना होगा जिस प्रकार क़त्लगाहों वा कसाईखानों, शराब-ताड़ी की दूकानें और वेश्याओं को दूर रखा जाता है या रखा जाना चाहिए।

(६) उनके लिए तो यही काफ़ी है कि परलोक के हक़ तो उन्हें प्राप्त हैं।

(७) गान्धी ऐसे कोई आदमी भले ही उन्हें छू सकें पर वे तो उपवास भी कर सकते हैं। हम लोगों को न तो उपवास ही करना है और न उन्हें छूने की ही जरूरत।

(८) मनुष्य की उन्नति के लिए अछूतपन का माना जाना अत्यन्त ही आवश्यक है।

(९) मनुष्य के पास कुछ विद्युत्-शक्ति रहती है। यह शक्ति दूध के सदृश है। इसमें यदि बुरी चीजें मिला दो तो संभवतः यह शक्ति जाती रहेगी। इसलिए यदि कहीं प्याज और कस्तूरी को एक साथ मिला कर रखना संभव हो तो वहीं हम ब्राह्मण और अछूत को एकत्र मिला सकते हैं।

पत्र-लेखक ने इन्हीं मुख्य-मुख्य बातों का सारांश दिया है। अछूतपन हजार सिरों वाला रावण है। इसलिए जब कभी यह अपना सिर उठावे तभी हमें उसे कुचल देना होगा। हमारी आज की स्थिति का उन कथाओं से क्या लगाव है, यदि यह बात हमें मालूम न हो तो पुराण की कुछ कथायें तो बहुत ही ख़तरनाक कही जायँगी। शास्त्रों में कही हुई यदि प्रत्येक छोटी-सी बात के अनुसार हम अपना जीवन बनावें या उसमें वर्णित पात्रों का ठीक-ठीक हम अनुकरण करने लगें तो ये शास्त्र ही हमारे लिए प्राण-

घातक सिद्ध होंगे। उनसे तो हमें केवल मुख्य-मुख्य सिद्धान्त की बातें स्पष्ट करने वा उन्हें ठीक-ठीक समझने में सहायता मिलती है। यदि किसी धार्मिक ग्रन्थ में लिखा है कि किसी प्रसिद्ध पुरुष ने कोई पाप किया था तो क्या हमें भी पाप करने की आज्ञा उस ग्रन्थ से मिल गई ? यदि हमें केवल एक बार ही कह दिया गया, कि केवल सत्य की ही इस संसार में सत्ता है और सत्य परमेश्वर के तुल्य है, तो हमारे लिए इतना ही बहुत है। यह कहना अनुपयुक्त होगा कि युधिष्ठिर को भी झूठ बोलना पड़ा था। बल्कि उसकी अपेक्षा उपयुक्त बात यह होगी कि जब वे झूठ बोले, तो उन्हें उसी समय, उसी क्षण, कष्ट झेलना पड़ा था और उनकी प्रसिद्धि और बड़े नाम सज़ा पाने के समय उनके कुछ भी काम न आये। उसी प्रकार हमारा यह कहना भी बे-मौक़ा होगा कि आदि शंकराचार्य ने अपने पास से किसी चाण्डाल को दूर हटा दिया था। हमें तो केवल यही जानना यथेष्ट होगा कि जिस धर्म में यह सिखाया जाता है कि प्राणिमात्र के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा अपने साथ करते हो अर्थात् प्राणि-मात्र को अपने ही समान समझो, उस धर्म को एक जीव के प्रति भी निष्ठुर व्यवहार असह्य है, बिल्कुल निर्दोष मनुष्यों के एक पूरे समाज की तो बात ही दूर है। इसके अलावा हमें वे सब बातें मालूम भी तो नहीं हैं कि जिनसे हम जानें कि आदि शंकर ने क्या

किया था और क्या नहीं किया था । यहाँ चाण्डाल शब्द का जिस अर्थ में व्यवहार हुआ है उसका तो हमें और भी कम भान है। यह तो सभी मानते हैं कि इसके अनेक अर्थ हैं जिनमें एक अर्थ है पापी । परन्तु यदि सभी पापियों को अछूत माना जाय तो भय है कि हम सब, हमारे पंडितजी भी, नहीं बच सकेंगे, स्वयं वे भी, अछूत बन जायँगे। अछूतपन की प्राचीनता से किसी ने कभी इन्कार नहीं किया है । परन्तु यदि इसे दोष मानना है तो फिर प्राचीनता के नाम पर इसका समर्थन नहीं किया जा सकता। आर्य-जाति ने अछूतों को यदि जाति-बहिष्कृत माना था तो उसके लिए यह कोई शोभा की बात तो नहीं है। और यदि आर्य-जाति ने अपने विकास के किसी काल में कुछ लोगों के समाज को बतौर सजा के जाति-च्युत माना था तो अब फिर कोई कारण नहीं है कि वह सजा उनके वंशजों पर भी लागू हो और इसका विचार भी न किया जाय कि किस दोष के लिए उनके पूर्वजों को सजा दी गई थी।

अछूतों में भी अछूतपन का होना तो केवल यही सिद्ध करता है कि पाप को हम बंद करके नहीं रख सकते हैं; उसका जहर सर्वत्र फैल जाता है। इस अछूतपन का अछूतों में भी पाया जाना तो इसका एक और कारण है कि सभ्य हिन्दू-समाज को इस महा व्याधि को शीघ्र से शीघ्र नष्ट कर देना चाहिए।

अन्त्यजों के लिए क्या किया है ?

'नवजीवन' के एक पाठक लिखते हैं:—

"दलितोद्धार और अंत्यजोद्धार का कार्य किन-किन दिशाओं में हो रहा है, कृपाकर अगले 'नवजीवन' में लिखेंगे तो उपकार मानूँगा।

"आपसे यह छिपा नहीं है कि अन्त्यजोद्धार की समस्या कितनी जटिल हो रही है। छुआछूत के नाम पर कहे जाने वाले अन्त्यजों की कई तरह बरबादी हुई है; उन्हें तरह-तरह के शारीरिक कष्ट सहने पड़ते हैं, उन पर कई अमानुषिक अत्याचार होते हैं, यही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय उन्नति के तत्त्व को समझकर अगर कोई अन्त्यज सेवा की दृष्टि से स्वदेशी खादी के कपड़े पहन कर निकलता है, तो इसी में वह उच्च कही जाने वाली जातियों का अपराधी बनता है, और उसे मार भी खानी पड़ती है। राजनैतिक क्षेत्र में जिस तरह आपने 'हरि ॐ' करके क़दम बढ़ाये हैं, उसी तरह इस क्षेत्र में काम करने के लिए भी अगर आप अपने कार्यकर्त्ताओं को नियुक्त कर दें, तो मेरी तुच्छ राय में राजनैतिक क्षेत्र में कामयाबी हासिल करने के लिए यह सुलझी हुई समस्या भी एक बड़ी उपयोगी चीज बन जायगी।

"फिलहाल आर्य-समाज और हिन्दू-महासभा इस दिशा में काम कर रही हैं। मगर मैं मानता हूँ कि इनके सिवा अगर आपके कार्यकर्त्ता भी इस काम में जुट जायँ तो काम ज्यादा तेजी

के साथ हो सकेगा। अगर आर्य-समाज, हिन्दू-महासभा और आपका मण्डल, जहाँ तक हो सके, परस्पर मिलकर, आपस में संगठित होकर, काम करेंगे तो इस क्षेत्र में सफलता मिलना बहुत आसान है।"

अन्त्यजों के लिए मैं क्या करता हूँ, इस सवाल का जवाब देना मुश्किल है। इस बात का कोई हिसाब तो दे नहीं सकता। अतएव जवाब यही दिया जा सकता है कि मैंने कुछ भी नहीं किया। किन्तु यदि यह जवाब हलका-सा लगे तो यों कह सकते हैं कि अन्त्यज भाई-बहिन जितना कहें उतना किया। बात तो यह है कि अन्त्यज-सेवा के नाम पर मैं अपनी शक्ति-भर जो कुछ करता हूँ, वह स्वयं अपने लिए कर लेता हूँ। यह कहना कि कोई अन्त्यजों का उद्धार करता है, दूषित है। अस्पृश्यता को मिटाकर उच्च कहे जाने वाले स्वयं अपना उद्धार करते हैं, हिन्दू-धर्म की रक्षा करते हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर तो प्रस्तुत प्रश्न का उत्तर देने की जरूरत ही नहीं रहती। जिस हद तक यह सवाल सिर्फ मुझे लक्ष करके पूछा गया है, उसका जवाब यह है कि मैं स्वयं तो स्वतंत्र-रूप से कुछ करता नहीं हूँ, न कर ही सकता हूँ। भारत-भर में असंख्य साथी इस काम में जुटे पड़े हैं। उनके कार्य में मेरा जितना भाग हो सकता है, उसकी गणना किसी को करना हो तो भले ही कर ले।

यह भाई मानते हैं कि मैं खादी का काम ज्यादातर करता हूँ, मगर यह उनकी भूल है। मैं स्वयं कोई खादी-कार्य करता हूँ, यह तो बता नहीं सकता, हाँ, प्रति दिन नियमानुसार यज्ञ के लिए जो कातता हूँ, उतना मात्र बता सकता हूँ। और तो जो कुछ होता है, सो साथियों द्वारा ही।

साथ ही खादी-कार्य में सैकड़ों या हजारों अन्त्यजों की जो सेवा हो जाती है सो तो है ही। दूसरे अन्त्यजों की सेवा का काम ऐसा नहीं है कि फ़ी गज खादी की कीमत के समान उसकी क़ीमत का कोई अन्दाजा हम लगा सकें। अगर कोई पूछे कि अन्त्यज-शालायें कितनी खोली गईं, उनके लिए कुएँ कितने खोदे गये, मन्दिर कितने बाँधे गये, तो इन सब के जवाब से मुझे सन्तोष तो नहीं हो सकता। अगर कोई कह सके कि अस्पृश्यता का पारा इतना कम हुआ है, तो अवश्य कुछ पता चले। मगर ऐसा यंत्र हमारे पास है नहीं। अन्त्यजों के लिए हजारों शालाओं, उतने ही मन्दिर और उतने ही कुओं के होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता-रूपी दीवार में से एक ईंट भी हिली नहीं है। जब अस्पृश्यता-निवारण का काम शुरू हुआ तब अपने को कट्टर वैष्णव मानने वाले मित्रों ने कहा था—अगर आप अस्पृश्यता-निवारण की धुन को छोड़ दें तो शालायें वग़ैरा बनवाने के काम में आप कहें उतनी मदद दे सकते हैं। अस्पृ-

श्यता मिटा कर आपको क्या करना है ? ऐसी मदद से मुझे जरा भी सन्तोष नहीं हो सकता था। मुझे अन्त्यजों के लिए जुदी संस्थायें नहीं चाहिएँ थीं, मुझे तो वर्तमान सार्वजनिक संस्थाओं में उनके लिए प्रवेशाधिकार को जरूरत थी। जुदी संस्थायें हिन्दुओं को भूषण की नहीं, बल्कि उनके दूषण की सूचक हैं। आज काल अन्त्यजों के लिए जुदी शालायें मन्दिर वगैरा बनवाने के झंझट में मैं पड़ता भी हूँ, तो सिर्फ विवश होकर, आपद्धर्म समझ कर, और यह आशा रख कर कि आख़िरकार इन संस्थाओं और दूसरी संस्थाओं के बीच का भेद मिट जायगा।

मैं स्वयं तो अस्पृश्यता को हवा होते देख रहा हूँ, मगर यह साबित करने के लिए मेरे पास कोई यंत्र नहीं है।

'प्रेम पंथ पावकनी ज्वाला, भाली पाछा भागे जोने;
मांही पड्या ते महासुख माणे, देखनारा दाझे जोने।'

आर्य-समाज और हिन्दू-महासभा अपनी अन्त्यज-सेवा के लिए धन्यवाद की पात्र हैं। मैं जहाँ थोड़ा-बहुत भी कर सकता हूँ, करता हूँ। लेकिन मैं क़बूल करता हूँ कि कई बार काम करने के तरीक़े में भेद होने की वजह से मैं अपनी सेवायें समर्पित नहीं कर सकता। मुझे इस बात का लोभ नहीं है कि हर एक कार्य में मेरा हाथ होना ही चाहिए, न हर एक काम के करने की मुझ में शक्ति ही है। मुझे अपनी शक्ति का भान है, उस मर्यादा में रहकर मुझ से जो कुछ हो सकता है, करके कृतार्थ होता हूँ।

अस्पृश्यता की गुत्थियाँ

भाई गोविन्ददास जादवदास (गोविन्द भाई ढेड़ जाति के हैं) ने एक पत्र भेजा है। उसका मतलब यह है कि अगर अस्पृश्यता को दूर करना है तो फिर अस्पृश्यों के लिए अलग स्कूल, मन्दिर, कुएँ वगैरा क्यों बनें ? यह दलील यों ही छोड़ देने लायक़ तो है नहीं। दक्षिण अफ्रीका में ऐसा ही सवाल उठा था और अब भी उठता ही है। वहाँ हिन्दुस्तानियों के लिए अलग स्कूल खोलने का अर्थ है उनकी अस्पृश्यता की ही आयु बढ़ाना। यह दलील खुद मैंने की। जिसके पाँव में बवाय फटती है वही बवाय का दर्द समझता है इस न्याय से भाई गोविन्द जी का दुःख मैं समझ सकता हूँ।

किन्तु जहाँ मैंने देखा कि जो चीज़ है ही और उसकी हस्ती को न मानकर चलना ही मूर्खता है वहाँ मैंने भेद का अस्तित्व जान-समझकर अपना काम किया है। इसलिए वहाँ मैंने अलग स्कूलों की बात स्वीकार कर ली। वहाँ रेलगाड़ियों में मैंने हिन्दुस्तानियों के लिए दूसरे और पहले दर्जे के अलग डब्बे रखने की बात भी स्वीकार

करलो। जैसे गोविन्दभाई उनका विरोध करते हैं, वैसे मैंने भी किया। किन्तु जहाँ जाति का अस्तित्व ही मिट जाने का भय पैदा हुआ, वहाँ मैंने वैसे भेद को स्वीकार किया जो भेद में भी हल्का-से-हल्का हो जैसा कि पहले हिन्दुस्तानी लोग केवल तीसरे दर्जे में ही मुसाफिरी कर सकते थे। आन्दोलन के अन्त में उनके लिए दूसरे और पहले दर्जे के भी टिकट काटने का हुक्म हुआ। किन्तु उसके साथ ही हिन्दुस्तानियों के लिए पहले-दूसरे दर्जे की गाड़ियाँ अलग रखने का ठहरा। विरोध किया किन्तु अन्त में हमने इतना भेद स्वीकार कर लिया। राज-सत्ता सुभीता कर दे सकती है किन्तु हमारे साथ बैठने पर दूसरे को लाचार क्यों कर कर सकती है ?

ऐसी विचार-सरणी के अनुसार ऐसा निश्चय ऊपर आया कि जब तक अंत्यज सामान्य मन्दिरों का उपयोग न कर सकें तब-तक उन्हें इस का उपयोग ही न मिले, इसकी अपेक्षा यही अच्छा है कि उनके लिए अलग संस्थायें बनें और उन्हें उनका उपयोग मिले। वातावरण में से तो अब अस्पृश्यता चली गई है तो भी बहुत लोग अभी उसे अपने व्यवहार से दूर करने को तैयार नहीं हुए हैं। जब तक यह स्थिति है तब तक अन्त्यजों के जो मित्र हैं, वे क्या करें ? उनकी शुद्धि का सबूत किस प्रकार दें ? जवाब यही होगा कि अन्त्यजों के लिए मन्दिर इत्यादि बनाकर।

भाई गोविन्द जी कहते हैं कि ऐसे मन्दिर वग़ैरा भले ही बनें किन्तु 'अन्त्यजों के लिए' यह विशेषण उन्हें क्यों दिया जाय? ऐसे विशेषण कोई देता नहीं है। जो मन्दिर इधर हाल में बन रहे हैं, उनका उपयोग बनाने वाले और अन्त्यजों के दूसरे मित्र तो करते ही हैं। इस दृष्टि से अन्त्यजों के निमित्त बनाई गई संस्थायें सार्वजनिक हैं। किन्तु उन पर पहला हक है अन्त्यजों का। उनके उपयोग में पहला विचार अन्त्यजों का होता है, और सबसे पहले उनकी सुविधा देखी जाती है।

अगर भाई गोविन्दजी जैसे अन्त्यज भाइयों का दुःख समझ सका हूँ तो मैं उन्हें कहता हूँ कि वे मानें कि मन्दिर वग़ैरा बनाने का आन्दोलन पवित्र, स्तुत्य और अन्त्यजों को लाभदायक है।

अछूतों के सम्बन्ध में—

उस दिन कलकत्ते में आन्ध्र देश के श्री टी. यन. शर्मा मिले और उन लोगों के राह की कठिनाइयों की निस्बत मुझसे पूछा जो पंचम लोगों की सेवा कर रहे हैं। उन्होंने उस बातचीत को लिख कर मेरे देखने के लिए और, यदि मुमकिन हो तो, छपने के लिए भेजा है। उससे कार्यकर्त्ताओं को सहायता मिलने की सम्भावना है, इसलिए मैं उनके सवालों और अपने जवाबों को यहाँ देता हूँ—

१. अछूतपन दूर करने के लिए आप किस तरह का प्रचार-कार्य करने की राय देते हैं ?

अब बहुत जबानी प्रचार करने की जरूरत नहीं है। काम को ही प्रचार समझना चाहिए। आपको सामाजिक दिक्कतों की परवा न करते हुए बेखटके अछूतों की हालत सुधारने का अपना काम करना चाहिए। जब कोई बड़े लोग आवें तो उनके व्याख्यानों की तजवीज करनी चाहिए।

२. हमारे प्रान्त में इस विषय पर दो रायें हैं और इस आशय का एक प्रस्ताव भी पास हो चुका है कि अ-पञ्चम लोगों

में प्रचार-कार्य करने के लिए रुपया न खर्च करना चाहिए। कुछ लोगों का विचार है कि पहले पंचम लोगों को लिखा-पढ़ा देना चाहिए और उनकी तरफ से अछूतपन दूर करने की माँग पेश होनी चाहिए; पर कुछ लोगों की राय है कि उच्चवर्ण हिन्दुओं में उपदेशकों के द्वारा प्रचार करना चाहिए जिससे उनके हृदय बदलें और वे समझने लगें कि अछूतपन एक पाप है और वैतनिक पण्डितों तथा दूसरे उपदेशकों को इस काम में नियुक्त करना चाहिए।

मैं पण्डितों पर एक पैसा ख़र्च न करूँगा। यदि आप इन्हें द्रव्य देंगे तो वे भड़ैत हो जायँगे। वे वेतन के लिए काम करेंगे। हाँ, पंचमों को अपनी स्थिति का ज्ञान करने के लिए रुपया अलबत्ता ख़र्च होना चाहिए। हमारे साधन हमेशा शान्तिमय हों। उच्चवर्ण वाले हिन्दुओं को अपने भाव बदल देना चाहिए और अपनी ही उच्चता और शुद्धि के लिए उन्हें यह कलंक धो डालना चाहिए। यदि वे ऐसा न करेंगे और उन्हें दबाने पर तुले रहेंगे, तो ऐसा समय आये बिना न रहेगा जब कि खुद अछूत लोग हमारे ख़िलाफ़ बग़ावत का झंडा खड़ा करेंगे और सम्भव है कि वे हिंसा का भी आश्रय ले लें।

मैं अपनी तरफ़ से ऐसे किसी महा-संकट को रोकने का प्रयत्न अपनी पूरी शक्ति के साथ कर रहा हूँ। और उन सब लोगों को

भी ऐसा ही करना चाहिए जो कि अछूतपन को पाप मानते हैं।

३. क्या आप यह मानते हैं कि पंचम लोगों के लिए जो अलहदा स्कूल खोले जाते हैं उससे अछूतपन के दूर होने में किसी तरह सहायता मिल सकती है ?

आगे चलकर अवश्य ही सहायता मिलेगी, जैसी कि हर प्रकार की शिक्षा से मिलती है। परन्तु ऐसे मदरसे अकेले अछूतों के लिए न होने चाहिएँ और जातियों के लड़के भी उनमें लेने चाहिएँ। फिलहाल वे न आवेंगे, परन्तु समय पाकर उनका दुर्भाव कम हो जायगा, यदि शाला की व्यवस्था अच्छी रही। यदि आप मिश्रशालायें चाहते हों तो आपको अपने मुहल्ले में ऐसी एक पाठशाला खोलनी चाहिए। मान लीजिए कि आपका एक घर है। आपसे कोई यह न कहेगा कि अपने घर से चले जाइए। एक अछूत लड़के को अपने घर में ले आइए और पाठशाला शुरू कर दीजिए। और लड़कों को भी समझाकर लाइए।

४. हमारे प्रान्त में उन शालाओं को प्रोत्साहन दिया जाता है जिनमें अछूतों के तथा दूसरे लोगों के लड़के एक साथ पढ़ते हैं।

हाँ। आप उनको प्रोत्साहन दे सकते हैं। परन्तु आपको उन मदरसों या संस्थाओं की सहायता करने से बाज न आना चाहिए जिनमें अकेले अछूतों के लड़के हों।

५. कुछ तालुक बोर्डों में ऐसे हुक्म जारी हुए हैं कि वे शालायें तोड़ दी जायँगी जो अछूतों के लड़कों को लेने से इनकार करती हैं। क्या हमको अपने प्रचारकों-द्वारा उन स्कूलों में पंचम लोगों को भरती कराने में सहायता देनी चाहिए ?

अवश्य। आपको उन्हें सहायता करनी चाहिए। पर खास तौर पर प्रचार करने की जरूरत नहीं है। आपके कार्यकर्त्ता ही उसके लिए काफ़ी होंगे।

६. तो अब प्रचार-कार्य के बारे में आप क्या कहते हैं? क्या आप समझते हैं कि चुपचाप काम करना भर बस है ?

हाँ, जब कि पंचम लोगों की हालत को ऊँचा उठाने के लिए कोई ठोस काम नहीं हो रहा हो तो जबानी प्रचार से लाभ न होगा। (इस सिलसिले में महात्माजी ने वाइकोम सत्याग्रह का जिक्र किया और कहा है कि उसका उस प्रान्त के लोगों पर बड़ा भारी असर हुआ।) तब मैंने पूछा—

७. तो फिर जब ऐसे प्रश्न पैदा हों तब क्या हम जी खोल कर प्रचार के लिए रुपया ख़र्च करें ?

नहीं, जी खोलकर नहीं। ठोस काम खुद ही अपना प्रचार कर लेता है। वाइकोम में अधिकांश द्रव्य रचनात्मक कार्यों में ख़र्च किया गया है।

८. क्या आप निकट भविष्य में अछूतपन के प्रश्न में और

भी जोर-शोर के साथ भिड़ जाने का विचार रखते हैं।

मैंने तो पहले ही उसे भरसक जोर-शोर के साथ उठा लिया है। हम जहाँ कहीं सम्भव हो पाठशालायें खोलने, कुएँ खुदवाने और मन्दिर बनवाने आदि की चेष्टा कर रहे हैं। काम रुपये के अभाव में रुकता नहीं है। पर शायद आप इसलिए कि पत्रों में उसकी शोहरत नहीं होती है समझते हैं कि कुछ भी काम नहीं हो रहा है।

९—बेलगाँव प्रस्ताव के अनुसार तो कोई भी स्कूल राष्ट्रीय नहीं हो सकता जिसमें पंचम लड़के न लिये जाँय ?

बेशक, वे राष्ट्रीय स्कूल हैं ही नहीं।

१०—क्या आपकी यह राय है कि ऐसे स्कूल यदि और सब शर्तों का पालन करते हों पर इसे न कर पाते हों तो उन्हें महासभा से सहायता न मिलनी चाहिए ?

नहीं, कोई सहायता न मिलनी चाहिए।

ऊँच-नीच का ख़याल

मैमनसिंह की ज़िला वैश्य-सभा की तरफ़ से मुझे नीचे लिखा पत्र दिया गया था—

१. हमारी समिति का उद्देश्य एकता करना और हमारी जाति का पुनरुद्धार करना है।

२. जैसा हम समझते हैं आपका कार्य तीन प्रकार का है।

(क) चर्खा और खादी का प्रचार।

(ख) हिन्दू-मुसलिम ऐक्य।

(ग) अस्पृश्यता का त्याग।

पहले दो कार्य सर्वमान्य हैं। हम लोग केवल तीसरे कार्य के सम्बन्ध में ही आपके पास आये हैं और यह दिखाना चाहते हैं कि बंगाल के हिन्दुओं को एक करने के कार्य में अस्पृश्यता की भावना किस प्रकार बाधा पहुँचाती है।

३. बंगाल के हिन्दुओं के मुख्य दो विभाग किये जा सकते हैं। पहला वे जिनके हाथ का जल ग्रहण किया जाता है, दूसरा वे जिनके हाथ का जल ग्रहण नहीं किया जाता। पहले विभाग में ब्राह्मण, वैद्य, कायस्थ और नवशाख वाले हैं और दूसरे विभाग

में, वैश्य, शाह, सुवर्ण-वणिक (सुनार) सूत्रधार (बढ़ई), जोगी (बुनकर) सुंडी (कलाल) मच्छीमार, भोई, धोपा (धोबी) चमार, कपालिक, नामशूद्र इत्यादि हैं। इनमें से कितनों ही को तो मर्दुमशुमारी में दलितवर्गों में गिना गया है।

प्रथम विभाग की तीन क़ौमें हिन्दू-जाति की मालिक बन बैठी हैं और वे दूसरे विभाग की जातियों का केवल तिरस्कार ही नहीं करती हैं वरन् उन्हें अनेक प्रकार से हैरान भी करती हैं। उन्हें देव-मन्दिरों में जाने की मुमानियत है। इस वर्ग के विद्यार्थियों को बोर्डिंगों में रहने की और खाने-पीने की अनेक असुविधायें होती हैं, होटलों में और हलवाइयों की दुकानों में उन्हें दुतकारा जाता है।

बंगाल के अस्पृश्यता-निवारक कार्यकर्त्ता, योग्य कार्य-पद्धति न होने के कारण कुछ भी प्रगति नहीं कर सकते हैं। १९२१ की मर्दुमशुमारी में बंगाल के हिन्दुओं की कुल संख्या २ करोड़ ९ लाख ४० हज़ार से अधिक थी, उनमें से १७ प्रति सैकड़ा ब्राह्मण, १६ प्रति सैकड़ा कायस्थ और १० प्रति सैकड़ा वैद्य मिलकर उनकी कुल* २८ लाख ९ हज़ार की संख्या होती है।

* यह गणना भ्रमात्मक है। सभा की संख्या के अनुसार भी इन जातियों का जोड़ कुल हिन्दू आबादी का ४३ प्रतिशत अर्थात् लगभग ९० लाख होता है। —संपा०

पूर्व बंगाल और सिलहट की अकेली वैश्य साह कौम, जो व्यापार में सब से बढ़ी हुई है, तीन लाख साठ हज़ार अर्थात् हिन्दुओं की संख्या के प्रमाण में साढ़े तीन प्रति सैकड़ा है। उनमें हज़ार में ३४२ लोग पढ़ना-लिखना जानते हैं और वैद्यों में ६६२, ब्राह्मणों में ४८४, कायस्थों में ४१३, सुवर्ण-वणिकों में ३८३ और गंधर्व वणिकों में प्रति हज़ार ३४४ मनुष्य पढ़ना-लिखना जानते हैं। दूसरे आचरणीय वर्गों में पढ़ने-लिखने वालों की संख्या का प्रमाण बहुत ही कम है। फिर आचरणीय वर्गों के बारे में क्या कहा जा सकता है ?

हमारी क़ौम की तरफ से कालेज, हाईस्कूल, अस्पताल, तालाब, पक्के कुएँ इत्यादि अनेक संस्थायें चलाई जाती हैं और उदारता में भी वह किसी से कम नहीं हैं। आचार-विचार और अतिथि का सत्कार करने में भी वह किसी से कम नहीं हैं। स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में भी वह कम नहीं है। फिर भी हम लोग हिन्दू–समाज की कक्षा के बाहर माने जाते हैं। हमारी क़ौम किसी भी राष्ट्रीय प्रवृत्ति में कभी पीछे नहीं रही है, फिर भी हमारे योग्य दरजे को स्वीकार करने का विचार भी हिन्दू-समाज को कभी नहीं हुआ है। हमारे मार्ग में सामाजिक रुकावटें न हों तो हम आज की बनिस्बत कितने अधिक उपयोगी बन सकते हैं ?

"मुण्डियों (कलालों) से हम लोग बिल्कुल ही जुदा हैं। लेकिन वे भी अपने को 'शहा' कहते हैं इसलिए संकुचित विचार के हिन्दू हमें भी उन्हीं के साथ रख देते हैं। हमने तो पूरी शोध कर इस बात को सिद्ध कर दिया है कि हमारी क़ौम उत्तर और पश्चिम हिन्दुस्तान की तरफ़ से आई हुई है और ब्राह्मण धर्म का फिर से जब अधिक ज़ोर हुआ उस समय हम लोग बौद्ध-धर्म के असर को सम्पूर्णतः दूर न कर सके इसलिए हिन्दू-धर्म में हमें योग्य स्थान न मिला और तिरस्कृत बने रहे।"

इन बातों में संभव है कुछ अतिशयोक्ति हो, लेकिन ऊँच-नीच के भेद का कीड़ा हिन्दू-धर्म के मर्म को ही खा रहा है यह दिखाने के लिए ही मैंने यह पत्र यहाँ दिया है। जिन्होंने ये बात लिख भेजी हैं, उनका वे लोग जो उनसे ऊँचे गिने जाते हैं तिरस्कार करते हैं और ये भी उनसे भी जो अधिक तिरस्कृत हैं उनसे अपने को ऊँचा और अलग मानते है। इस प्रकार तिरस्कृत "अस्पृश्य" में भी ऊँच-नीच का भेद व्याप्त हो रहा है। कच्छ यात्रा में मैंने यह देखा कि हिन्दुस्तान के दूसरे भागों की तरह कच्छ में भी अस्पृश्यों में ऊँच-नीच का भेद हैं और ऊँची जाति का अन्त्यज नीची जाति के अन्त्यज को छूने से इन्कार करता है। इतना ही नहीं नीची जाति के बालक जिस शाला में पढ़ने को जाते हैं उस शाला में अपने लड़के को भेजने से भी वह साफ़

इन्कार करता है। जब ऐसी स्थिति है तो उनके बीच रोटी-बेटी के व्यवहार की बात ही कैसे हो सकती है ? वर्ण-भेद का जो भयंकर अनर्थ हुआ है उसका यह उदाहरण है। और एक वर्ग अपने को दूसरे वर्ग से ऊँचा मानकर जो अभिमान करता है उस अभिमान का विरोध करने के लिए ही मैं अपने को भंगी कहलाने में आनन्द मानता हूँ क्योंकि मेरे ख़्याल से कोई भी जाति ऐसी नहीं है जो भंगी से भी नीची हो। समाज में भंगी ही बेचारा कोढ़ी है। उसे सब दुतकारते हैं और फिर भी समाज के स्वास्थ्य के लिए अर्थात् समाज को जीवित रखने के लिए किसी दूसरे वर्ग के बनिस्बत भंगी का वर्ग ही अधिक उपयोगी और आवश्यक है। जिन्होंने मुझे यह पत्र लिखा है उनके प्रति भी मेरी पूर्ण-सहानुभूति है। लेकिन जिनके भाग्य में उनसे भी नीचे गिना जाना लिखा है उन्हें वे अपने से नीचा न समझें। ऐसे लोगों को अपने-अपने वर्ग में मिलाकर दूसरों को जो लाभ नहीं मिलता है उस लाभ को लेने से उन्हें भी साफ़ इन्कार कर देना चाहिए। हिन्दू-धर्म में से असाहजिक असमानता के कलंक को दूर करना हो तो उसे निर्मूल करने के लिए हम में से कितनों ही को खून-पानी एक करना होगा, मेरे ख़्याल से तो वे जो ऊँचा होने का दावा करते हैं अपने इसी दावे के कारण नालायक़ साबित होते हैं। सच्ची और स्वाभाविक बड़ाई तो बिना दावे के

ही मिल जाती है। जो सचमुच बड़ा है उसके कहे बिना ही उसे सब कोई बड़ा कहते हैं और वह अपनी बड़ाई से इन्कार करता है, केवल आडम्बर से या झूठी नम्रता दिखाने के लिए नहीं, लेकिन इस शुद्ध ज्ञान के कारण कि जो अपने को नीचा मानता है उसकी आत्मा और अपनी आत्मा में कोई भेद नहीं है। सृष्टि के सभी प्राणियों की एकता और अभेद ज्ञान में ऊँच-नीच के भाव को कहीं अवकाश ही नहीं होता है ; जीवन तो कार्य-क्षेत्र है, अधिकार और हक़ों का संग्रह नहीं है। जो धर्म ऊँच-नीच भेद की प्रथा पर आधार रखता है उसका सर्वथा नाश ही होगा। वर्ण-धर्म का मेरा अर्थ यह नहीं है। मैं वर्ण-धर्म को मानता हूँ क्योंकि मेरा यह ख़्याल है कि वह जुदा-जुदा धंधे के मनुष्यों के कर्तव्यों को निश्चित करता है। इस धर्म के अनुसार वही ब्राह्मण है जो सब वर्णों का सेवक है—शूद्रों का और अस्पृश्यों का भी सेवक है। चारों वर्णों की सेवा करने के लिए वह अपना सब कुछ अर्पण कर देता है और प्राणिमात्र की दया पर ही अपनी आजीविका का आधार रखता है। अधिकार, सम्मान और अपने हक़ों का दावा करनेवाला क्षत्रिय तो वही है जो समाज का रक्षण करने के लिए, उसकी प्रतिष्ठा के लिए स्वार्पण कर देता है। अपने ही लिए कमानेवाला और संग्रह करने वाला वैश्य नहीं है वरन् चोर है। हिन्दू-धर्म की

मेरी कल्पना के अनुसार पाँचवाँ, अर्थात अस्पृश्यों का वर्ण है ही नहीं। जिन्हें अस्पृश्य कहते हैं वे दूसरे शूद्रों के समान ही अधिकार रखने वाले समाज-सेवक हैं। मैं यह मानता हूँ कि समाज का परम श्रेय करने के लिए सोची गई उत्तमोत्तम प्रथा वर्ण-धर्म की प्रथा है। आज तो केवल उसकी विडम्बना हो रही है। और यदि वर्ण-धर्म की रक्षा करनी है तो वर्ण-धर्म के इस उपहास-योग्य ढाँचे का पुनरुद्धार करना होगा।

अन्त्यज भाइयों से—

[गुजरात में दिये गये एक भाषण से]

"जब मैं उन लोगों से दलील करता हूँ जो आपको छूते नहीं हैं, तब वे मुझसे कहते हैं कि अन्त्यज बहुत गन्दे रहते हैं, शराब पीते हैं, मांस खाते हैं। उन्हें जवाब देता हूँ कि ब्राह्मणों, वैश्यों और दूसरी जातियों में भी ऐसे लोग होते हैं, फिर भी उनके बच्चे मदरसों में जाते हैं, जा सकते हैं, फिर यह उल्टा न्याय कैसा? परन्तु उनके साथ ऐसी वजूहात पेश करते हुए भी आपसे तो यही कहूँगा कि आपके ख़िलाफ जो-जो बातें कही जाती हैं उनसे आप अपने को बचालो जिससे फिर उन्हें कुछ भी कहना बाकी न रह जाय। अपना काम करने के बाद रोज आपको नहाना जरूर चाहिए। भंगी का काम मैंने बहुत किया है, आपके राव जी भाई ने भी किया है। इससे बदनामी जरा भी नहीं है. यह तो पवित्र काम है। जो आदमी गंदगी हटाता है वह तो पवित्र काम करता है। आप यदि चमड़ा साफ करो तो कर चुकने के बाद नहाया करो। भले आदमी हमेशा दतौन करते हैं, दाँत साफ़ रखते हैं, और नहा-धोकर शरीर साफ़ रखते हैं। आप इतना सब करना

और हाथ में माला लेकर राम-नाम जपना। माला न हो तो उंगलियों पर राम नाम जपना। इस राम-नाम लेने से आपके व्यसन छूट जायँगे, आप स्वच्छ हो जावोगे। और सब आपकी पूजा करेंगे। सुबह उठकर राम-नाम लेने से और सोते समय राम-नाम लेने से दिन अच्छी तरह बीतेगा। और रात को बुरे सपने भी न आवेंगे। किसी को जूठन न लेना, सड़ा और ख़राब खाना न लेना, मेवा-मिठाई भी यदि जूठन मिले तो मुँह फेर लेना और खुद हाथ से बनाई रोटी खाना। आपका जन्म जूठन खाने के लिए नहीं हुआ है। आपके भी आँख है, नाक है, कान है। पूरे-पूरे मनुष्य हैं, सो आप मनुष्यत्व की रक्षा करना सीखो।

"आपको बहुतेरे लोग कहने आवेंगे कि तुम्हारा काम गन्दा है, तुमको मदरसे जाने की, मन्दिर जाने की छुट्टी नहीं मिलती तो उनसे कहना कि हम अपने हिन्दू भाइयों से सब हिसाब समझ लेंगे। भाई-भाई या बाप-बेटे यदि लड़ें तो जिस तरह उसमें कोई बीच में नहीं पड़ते उसी तरह आप भी हमारे बीच न पड़िए—यह जवाब उन्हें देना और अपने धर्म पर आरूढ़ रहना। मैं खुद जात-बाहर हूँ, मेरे जैसे कितने ही जात-बाहर हैं, पर इससे क्या मैं अपना धर्म छोड़ दूँ? कितने ईसाई मित्र मुझसे कहते हैं कि तुम ईसाई हो जाओ। मैं उनसे कहता हूँ मुझे अपने धर्म में कोई हानि नहीं मालूम होती, क्यों मैं उसे छोड़ूं? मैं भले ही जात-

बाहर रहूँ, पर यदि मैं पवित्र होऊँ, स्वच्छ होऊँ तो मुझे किस बात का दुःख हो ? यदि कोई हिन्दू इसलिए कि मैं अन्त्यजों को छूता हूँ, मुझे पीटे तो क्या मैं हिन्दू न रहूँगा ? हिन्दूपन मेरे अपने लिए है, मेरी आत्मा के लिए है। ईसाई और मुसलमान दोनों से आप यह बात कहना और हिन्दू-धर्म में दृढ़ रहना। अन्त्यज लोग शतरञ्ज की मोहरें या बाजी नहीं हैं कि जो चाहे उनसे खेला करें। मैं जो आपको भाई-बहन कहता हुआ आपके पास आता हूँ—सो मेरी ग़रज—इसमें मेरा स्वार्थ है कि मेरे पूर्वजों ने आपके साथ जो पाप किया है उसे मैं धो डालूँ। पर आपके प्रति मैंने जो कुछ पाप किया हो उससे आपको क्या ? इससे आप धर्म का त्याग क्यों करें ? प्रायश्चित्त तो मुझे करना है। आप राम-नाम क्यों छोड़ें ? राम का यह न्याय है कि जो राम का सेवक है, राम का दास है, उसे वह दुःख दिया ही करता है और इस तरह उसकी परीक्षा करता है। मैं चाहता हूँ आप इस परीक्षा में पूरे उतरें। अन्त को आपसे कहता हूँ कि मन में दया रखना क्योंकि हम सब दुनिया की मुहब्बत पर जीते हैं। और अन्त में चरखा चलाओ, और खादी बुनकर खादी ही पहनो।"

अस्पृश्यता का बचाव

त्रावणकोर से एक महाशय लिखते हैं—ब्राह्मण और उनके आचार और रीति-रिवाजों के सम्बन्ध में कुछ ग़लतफ़हमी हुई मालूम होती है। आप अहिंसा की प्रशंसा करते हैं लेकिन एक मात्र ब्राह्मणों की ही जाति ऐसी है जो उसे धर्म-कार्य समझकर उसका पालन करती है। यदि कोई उसका भंग करता है तो हम उसे जाति से बहिष्कृत समझते हैं। जो लोग मांस खाते हैं या मांस के लिए हत्या करते हैं उनके सहवास में आना ही हम लोगों की दृष्टि में पाप है। क़साई, मच्छीमार, ताड़ी बनाने वाला, मांस खाने वाला, शराब पीने वाला और धर्म-हीन मनुष्य के नजदीक आने से ही हमारा नैतिक और भौतिक वायु-मण्डल भ्रष्ट हो जाता है। तप और धार्मिकता की हानि होती है और पवित्रता का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

"इसे हम लोग भ्रष्टता मानते हैं; इसलिए हमें स्नान करना पड़ता है। यद्यपि समय और भाग्य ने तो कई मर्तबा पलटा खाया है लेकिन ऐसे नियमों के कारण ही तो ब्राह्मण लोग अब तक अपने परंपरागत गुणों की रक्षा कर सके हैं। यदि इस प्रकार से संयम को दूर कर दिया जायगा और ब्राह्मणों को दूसरों से स्व-तन्त्रता-पूर्वक मिलने-जुलने दिया जायगा तो उनका इतना अधः-

पतन होगा कि वे हलके से भी हलके जातिहीन शूद्रों के समान बन जायँगे; छुपे तौर से वे बहुत-कुछ दुराचार करेंगे और पवित्र होने का ढोंग भी करेंगे और साथ ही साथ संयम की मर्यादा को दूर करने का भी प्रयत्न करेंगे क्योंकि उस मर्यादा के कारण अपने पापों को छिपाने में उन्हें बड़ी कठिनाई मालूम होती है। हम यह तो जानते ही हैं कि आज जो लोग नाम-मात्र के ब्राह्मण हैं वे ऐसे ही हैं। और वे लोग अपनी गिरी हुई दशा पर दूसरों को खींच ले जाने के लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं।

"उस स्थान में जहाँ लोगों की आदत और उनके भले-बुरे के ख्याल के अनुसार (रङ्ग, अधिकार और धन के भेद के अनुसार नहीं, जैसा कि पश्चिम में ग़लती से किया जा रहा है) उनका जात्यानुसार वर्गीकरण करके, उनके धंधे को और सामाजिक और गृह-विषयक सुविधाओं को देख उनकी स्पष्ट मर्यादा बांधकर उन्हें जुदे केन्द्रों में रहने के लिए स्थान दिया जाय, जैसा कि हमारी मातृभूमि में किया जाता है, तो यह संभव नहीं है कि कोई मनुष्य यदि अपनी रहनी-करनी बदले भी तो वह बहुत दिनों तक छिपा रह सके।

"लेकिन यदि क़साई, मांस खाने वाले और शराबखोरों में कोई जाकर रहे तो यह संभव नहीं कि वह उनमें रहते हुए अपने वैदिक गुणों की रक्षा कर सके। स्वभावतः हम लोग अपनी रुचि

के अनुसार अनुकूल ही वातावरण पसन्द करते हैं। इसलिए ब्राह्मण के रहने की जगह का वायुमण्डल भी भौतिक, नैतिक और धार्मिक दृष्टि से भी पवित्र रखना चाहिए और कसाई, मच्छीमार और ताड़ी बनाने वालों के आक्रमण से उनकी रक्षा करनी चाहिए।

"भारतवर्ष में जाति और उनके धन्धे अविच्छिन्न भाव से जुड़े हुए हैं और इसलिए स्वभावतः ही जो मनुष्य जिस जाति का है, उसका धंधा भी वही मान लिया जा सकता है।

"यही कारण है कि अस्पृश्यता और नजदीक न आने देने की मर्यादा रखी गई है इससे हमारी जाति की पवित्रता की केवल रक्षा ही नहीं होती है बल्कि दुराचारियों को जाति से बहिष्कृत करने की सामाजिक और धार्मिक सीधी सजा भी दी जाती है और इसलिए प्रकारान्तर से उन्हें यदि वे हमारे साथ सब प्रकार का व्यवहार रखना चाहते हों तो, अपनी बुरी आदतों को छोड़ने के लिए मजबूर भी करती है।

"इसलिए आप उन्हें सार्वजनिक तौर से यह उपदेश दें कि वे अपने पापकार्यों को छोड़ दें और कताई और बुनाई का काम करने लगें और वे आवश्यक धार्मिक क्रियायें जैसे नहाना, उपवास करना और प्रार्थना करना इत्यादि भी करें। यदि वे कुछ वर्षों में नजदीक न आने की मर्यादा को दूर करना चाहते हैं तो उन्हें उन लोगों के साथ मिलना-जुलना न चाहिए जिन लोगों ने

अपनी पुरानी आदतों का त्याग नहीं किया है। शास्त्रों ने यही मार्ग दिखाया है। मनुष्य के अपने निजी पापकर्मों को और उसके गुणों को जानने का कोई मार्ग नहीं है इसलिए ऐसी बातों से कोई लाभ नहीं कि फलाने का मन पवित्र है और फलाने का मन मैला है। मनुष्य की सामाजिक आदतों से ही हम उसके खानगी जीवन की परीक्षा कर सकते हैं। इसलिए जो शख्स खुले तौर से हमारे अहिंसा-धर्म को स्वीकार नहीं कर सकता है और मच्छी मारना और मांस खाना नहीं छोड़ सकता है वह इस योग्य नहीं माना जा सकता कि वह नजदीक भी न आने की परम्परागत मर्यादा का त्याग करे। सच बात तो यह है कि अस्पृश्यता और कुछ नहीं है, अहिंसा-धर्म की रक्षा और प्रचार का व्यावहारिक साधन है।"

लेखक ने जिस प्रश्न को छेड़ा है उस पर पहले कई मर्तबा विचार किया जा चुका है फिर भी उनकी दलीलों में उनका जो भ्रम है उसे दूर करना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि ब्राह्मणों की तरफ से जो यह दावा किया जा रहा है कि वे निरा-मिषभोजी हैं, सम्पूर्ण सत्य नहीं है। यह केवल दक्षिण के ब्राह्मणों के सम्बन्ध में ठीक हो सकता है। लेकिन दक्षिण में भी मांस खाने वाले और मच्छी खाने वाले सब लोग अस्पृश्य नहीं हैं। और अस्पृश्यों में जो आदमी पवित्र है वह भी जाति-हीन समझा

जाता है क्योंकि उनका जन्म उस कुल में हुआ है जो अन्याय-पूर्वक अस्पृश्य और समीप न आने योग्य गिना जाता है। अधिकार प्राप्त मांस खाने वाले अब्राह्मणों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर क्या ब्राह्मण लोग नहीं चलते हैं ? क्या वे माँस खाने वाले हिन्दू राजाओं का आदर नहीं करते ?

लेखक—जैसे शिक्षित मनुष्यों को, जिस रिवाज का किसी भी प्रकार से बचाव नहीं किया जा सकता है और जिसकी बुनियाद अब हिल उठी है उस रिवाज का, अपने जोश में आकर, अपनी दलीलों में स्पष्ट अर्थ का विचार किये बिना ही, बचाव करते हुए देखकर बड़ा ही आश्चर्य और दुःख होता है। लेखक मांस खाने की छोटी सी हिंसा की बात पर बड़ा जोर देते हैं लेकिन कोरी काल्पनिक पवित्रता की रक्षा के लिए करोड़ों भाइयों को जान-बूझ कर दबाये रखने की बड़ी भारी हिंसा की बात को वे भूल जाते हैं। मैं उन्हें यह कहता हूँ कि जिस निरामिषता की रक्षा करने के लिए दूसरे मनुष्यों को हलके मानकर उनका बहिष्कार करना पड़ता है वह संग्रह करने योग्य नहीं है। इस प्रकार यदि उसकी रक्षा की जायगी तो वह गर्मी में उगने वाले पौधे के समान ठंडी हवा लगते ही नष्ट हो जायगी। निरामिषता को मैं बड़ा महत्व देता हूँ। मुझे विश्वास है कि ब्राह्मणों ने इस निरामिषता और स्वयं-निर्मित संयम के नियमों से बड़ा आध्यात्मिक लाभ उठाया

है। लेकिन जब वे अति उन्नत अवस्था में थे उस समय उन्हें अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए बाह्य सहायता की आवश्यकता न थी। जब कोई भी गुण बाह्य प्रभावों का सामना करने में असमर्थ हो जाता है, तो उसकी जीवन-शक्ति नष्ट हो जाती है।

और लेखक जिस प्रकार की रक्षा का जिक्र करते हैं वैसी रक्षा के लिए ब्राह्मणों के दावे में अब कोई लाभ नहीं है क्योंकि अब बहुत देर हो चुकी है। सद्भाग्य से ऐसे ब्राह्मणों की तादाद अब बढ़ रही है जो ऐसी रक्षा की बातों के प्रति घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इतना ही नहीं जो बड़ी-बड़ी तकलीफें सहने का जोखिम उठा करके भी इस सुधार की हलचल के नेता बन रहे हैं। इसी से सुधार के अति शीघ्र प्रगति करने की बड़ी आशा बँधती है।

लेखक मुझसे यह चाहते हैं कि नीच गिने जाने वाले लोगों को मैं पवित्र बनने के लिए उपदेश दूँ। मालूम होता है कि वे 'यंगइण्डिया' नहीं पढ़ते हैं अन्यथा वे यह अवश्य जान सकते थे कि उन्हें ऐसा उपदेश देने का एक भी मौक़ा मैं व्यर्थ नहीं जाने देता हूँ। मैं उन्हें यह समाचार भी देता हूँ कि वे उसका संतोष-जनक उत्तर भी देते हैं। मैं लेखक को उन सुधारकों के वर्ग में शामिल होने के लिए निमंत्रण दूँगा कि जो इन दुःखी लोगों में जाकर, उनके संरक्षक बनकर नहीं, लेकिन उनके सच्चे मित्र बन-कर, काम कर रहे हैं।

कठिन समस्या

आंध्र के एक पत्र-लेखक अपनी मुश्किलों की ओर इस प्रकार ध्यान खींचते हैं:—

गत सप्ताह के 'यंग इण्डिया' में एक बंगाली सज्जन के अस्पृश्यता-विषयक पत्र के जवाब में आपने कहा है—'जब कि शूद्रों के हाथ का पानी हम पीते हैं तब अस्पृश्यों के हाथ से भी पानी लेने में हमको झिझकना न चाहिए।' 'हम' से मतलब उच्चवर्ण के हिन्दुओं से है। मैं उत्तर हिन्दुस्तान में प्रचलित रिवाजों को नहीं जानता। लेकिन क्या आप यह जानते हैं कि आंध्र देश में और हिन्दुस्तान के इससे भी अधिक दक्षिण के दूसरे भागों में केवल यही नहीं कि ब्राह्मण लोग अब्राह्मणों (दूसरे तीन वर्णों) के हाथ का पानी नहीं पीते बल्कि जो लोग अधिक कट्टर सनातनी हैं वे तो उन्हें सर्वथा अस्पृश्य भी मानते हैं और उनके साथ वैसा ही व्यवहार भी रखते हैं।

"आपने अक्सर यह बात कही है कि आप जातिगत ऊँच-नीच भाव को दूर करने के लिए रोटी-व्यवहार रखने की आवश्यकता का प्रचार करना नहीं चाहते हैं। एक मर्तबा आपने इस बात को साबित करने के लिए मालवीय जी का उदाहरण भी पेश किया था और कहा था कि आप में परस्पर आदर और सद्भाव

होने पर भी यदि मालवीय जी आपके हाथ का पानी या दूसरी कोई चीज़ पीने या खाने से इन्कार कर दें तो आपके ख़याल से यह आपका तिरस्कार न होगा। मैं इसको मान लेता हूँ। लेकिन आप यह नहीं जानते कि इस प्रान्त के ब्राह्मण १०० गज के फ़ासले से भी यदि कोई अब्राह्मण उनका खाना देख ले तो उसे न खायँगे; खाना छूने की बात तो दूर रही। क्या मैं आपको यह बताऊँ कि रास्ते में यदि कोई शूद्र एक या दो शब्द बोल दे तो उतने से ही भोजन करते हुए ब्राह्मण को गुस्सा आ जायगा और फिर वह दिन-भर कुछ न खायगा। फिर यह तिरस्कार नहीं तो क्या हो सकता है? क्या यह ब्राह्मणों की अकड़ नहीं है? क्या आप इस विषय पर प्रकाश डालेंगे? मैं स्वयं एक ब्राह्मण-हूँ और इसलिए अपने अनुभव से ही ये बातें लिख रहा हूँ।"

अस्पृश्यता बहुमुखी राक्षस है। यह धर्म और नीति की दृष्टि से बड़ा ही गंभीर प्रश्न है। मेरी दृष्टि में रोटी-व्यवहार एक सामाजिक प्रश्न है। वर्तमान अस्पृश्यता की ओट में मनुष्य जाति के एक अंश के प्रति तिरस्कार-भाव अवश्य छिपा हुआ है। समाज के मर्म-स्थल में यह एक प्रकार का घुन लगा हुआ है; मनुष्यत्व के हक़ों का यह इन्कार है। रोटी-व्यवहार और अस्पृश्यता समान नहीं हो सकते। समाज-सुधारकों से मेरी प्रार्थना है कि वे उन दोनों को एक न कर दें। यदि वे ऐसा करेंगे तो

वे अस्पृश्यों और दूरितों के हित को हानि पहुँचावेंगे। इस ब्राह्मण पत्र-लेखक की कठिनाई सच्ची कठिनाई है। इससे प्रतीत होता है कि यह बुराई कितनी गहरी पैठ गई है। ब्राह्मण शब्द तो नम्रता, त्याग, पवित्रता, हिम्मत, क्षमा और सत्य-ज्ञान का पर्यायवाची होना चाहिए। लेकिन आज तो यह पवित्र-भूमि ब्राह्मण-अब्राह्मण के विभागों से दुःखी हो रही है। बहुतेरी बातों में ब्राह्मणों ने अपनी महत्ता को खो दिया है। उन्होंने अपनी ऐसी महत्ता का कभी दावा नहीं किया था; लेकिन नःसंशय उनकी सेवा के कारण उसका सेहरा उन्हीं के सिर बँधा था। ब्राह्मण लोग जिसका दावा नहीं कर सकते हैं, उसी को प्राप्त करने के लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं और उससे हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों में अब्राह्मणों को उनके प्रति ईर्षा हुई है। हिन्दू-धर्म और देश के सद्भाग्य से पत्रलेखक—जैसे ब्राह्मण भी मौजूद हैं जो इस बुरी प्रवृत्ति के खिलाफ़ अपनी पूरी ताक़त के साथ लड़ रहे हैं और जो अब्राह्मणों की त्याग-भाव से बराबर सेवा कर रहे हैं। यह उनके उच्च भूतकाल के अनुकूल है। जहाँ-कहीं देखो अस्पृश्यता के खिलाफ़ आज ब्राह्मण लोग आगे आकर लड़ रहे हैं और अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए वे शास्त्रों का आधार भी पेश कर रहे हैं। पत्र-लेखक ने दक्षिण के जिन ब्राह्मणों का वर्णन किया है उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे समय के प्रवाह को

देखें और ऊँच-नीच के गलत खयाल को छोड़ दें और इस वहम को छोड़ दें जिससे कि उन्हें अब्राह्मण को देख कर पाप की गंध आती है और उनकी आवाज सुनकर उनका खाना अपवित्र हो जाता है। ब्राह्मणों ने ही ब्रह्म को सर्वत्र देखने की शिक्षा संसार को दी है। बेशक, तब फिर अपवित्रता कहीं बाहर से नहीं आ सकती। वह अन्दर ही होती है। आज ब्राह्मण यह संदेश फिर सुनावे कि अछूतपन का खयाल बुरा खयाल है। उसने संसार को यह शिक्षा दी है "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः" मनुष्य स्वयं ही अपना उद्धारक है और अपना शत्रु और नाशक भी वही है।

इस आंध्र-निवासी पत्र-लेखक की बातों से अ-ब्राह्मणों को क्षुब्ध न होना चाहिए। इस पत्र-लेखक के जैसे कितने ही ब्राह्मण उनकी तरफ़ से अस्पृश्यता के खिलाफ़ उसी तरह लड़ेंगे जिस तरह कि वे खुद लड़ रहे हैं। कुछ थोड़े लोगों के पापों के कारण ब्राह्मणों की सारी जाति को ही धिक्कारना न चाहिए। मुझे डर है कि यह वृत्ति बढ़ रही है। वे इतने उदार बनें कि जो लोग उनके प्रति बुरा व्यवहार करते हैं उनसे अच्छे व्यवहार की आशा ही न करें।

कोई राहगीर यदि मेरी तरफ़ दृष्टि न करे अथवा वह मेरे स्पर्श से, मेरी उपस्थिति से या मेरी आवाज से अपने को नापाक माने

तो उससे मैं अपना अपमान नहीं समझूँगा। इतना ही काफ़ी है कि उसके कहने से मैं अपने रास्ते से न हटूँगा या वह सुन लेगा इस डर से बोलना बन्द न करूँगा। जो अपने को उच्च मानता है उसके अज्ञान और वहम पर मुझे दया आ सकती है लेकिन मैं उस पर क्रोध और उसका तिरस्कार नहीं कर सकता। क्योंकि यदि मेरा तिरस्कार किया जायगा तो मुझे बुरा मालूम होगा। संयम खो देने से तो अ-ब्राह्मण लोग अपना लक्ष्य ही खो बैठेंगे। सबसे महत्व की बात तो यह है कि सीमा से अधिक आगे बढ़-कर वे अपने ब्राह्मण योद्धाओं को दिक्क़त में न डाल दें। ब्राह्मण तो हिन्दू धर्म और मनुष्य-समाज का उत्तम पुष्प है। ऐसा एक भी काम मैं न करूँगा जिससे उसे मुरझाना पड़े। मैं यह जानता हूँ कि वह अपनी रक्षा करने के लिए समर्थ है। उसने अब तक बहुत से तूफानों को देखा है। लेकिन अ-ब्राह्मणों के बारे में यह न कहा जाना चाहिए कि उन्होंने इस पुष्प की सुगन्ध और कांति को लूट लेने का प्रयत्न किया। मैं नहीं चाहता कि ब्राह्मणों के सर्वनाश पर अ-ब्राह्मण लोग उन्नति करें। मैं तो यह चाहता हूँ कि वे उस उच्च स्थान को पहुँच जायँ जिसको अब तक ब्राह्मण लोग पहुँचे हुए थे। ब्राह्मण जन्म से होते हैं लेकिन ब्राह्मणत्व जन्म से नहीं होता। यह तो वह गुण है जिसको एक छोटे-से-छोटा आदमी भी अपना विकास करके प्राप्त कर सकता है।

अन्त्यजों की नासमझी

जिस प्रकार सौराष्ट्र में अन्त्यजों के प्रति निर्दयता का मुझे विशेष अनुभव हुआ उसी प्रकार अन्त्यजों की ना-समझी का भी ख़ासा अनुभव हुआ। ढसा, हडाला और मांगरोल के अन्त्यजों के साथ बातचीत करने पर मालूम हुआ कि वे मरे हुए ढोरों का मांस खाते हैं। इस मांस को वे भूल के नाम से पुकारते हैं। इस बुरी आदत को छोड़ देने के लिए मैंने उन्हें बहुत समझाया लेकिन उन्होंने जवाब दिया कि बहुत दिनो से यह रिवाज चला आ रहा है और इसलिए वह छूट नहीं सकता। उन्हें बहुत समझाया लेकिन वे एक के दो न हुए। उन्होंने यह तो स्वीकार कर लिया कि हमें इसे छोड़ देना चाहिए। लेकिन छोड़ने की ताक़त नहीं है, यह कह कर वे बैठ रहे। हिन्दू-समाज को बहुत समझाने पर भी मुर्दार मांस खाने वालों के प्रति उनकी घृणा निकालना बहुत ही मुश्किल होगा। शायद उनकी इस बुरी आदत को वे सहन कर लेंगे लेकिन प्रेम से वे उन्हें गले न लगा-

वेंगे। कैसी भी विपत्ति क्यों न हो, अन्त्यजों को यह बुरी आदत छोड़ने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। उन्हें और उनके साधुओं को चाहिए कि एक बड़ी हल-चल करके इस बहुत ही गन्दी आदत को दूर कर दें। एक अन्त्यज ने अपनी कमजोरी का बयान करते हुए सचाई के साथ कहा—"यदि हमको मरे हुए ढोर उठाने को ही न कहा जाय तो हम उसे खाना छोड़ दें।" मैंने कहा—"दरबार साहब, यदि ऐसा क़ायदा बनावें कि कोई चमार मरे हुए ढोरों को न उठावे तो क्या तुमको यह स्वीकार है।"

"हम लोगों को यह स्वीकार है।"

"तो फिर आजीविका कहाँ से प्राप्त करोगे?"

"कुछ भी करेंगे। बुनाई करेंगे लेकिन आपके पास कोई शिकायत न करेंगे।"

मैं जो समझता था कि चमार के धन्धे का अभ्यास करना चाहिए और उसमें जो बुराइयाँ हैं उन्हें दूर करना चाहिए उससे अधिक इस सवाल-जवाब से मैं कुछ न समझ सका।

अन्त्यजों में दूसरी बुराई यह है कि ढेड़, चमार को नहीं छूता है। इस प्रकार अस्पृश्यता ने उनमें भी प्रवेश किया है। इसका अर्थ तो यह होगा कि चमार, ढेड़, भंगी इत्यादि के लिए अलग-अलग कुएँ, अलग-अलग शालायें बनानी होंगी। छः

करोड़ अन्त्यजों के अनेक विभागों को सन्तुष्ट रखना तो बड़ा मुश्किल होगा। इसका तो केवल यही उपाय है कि उनमें जो सबसे हलकी क़ौम गिनी जाती है उसी के लिए या उसकी सुविधा जहाँ हो सकती है वहीं कार्य करना चाहिए। इससे और सब बातें अपने-आप साफ हो जायँगी।

इन दोषों के लिए उच्च वर्ण के हिन्दू लोग ही जिम्मेवार हैं। उन्होंने अन्त्यजों का सर्वथा त्याग किया था और आगे बढ़ने के संयोग के अभाव में वे बहुत ही गिर गये। उन्हें सहारा देकर खड़ा करने में ही हमारी उन्नति होगी। खुद नीचे उतरे बिना मैं किसी को नहीं उठा सकता। उन्हें चढ़ाने से हिन्दू-जाति ऊपर चढ़ेगी।

अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ

मैं देखता हूँ कि जिन कई सवालों को मैं स्पष्ट हो गया मानता था उनके बारे में भी अभी प्रश्न हुआ करते हैं। महासभा के प्रस्ताव और मेरी समझ के अनुसार अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ एक ही है। वह यह कि हमारी हिन्दू-जाति अस्पृश्यता के दोष से मुक्त हो। जिस प्रकार चार वर्णों को एक-दूसरे का स्पर्श करते हुए छूत नहीं लगती, वह पाप नहीं गिना जाता, इसी प्रकार अस्पृश्य के बारे में भी व्यवहार होना चाहिए। इससे विशेष इसका कोई अर्थ नहीं, यह अनेक बार कहा जा चुका है। जैसे भिन्न-भिन्न जातियों के बीच रोटी या बेटी का व्यवहार नहीं वैसे ही अस्पृश्य माने जाने वालों के साथ भी वैसे व्यवहार की जरूरत उल्लिखित प्रस्ताव के अनुसार नहीं है। एक-दूसरे के साथ खाय अथवा एक-दूसरे के साथ बेटी-व्यवहार रक्खा जाय, यह अनिवार्य नहीं हो सकता। परंतु एक-दूसरे को छुए नहीं और अमुक मनुष्य अमुक जाति में पैदा हुआ है इसी कारण अस्पृश्य है यह मानना तो सृष्टि-नियम, दयाधर्म और सत्शास्त्र के विरुद्ध है। ऐसे पापी रिवाज को विनष्ट करने के प्रयत्न को रोटी-व्यवहार या बेटी-व्यवहार के साथ मिलाना तो आवश्यक प्रायश्चित्त के प्रवाह को रोकने के समान है। अस्पृश्यता का मैल इतना घर कर गया है कि उसे हम

मैल की तरह पहचानते नहीं । उसे तो अभी तक ऐसा समझ-कर सम्हाल रहे हैं कि मानों कहीं वह हिन्दू-जाति का भूषण ही न हो । इसी को निकालने में जहाँ हितेच्छुओं को कठि-नाइयाँ पड़ती हैं वहाँ उसमें दूसरे विघ्न शामिल करके सुधारों को रोकना व्यवहार-कुशल मनुष्य का काम नहीं है ।

रोटी-व्यवहार और बेटी-व्यवहार तो जाति के सुधार का प्रश्न है । जो लोग यह मानते हैं कि जातियाँ नष्ट होनी चाहिएँ, जाति-प्रथा न रहनी चाहिए, वे अपने-आप ऐसे सुधार करने में संलग्न हैं । परन्तु यह प्रयत्न तो बिलकुल भिन्न है, और इसके साथ अस्पृश्यता-निवारण का कोई सम्बन्ध नहीं है, यह बात साफ़-साफ़ समझ लेने की जरूरत है । यह उचित ही है कि जाति-बन्धन तोड़ने के इच्छुक भी अस्पृश्यता-निवारण के कार्य में शामिल होते हैं । परन्तु यदि वे यह समझें कि अस्पृश्यता और ऊपर के दोनों सुधार केवल अलग हैं और उनका मूल भी पृथक् है, तो दोनों कामों का मूल्य और उनकी आवश्यकता उनके गुण-दोष पर से परखी जा सकती है ।

तब, अस्पृश्यता दूर करने का अर्थ क्या ? मैं तो मानता था कि यह भी समझा जा चुका है । अर्थात्—अस्पृश्य माने जाने वाले भाई दूसरे वर्ण वालों की तरह स्वतंत्रतापूर्वक घूम-फिर सकें, जिस शाला और जिस मन्दिर में अन्य वर्ण वाले जायँ उसमें

अस्पृश्य माने जाने वाले भाई भी जा सकें, और जिस कुएँ से सब लोग पनी भर सकें उसी से अस्पृश्य भाई भी पानी भर सकें।

"पर अस्पृश्य तो बहुत मैले रहते हैं, उनका धन्धा ही मैला होता है।" यह जो दलील दी जाती है, मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि वह अज्ञान से ही दी जाती है। दूसरे लोग अछूतों से अधिक मैले होने पर भी सार्वजनिक कुओं से पानी भरते हैं। दूध पीते बच्चे की माता का धन्धा मैला है, डाक्टर का धन्धा मैला है मगर फिर भी हम उनका सम्मान करते हैं। यह कहा जाय कि अपना काम पूरा करने के बाद वे साफ़ हो लेते हैं, तो अनेक अस्पृश्य भी कुएँ पर जाने से पहल साफ़ हो जाते हैं। परन्तु यदि साफ़ नहीं होते तो दोष हमारा ही है। उनका तिरस्कार करके, उन्हें नगर से दूर रख कर, उनके लिए साफ़-सुथरे रहने के साधन भी अलभ्य या दुर्लभ करके हमारा उन्हें दोष देना अन्याय की परिसीमा है। हमारी शिथिलता एवं हमारी जुल्म-ज्यादती के कारण उनमें जिन दोषों ने घर कर लिया है, हमारा कर्तव्य है कि उन्हें दूर करने में हम उनकी मदद करें; और ऐसा न करने पर भी यदि हम हिन्दुस्थान की स्वतंत्रता की इच्छा करें, तो यह तो सूर्य की तरफ़ पीठ करके सूर्य का दर्शन करन की आशा रखन के समान है।

विलेपार्ले में अस्पृश्यता

विलेपारले के भाई तो पहले से ही समय निश्चित कर गये थे। अस्पृश्यता के प्रश्न को लेकर उनकी शाला के विषय में कुछ कठिनाई उपस्थित हुई है। यह शाला बहुत बड़ी है, इसका काम बड़ी सुन्दरता के साथ होता है, परन्तु अब कुछ समय से शिक्षकों के अन्त्यजों को भी इसमें प्रविष्ट करने का प्रश्न खड़ा करने से इसमें पढ़नेवाले बालकों के वैष्णव मा-बापों में खलबली मच गई है। शाला की कार्यकारिणी-समिति के सभ्यों में कुछ तो इसके अनुकूल हैं, किन्तु कई इसके प्रतिकूल हैं। ये सब भाई फ़ैसले के लिए गाँधीजी के पास आये थे। कुछ बहनें भी थीं। विलेपारले के आरोग्य-सम्बन्धी बात के साथ गाँधीजी ने शुरुआत की। मैं इस समस्त प्रसंग का सार देने का प्रयत्न करूँगा। गाँधीजी ने कहा:—

"ऐसी सुन्दर जगह, जहाँ मकानों की तंगी नहीं, जहाँ वायु और प्रकाश का पार नहीं, जहाँ बम्बई की गन्दगी और भीड़-भड़क्के से भाग कर आप आते हैं, वहाँ निमोनिया के केस क्यों, वहाँ बीमारी और संक्रामक महामारियाँ क्यों हों? मैं तो समझ ही नहीं सकता। मैं जो स्वयं बीमार हूँ, आपको इसके लिए उल-

हना दूँ, इसकी अपेक्षा यही ठीक होगा कि मैं मान लूँ और आपको समझाने का प्रयत्न करूँ कि इस स्थिति के लिए हम ही जिम्मेवार हैं। मच्छर, टिड्डे, मक्खी इत्यादि जिनके द्वारा बीमारियाँ फैलती हैं, मैं यह मानता हूँ कि वे सब प्रकृति के बनाये हुए चाबुक हैं। ये चाबुक न हों तो हम कैसे सावधान होंगे? मैं जहाँ रहता हूँ वहाँ जितनी चाहूँ उतनी गंदगी बढ़ा सकता हूँ। मक्खी, टिड्डे, मच्छर भी चाहिए जितने बढ़ा सकता हूँ। परन्तु आप देखते हैं कि यहाँ ऐसा कुछ नहीं है। यहाँ तो मैं आया उसी दिन मैंने कह दिया कि मुझे भंगी नहीं चाहिए। अब यहाँ भंगी तो है, किन्तु यहाँ का आधा मैला उठाने और सफ़ाई रखने वाले तो देवदास, प्यारेलाल और कृष्णदास जैसे बालक ही हैं। जो कुछ कूड़ा-कचरा दिखाई दे तो वह तो कभी-कदास बालकों से जो ग़फ़लत हो जाय उसके कारण है। लेकिन अगर मैं गंदगी होने दूँ तो कुदरत का सारा मजा चला जाय, यह आप समझ सकते हैं। और गन्दगी दूर करने के साथ स्वराज्य का भी कितना संबंध है, यह भी आप समझ लीजिए। समझो कि हमें स्वराज्य मिल गया तो उसके बाद यदि हम प्रमादी रहेंगे, अपने आरोग्य के प्रति उपेक्षित रहेंगे, तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि अंग्रेज हमें पुनः लात मार कर निकाल देंगे; और इसके साथ-साथ ही चमार-भंगियों का सवाल आता है। चमार-भंगियों से छूत-छात किया

करेंगे, और उन्हें अस्पृश्य मानते रहेंगे, तो हम किस मुँह से अंग्रेजों से समानता माँग सकेंगे ? समानता की बातें करने से पहले इस बात को समझ लेना अत्यावश्यक है ।

शास्त्र

"अब इस विषय में मैं आपके सामने धर्म की बातें क्या करूँ ? मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे धर्म में जो कुछ लिखा हो, याज्ञवल्क्य आदि ऋषि-मुनियों के छूत-छात जैसे कोई वाक्य हों भी, तो वे सभी अमर और स्थायी नहीं हैं। वह जमाना दूसरा था, आज जमाना और है । नहीं तो द्रौपदी को हम अलौकिक स्त्री मानते हैं, सुबह के वक्त उसका नाम लेते हैं, पाँचों पाण्डवों को पूज्य मानते हैं, इससे क्या हम आज द्रौपदी की तरह पाँच पति करनेवाली स्त्री को सती मान लेंगे ? हम तो इनकी जो पूजा करते हैं वह इनके कामों के ही कारण । हमें गुणग्राही होना चाहिए । और उनके कई गुण अलौकिक थे इसीलिए हमने उनका स्मरण बनाये रक्खा है । यह तो महाभारत की बात हुई, पर रामायण से अधिक प्रिय तो मेरे लिए कोई भी पुस्तक नहीं है । तथापि तुलसीदास ने उसमें जो शास्त्रों की अनेक बातें कही हैं वे क्या सभी प्रमाण हैं ? मनुस्मृति तो बड़ा भारी प्रमाण ग्रन्थ है, परन्तु मनुस्मृति में तो मांसाहार को ठीक लिखा है; इससे क्या आप मांस-भक्षण करेंगे ? आपके सामने ऐसी

बातें करने से आप चौंकते हैं। कोई मांस-भक्षण करता होगा तो वह चोरी-चुपके करता होगा, यह अलग बात है; पर मनुस्मृति में तो शरमाकर नहीं, चौड़े-धाड़े मांस-भक्षण करने को लिखा है। इतने पर भी हमने उसे त्याज्य माना है। कलियुग में जिस चीज के लिए मनाई उसकी सत्‌युग में छूट ? सुवर्णयुग में तो अभक्ष्य भक्ष्य हो सके और इस कलियुग में नहीं, यह विचित्र नहीं मालूम पड़ता ? बात यह है कि धर्म को किस दृष्टि से देखा जाय यही मुख्य बात है। और इसमें दो बातें हैं; एक तो यह कि धर्म की बातों की चर्चा बुद्धि से नहीं किन्तु हृदय से की जाय, और दूसरी यह कि धर्म के नाम पर अधर्म न किया जाय। आपको जानना चाहिए कि गीताजी का अत्याचार हो सकता है। दुर्योधन पर भीम का गदा-प्रहार आ, इसलिए भाई-बन्धु एक-दूसरे को शत्रु समझ कर मार तक डाल सकते हैं—ऐसा कहने वाले हों, तो मैं कहता हूँ, आपको गीताजी अच्छी तरह पढ़ना नहीं आता। यह विषय ही केवल हृदय का है। मेरा धर्म बुद्धि पर नहीं, किन्तु केवल हृदय पर आधार रखने वाला है; और इसलिए, आपसे मैं अपने हृदयों को टटोलने की प्रार्थना करता हूँ।"

'गांधी को माननेवाला'

इसके बाद गाँधीजी ने सबसे बात-चीत करने का आग्रह किया। कुछ देर तो कोई तैयार न हुआ, तब गाँधीजी ने कहा—

"मेरे सामने तो छोटा बालक भी बोल सकता है, मुझसे डरने की आपको कोई बात ही नहीं हो सकती, मुझसे किसी को भी डरना हो तो मेरा अहिंसा-धर्म ही न लुप्त हो जाय।"

इसपर एक भाई आगे आये। खादी का कोट था, कोट के बटनों पर गाँधीजी की तस्वीर थी, जाति के थे ब्राह्मण। उन्होंने अपनी कठिनाइयाँ प्रकट करने का प्रयत्न किया—

"मैं सब धर्म का माननेवाला हूँ, गाँधी को मानता हूँ। मेरा तो कहना यही है कि सब सर्वानुमति से, सर्व-सम्मति से, होना चाहिए। यह मैं नहीं कहता कि अन्त्यजों को न पढ़ाया जाय। मैं तो यह कहता हूँ कि उनके लिए अलग स्कूल खोलो। उसमें जो मास्टर पढ़ाने जाय वह हमारे बच्चों को पढ़ाने न आय। मेरी तो यही मांग है। बाज़ार में इस सम्बन्ध में बहुत चर्चा हुई थी और अधिकांश ने जो बात कही वही मैं आपके सामने पेश करता हूँ। बहुत से तो रुपये–पैसे की भी बात करते थे।"

गाँधीजी ने बीच में ही कहा—"नहीं, रुपये–पैसे का सवाल नहीं है। रुपया-पैसा तो लोग भले ही देना बंद कर दें। लेकिन रुपया-पैसा देना बन्द करें इससे क्या हम अंत्यज बालकों का पढ़ना रोकेंगे?"

वह भाई भी गाँधीजी की दृष्टि से सहमत हुए, किन्तु मतलब दूसरा निकाला—"नहीं, रुपये-पैसे का प्रश्न नहीं।

अनेक कहते है कि अन्त्यज के बालक को भर्ती न करेंगे तो काँग्रेस-कमिटी रुपया-पैसा नहीं देगी। मैं कहता हूँ कि कुछ पर्वा नहीं, नहीं देगी तो रुपया-पैसा तो चाहे जहाँ से मिल जायगा।"

गाँधीजी हँसे। उन्होंने पूछा—"अच्छा, आप कांग्रेस को तो मानते हैं कि नहीं ? अन्त्यज को न आने देकर तो आप 'काँग्रेस' के निश्चय के विरुद्ध व्यवहार करते हैं।"

"नहीं, मैं कांग्रेस के इस निश्चय को नहीं मानता। आपने सर्व-सम्मति से निश्चय किया होगा, किन्तु सर्व सम्मति होती कहाँ है ? यहाँ तो अनेक इसके विरुद्ध हैं और फिर भी आप इस पर आग्रह करेंगे तो मैं तो अपने बच्चे को शाला से उठा ही लूँगा।"

गाँधीजी—"यह तो कुछ नहीं। मैं मानता हूँ कि मेरा धर्म आपके बालक को पढ़ाने की अपेक्षा अन्त्यज के बालक को पढ़ाने का अधिक है। क्योंकि आपका बालक तो कहीं भी पढ़ सकेगा; पर अन्त्यज के बालक को पढ़ना कहाँ मिलेगा ?"

"मैं यह कहाँ कहता हूँ कि अन्त्यज के बालक को मत पढ़ाओ। किन्तु उन सबको इकट्ठा करने में तो हमारी जाति जाती है, बहुत खलबली मचती है। मैं तो आपको भी राजी रक्खूँ और अपने जाति-भाइयों को भी राजी रक्खूँ। परन्तु आप सब बिगाड़ देंगे।"

"अरे भाई, एक तो बिगड़े बिना रह ही नहीं सकता।"

"अरे साहब, अनैक्य से तो स्वराज्य रुकेगा, इस तरह एकमत न होने पर काम करने से कहीं स्वराज्य मिलनेवाला है ? एका होने पर ही स्वराज्य मिलेगा ।"

इस तर्क पर सब खिलखिला पड़े, पर गाँधीजी हँसनेवाले न थे । उन्होंने कहा—

"बाप-बेटे के बीच क्या भेदभाव नहीं होता ?"

"इससे तो बहुत बिगाड़ हुआ है ।" उन्होंने कहा ।

"मेरे और मेरे बच्चों के बीच अन्तर रहा है । मगर वह अनैक्य थोड़े ही है ? मतभेद क्या अनैक्य है ?"

"किन्तु दूसरे को दुःख पहुँचाना तो है ही न ?"

"नहीं; दुःखी तो नहीं ही करना; किन्तु सत्य कहने में मेरे बच्चे को दुःख लगे तो उसकी पर्वा न कर मुझे तो उसे सत्य ही कहना चाहिए ।"

"सत्य से तो दुःख लगता ही नहीं, उसमें असत्य हो तभी दुःख लगता है ।" पिछले नवरात्र का एक क़िस्सा सुनाकर उन्होंने कहा कि उस समय सब शान्त रहे थे, किसी ने अस्पृश्यता-निवारण की बात नहीं की तब तक सब ठीक था ।

गाँधीजी—"शान्ति काहे से रही । दूसरों ने अपना धर्म छोड़ा इससे ? भला धर्म छोड़कर कहीं शान्ति प्राप्त की जा सकती होगी ?

इतने में एक भाई ने गाँधीजी को बतलाया कि "नहीं ।

शान्ति तो कितनी थी, यह आपको बतलाऊँ ? गरबा (नाच) में कुछ मारवाड़ी बहनें थीं। उन्हें देखकर बहुतों को यह शंका हुई कि ये कदाचित् अन्त्यज होंगी। किन्तु कोई बोला नहीं। बाद में 'हो हा' हुई तब मालूम पड़ा कि वे तो मारवाड़ी बहनें थीं—इस प्रकार अन्त्यज बहनों को इस तरह पहचानना भी मुश्किल होता है।"

गाँधीजी ने कहा—"नहीं, परन्तु यहाँ तो जिन बहनों ने गुजराती पोशाक न पहन रक्खी हो और जिनका मुँह गुजराती बहन जैसा अच्छा न दीखता हो वे सब इनके लेखे तो अन्त्यज ही हुईं।"

इस पर सब लोग हँस पड़े।

सब मिल जायँगे

गाँधीजी ने और दलीलें शुरू कीं। "अच्छा, आप बसन्त-राम शास्त्री को जानते हैं न ? वह भी आपको इस विषय में समझायँगे कि आपका दुराग्रह ठीक नहीं है। मालवीयजी को आप क्या कुछ कम सनातनी मानते हैं ? वह तो अन्त्यजों से छुए जाते हैं, यही नहीं किन्तु उन्हें लेकर वह कुएँ पर भी गये और उसमें से उन्हें पानी भरने दिया एवं सबने पानी पिया।"

यह सुनकर तो पहले सज्जन दंग रह गये, जरा घबराये और

बोले—"हाँ-हाँ; मैं जानता हूँ कि कुछ समय में सब मिल जाने वाले हैं; सब एक हो जायँगे।"

फिर हँसी हुई। इसके बाद उन्हें धीरज देने के लिए गाँधीजी ने विषय बदला—"आप कहाँ के हैं?"

"पोरबन्दर के पास का ही हूँ।" इस जवाब से फिर हँसी को रोकना अशक्य हो गया।

गाँ०—"अच्छा आप बच्चे को शाला में तो भेजना, किन्तु स्नान करा लेना।"

वह भाई—"अरे, सब गड़बड़ हो जायगा। फिर क्या नहाना और क्या धोना? अन्त्यज को छूने की बात करते हैं वह कोयले को धोने जैसी बात मालूम पड़ती है।"

इन भाई की बात-बात में गोकुलनाथजी महाराज का नाम आता था, जिन्हें कि यह मानते हैं। इसपर गाँधोजी ने कहा—"अच्छा, अपने गोकुलनाथजी से, जिन्हें आप मानते हैं, कहो कि बच्चे को शाला में भेजूँगा और नहलाऊँगा तो वह आपको मना नहीं करेंगे।"

वह०—"गोकुलनाथ बाबा कहें कि ऐसा कर तो मैं जरूर मान लूँगा।" (किन्तु इस में भी मानों भारी स्वीकृति हो जाती हो, इस तरह वह सकपकाये और बोले—) "लेकिन वह ऐसा कहेंगे ही नहीं।"

फिर हँसी हुई ।

गाँ०—"अच्छा, आप किसी का भी अंकुश स्वीकार करते हैं या नहीं ?"

वह०—"उचित हो तो स्वीकार करूँ पर गोकुलनाथजी ऐसा कहें ही कैसे ?"

गाँ०—"हाँ-हाँ; पर वह कहें तब तो नहलाओगे न ?"

वह०—(कुछ उदास होकर)—"पर स्नान कितनी बार कराऊँ ? बच्चा बार-बार नहाकर बीमार जो पड़ जाय ।"

गाँ०—"ओहो, हम तो छोटे-छोटे बालक थे तब हमें प्याज़ बहुत पसन्द थी, किन्तु हमारी स्त्रियाँ वैष्णव ठहरीं; वह बेचारी रसोई से बाहर प्याज पकातीं और ऊँचे से हमें परोसतीं । हम उन्हें चिढ़ाते, खिजाते; उन्हें छू लेते और वह नहातीं, तभी मैंने अपनी माँ से प्रेममय असहकार सीखा । यह तो ३५ बरस की बात है, इसलिए इसे एक जमाना हो गया । उस समय भी अंत्यजों को छूकर हम नहा डालते थे । हमारी माँ हमें अनेक बार नहलाती थी । तो फिर आज यह क्या मुश्किल है ?"

वह०—"गोकुलनाथजी कहें तो जरूर देखूँगा ।"

गाँ०—"देखना, देखना ।"

किन्तु सारा संवाद कहाँ देने जाऊँ ? हिन्दू समाज इतने में ही अपना चित्र देखले तो चेत जाय । यह स्थिति कितनी हास्या-

स्पद, कितनी भोंडी है, यह तत्काल मालूम हुए बिना न रहे। इतना हुए बाद तो फिर अधिक बात करने की रही न थी। और बातें पूरी हों, इसके पहले तो श्री केशवराव देशपाण्डे साधक आश्रम के विद्यार्थियों को लेकर गाते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्हें बैठा कर गाँधीजी ने पहली बात को बन्द कर दिया। दूसरे एक ब्राह्मण सज्जन आये—काठियावाड़ी, शुद्ध श्वेत खादी का अंगरखा धारण, किये और मस्तक पर चन्दन की लम्बी रेखा काढ़े हुए।

फैसला

ऐसा मालूम पड़ा कि यह सज्जन कुछ प्रखर हिन्दुता बतावेंगे। पर उन्होंने विशुद्धता के साथ पहले से ही कह दिया— "मैं ब्राह्मण हूँ, किन्तु अस्पृश्यता मुझे अन्तःकरण के विरुद्ध मालूम पड़ती है।" इसके बाद कुछ कहने लायक था ही नहीं। उनका कहना तो यही था कि "जब अन्त्यज पढ़नेवाले ही नहीं तो केवल सिद्धान्त का प्रश्न उठा कर ही इतनी खलबली किस लिए खड़ी की जाय?" इतने में एक भाई ने बतलाया कि बहुत से भंगी पढ़ने की माँग कर रहे हैं। तीसरे एक सज्जन आये, उन्होंने जो 'हिन्दू-समाज का शब्द-चित्र' मैंने पहले दिया है उसकी पुष्टि की। "महाराज पहले जो कह गये उससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है। मुझे तो गोकुलनाथजी कहें वह सब मंजूर है।" चौथे सज्जन ने एक व्यावहारिक बाधा बतलाई। सबके

बालक अन्त्यजों के बालकों के साथ बैठें तो बैठने में तो बाधा न नहीं, किन्तु दोपहर को जल-पान करें, उसमें साथ-साथ जल-पान करें तो जाति-बन्धन कहाँ रहा ? हम तो, साहब, अन्त्यजों को छूने की बात मानते हैं,किन्तु शिक्षा तक इस बात को किसलिए ले जाते हैं ? घाटी लोगों ने एक बार हड़ताल की थी—यह बात सुनी कि तुरन्त हो—।"

आखिर गाँधीजी ने फ़ैसला दिया कि "अभी फ़िलहाल शाला भले ही अलग रखिए ।" इतने में पहले सज्जन बोले, "पर शिक्षक तो जुदे ही चाहिए।

गाँ०—"शिक्षक तो पृथक् नहीं ही हों । किन्तु एक रास्ता है । आप शिक्षक हों । होंगे ?"

पहले—"नहीं, नहीं, ऐसा कहीं हो सकता है ? किसी ईसाई या मुसलमान को शिक्षक बनाओ तो कोई दिक्क़त नहीं ।"

गाँ०—"यह तो आपने भारी अनर्थ की बात की । मैं चाहता हूँ कि इस बात को आप वापस ले लें ।"

उन महाराज को उसे वापस लेने में तो कुछ खर्च होना ही नहीं था । "गोकुलनाथजी कहेंगे तो देखूँगा" यह उन्होंने जिस भाव से कहा था उसी भाव से यह कहकर उठ खड़े हुए, "लो, वापस ले ली । पर मैं तो ढेड़-भङ्गी के स्पर्श के ही विरुद्ध हूँ ।"

अन्त्यज भाइयों के बारे में

अस्पृश्यता के पाप से हिन्दू-संसार अभी तक मुक्त नहीं हुआ; यही नहीं बल्कि संकीर्ण विचार जगह-जगह दृष्टिगोचर होते हैं। वाइकोम में तो हद ही हो गई है। पर गुजरात को छोड़कर दूर जाने की जरूरत ही कहाँ है? विले-पार्ले की राष्ट्रीय शाला में धर्म-संकट आ उपस्थित हुआ तब उसका निर्णय करने में मैंने यथाशक्ति भाग लेने की हिम्मत की। उस शाला के शिक्षक अन्त्यज बालकों को शामिल करना चाहते हैं। उस शाला की कमिटी में भी कई सज्जन अन्त्यजों को दाख़िल करने के पक्षपाती हैं। विलेपारले में इस प्रश्न के बारे में बहुत प्रगति हुई है। अन्त्यज भाइयों ने पृथक् शाला की माँग की है। ऐसी परिस्थिति में मैंने सलाह दी कि अन्त्यज बालकों को तुरन्त शाला में भर्ती करने से शाला के अस्तित्व को धक्का लगने की संभावना हो तो उनके लिए पृथक् शाला खोली जाय। अमुक स्थिति पर लागू होने वाले और उसी की चिकित्सा के लिए दिये हुए इस विचार का उलटा अर्थ लगाकर गुजरात की कितनी ही शालाओं के व्यवस्थापक ऐसा अर्थ करते हैं कि जहाँ-जहाँ राष्ट्रीय शाला हो वहाँ-वहाँ हर जगह अन्त्यजों के लिए पृथक्

शाला खोली जाय। यह सूचना कार्यान्वित हो तो दोनों शालायें डूबेंगी, ऐसा मेरा अभिप्राय है। इसका मुख्य कारण तो यही है कि इतना ख़र्चा हमसे नहीं सहा जा सकता, और एक वक्त हम अपने सिद्धान्त को शिथिल होने देंगे तो अन्त में सिद्धान्त ही नष्ट होकर अस्पृश्यता का कलंक रह जायगा। अतः विलेपार्ले की विशेष परिस्थिति के कारण दी गई सलाह का अनुकरण तो नहीं हो सकता फिर उपर्युक्त दोष के ही कारण तो विलेपार्ले की शाला विद्यापीठ के साथ संयुक्त नहीं हुई है। शिक्षक और कमेटी के सदस्य प्रयत्न कर रहे हैं कि वह संयुक्त हो सके। उस प्रयत्न में पृथक् शाला एक रोड़ा है। इससे यह उदाहरण विद्यापीठ से सम्बन्ध रखनेवाली शालाओं पर तो लागू नहीं हो सकता।

बारडोली और गुजरात से मैंने माँग की थी कि अस्पृश्यता का निवारण तो तुरन्त हो ही जाना चाहिए। अभी तक ऐसा नहीं हुआ, इसमें दोष तो दैव को ही दिया जायगा। हिन्दुओं की नस-नस में अस्पृश्यता का पाप फैल गया है, इसलिए वे पाप को ही पुण्य मान बैठे हैं। जिसे सारा जगत् पाप की तरह देख रहा है और जिसके कारण हिन्दू-जाति आज सारे जगत् के सामने तिरस्कृत है, उस दोष को हम देख ही नहीं सकते! पेटलाद के पास एक हृदय-द्रावक घटना हुई है, जिसके बारे में एक भाई इस प्रकार लिखते हैं—

"एक अन्त्यज पर ता० १-५-२४ के रोज़ इस प्रकार मार पड़ी:— वह पेटलाद स्टेशन पर रेलगाड़ी के एक डिब्बे में बैठा, साथ के डिब्बे में कुछ बनिये बैठे। ढेड़ (अन्त्यज) को वहाँ बैठा देख एक ने उठकर उसके चपत जमाया। वह बेचारा अपने प्राण लेकर भागा, फिर भी उन लोगों ने उसका पीछा न छोड़ा। उसे पकड़ कर इतना मारा कि जिसकी हद नहीं। अन्त्य-जोद्धार का काम यदि महासभा (कांग्रेस) का एक अंग न होता तो उस बेचारे की क्या दशा होती, यह नहीं कहा जा सकता। तीन-चार मुसलमान और तीन-चार हिन्दुओं ने बीच में पड़कर किसी तरह बेचारे को छुड़ाया। वे जैसे-जैसे उसे छुड़ाने का प्रयत्न करते वैसे-वैसे पूर्वोक्त व्यक्ति मारने को दौड़ते। इस मार को देखकर हमारी आँखें भर आईं। आप मौजूद होते तो आप की आत्मा को कितना दुःख होता, मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।"

ऐसी घटना आज भी हो सकती है, और वह भी पेटलाद स्टेशन पर! परन्तु ऐसा यह अकेला ही उदाहरण नहीं है। अभी भी जहाँ-तहाँ ऐसी क्रूरतायें हुआ ही करती हैं। महासभा-वादी प्रत्येक हिन्दू को चाहिए कि ऐसी दयनीय स्थिति को रोकने के लिए वह अन्त्यज-रक्षक बन जाय और जहाँ ट्रेन में अन्त्यज दिखलाई पड़े वहाँ उसकी पूरी-पूरी रक्षा करने के लिए तैयार

रहे। सरल से सरल रास्ता तो यह है कि अन्त्यज पर पड़ने वाली मार को स्वयं अपने ऊपर झेल लिया जाय। लेकिन इस इलाज से रोग नष्ट नहीं होता। रोग-निवारण के लिए तो अस्पृश्यता-निवारण की प्रवृत्ति व्यापक होनी चाहिए। और यह व्यापक तभी हो सकती है, जब कि महासभा के सदस्य सच्चे बनें। अभी तो स्वयं उन्हीं में अस्पृश्यता का रोग घर किये हुए है। महासभा के ही कई सदस्य ऐसे हैं, जो राष्ट्रीय शालाओं में अन्त्यजों को स्थान नहीं देते; उनका विश्वास कच्चा है। अन्त्यज-परिषद् को चाहिए कि वह ऐसे व्यक्तियों से महासभा को छोड़ देने की प्रार्थना करे और अन्त्यजों में अपनी प्रवृत्ति बढ़ावे। इस बात की जाँच करे कि यात्रा-सम्बन्धी क्या-क्या कठिनाइयाँ उन्हें उठानी पड़ती हैं और फिर उसका कोई उपाय ढूँढ़ा जाय। साथ ही उन्हें यह भी बतलाना चाहिए कि ऐसे अवसरों पर वे किस प्रकार अपनी रक्षा करें।

उनमें शालायें बढ़ाने, कताई-बुनाई आदि बढ़ाने, शराब आदि छुड़ाने इत्यादि कार्य तो इसके साथ-साथ हैं ही। प्रत्येक कार्य में विघ्न तो हैं ही, परन्तु यदि इन कामों के लिए दृढ़ स्वयंसेवक मिल जायँ तो जितना अभी तक हो चुका है उससे कहीं ज्यादा काम हो सकता है। यदि अन्त्यज-परिषद् सच्चे सेवकों की वृद्धि कर सके तो मात्र यही काम बड़ा मूल्यवान होगा।

हमारी मलिनता

धर्म के लिए मैं देश को भी बलि कर सकूँ, ऐसी मेरी भावना है। मेरा स्वदेशाभिमान धर्माभिमान से मर्यादित है। अतः देशहित यदि धर्महित का विरोधी हो, तो मैं उसे त्याग देने को तैयार हूँगा। अन्त्यज को अछूत समझना मैं अधर्म मानता हूँ। और धर्म को छोड़ कर देशहित करने की मेरी किञ्चित इच्छा नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब देश में सच्ची धार्मिक जागृति होगी तभी स्वराज्य मिलेगा। ऐसी जागृति का समय आ रहा है, ऐसा मालूम होता है।

२—अस्पृश्यता का विषय ऐसा है कि जिसके सम्बन्ध में अनेक व्यक्तियों को अनेक प्रकार की शंकाएँ हैं। एक एक तरह से तो दूसरी दूसरी तरह से इसकी रक्षा करने में संलग्न है।

३—निर्णय करने में शान्ति रखने की पूर्ण आवश्यकता है। हम धार्मिक या दूसरे किसी शुद्ध निर्णय को अशान्तिपूर्वक नहीं कर सकते। विनययुक्त दलीलों से ही हम सत्यासत्य का निर्णय कर सकते हैं। सब धर्म-सङ्कटों का निपटारा हम अपने विचारों को व्यवहार में ला कर ही कर सकते हैं—व्यवहार में आनेवाला सत्य ऊपर आ ही जाता है। सूर्य पर धूल फेंकने से अपनी ही आँखों में पड़ती है इसकी दलील क्या? जिसको ऐसी 'धूल' फेंकने में ही मजा आता है, वह फेंक कर ही अच्छे-बुरे का अनुभव करेगा। अस्पृश्यता-रूपी पाप को साथ लेकर स्वराज्य लेने

का प्रयत्न आकाश में धूल फेंकने के समान है। ऐसी ही शङ्काएँ कितने ही रिवाजों के सम्बन्ध में हैं। कोई भी रिवाज, जब तक उसका विरोध नहीं किया गया, दूर नहीं हुआ है। शराब आदि पीने की प्रवृत्ति से बचाव का उपाय भी हमें सोचना पड़ेगा। कितने ही तो शराब पीने को धर्म मानने वाले भी हैं। इसके बाद अस्पृश्यता की तो बात ही क्या? निम्न-लिखित तीन प्रश्नों का उत्तर देने की मैं कोशिश करता हूँ।

(१) भंगी-चमार का कार्य ही मैला है। और जिसका यह धन्धा ही हो जाता है उस पर उसका ऐसा सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है कि वह फिर नहा-धोकर साफ़ हो तो भी उसकी हड्डियाँ तक मैली हो जाती हैं इसलिए उस को छूना सर्वथा वर्जित है।

(२) डाक्टर आदि जो गन्दे कार्य करते हैं उनका काम भंगी का नहीं। वे सदा ऐसा काम नहीं करते और करते भी हैं तो कार्य करने के बाद साफ़ हो जाते हैं।

(३) भङ्गी-चमार जब तक अपना धन्धा नहीं छोड़ देते तब तक उनको छूना नहीं चाहिए।

४—ऊपर की दलीलें कई तरह की हैं। एक पक्ष यह कहता है कि जो 'अस्पृश्य' नहाने-धोने लग जायँ तो फिर कुछ कहने योग्य नहीं रहता। अब ऊपर की दलील के पक्षपाती कहते हैं कि भंगी की हड्डियों में ही मैला घुस गया है, उसे फिर कितना ही धोओ, साफ़ करो, स्पर्श नहीं कर सकते।

५—दोनों ओर की भूलों को मैं अच्छी तरह देख सकता हूँ। हम को भंगी आदि से स्पर्श न करने की आदत पड़ी हुई है, और फिर उसने धर्म का रूप पा लिया है। इसलिए अब जो उसे स्पर्श करने की इच्छा नहीं रखता है, वह हर प्रकार से अपनी आदत का ही समर्थन करता है।

६—हिन्दूधर्म के शरीर पर कितनी ही प्रथाएँ सवार हैं। उनमें कितनी ही मान्य हैं, कितनी ही निंद्य। अस्पृश्यता निन्दा के योग्य है। धर्म के नाम पर उसका पाप हिन्दूधर्म पर दो हजार वर्षों से चढ़ा है और चढ़ता जा रहा है। इस प्रथा को मैं पाखंड कहता हूँ और इस पाखण्ड में से हमें निकलना पड़ेगा—इसका प्रायश्चित्त हमें करना ही होगा।

७—सनातन धर्म की रक्षा शास्त्रों में छपे हुए श्लोकों को सच्चे बताने से न होगी प्रत्युत उन शास्त्रों में जो महान् सिद्धान्त हैं उनके अनुसार आचरण करने से होगी। जिन-जिन धर्म-प्रचारकों के साथ मुझे बातचीत करने का अवसर मिला है उन्होंने यह बात मंजूर की है। कितने ही विद्वान् गिने जाने और लोगों में पूजे जाने वाले धर्म-प्रचारकों से पूछने पर मालूम हुआ है कि भंगी आदि के व्यवहार का समर्थन पुरानी चली आने वाली प्रथा के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

८—यह देश जिस प्रकार तपस्या, पवित्रता, दया आदि

से भरा हुआ है उसी प्रकार स्वच्छन्दता, पाप, क्रूरता आदि से भी परिपूर्ण है। ऐसे समय में सब का कर्तव्य है कि इस पाखण्ड के विरुद्ध तैयार हों और ऐसे पवित्र कार्य को बढ़ा कर पुण्य के हिस्सेदार बनें एवं छः करोड़ का समुदाय जो हिन्दूधर्म से निराश होकर उसे त्याग न करे, ऐसा करने में सहायता करें।

९—कोई प्राणी जन्म से ही अस्पृश्य है और उसे अस्पृश्य अवस्था में ही मरना पड़ेगा, ऐसा हिन्दूधर्म में नहीं है यह मेरा विश्वास है। ऐसे अधर्म को धर्म का नाम देना अधर्म करने के समान है। जो अस्पृश्यता आज व्यवहार्य नहीं है उसे त्याग करने का मैं हिन्दुओं से आग्रह कर रहा हूँ।

१०—मेरी अल्पबुद्धि के अनुसार तो भङ्गी को जो मैल चढ़ता है वह शारीरिक है और वह मैल तुरन्त दूर हो सकता है। किन्तु जिन पर असत्य पाखण्ड का मैल चढ़ गया है वह इतना सूक्ष्म है कि उसको दूर करना बड़ा कठिन है। किसी को अस्पृश्य यदि गिन सकते हैं तो असत्य और पाखण्ड से भरे हुए लोगों को। इस वास्तविक मलीनता के लिए हमारे पास धैर्य और आन्तरिक स्वच्छता के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है, किन्तु भङ्गी की मलीनता गहरी नहीं है प्रत्युत उसका उपाय भी सरल है। जिन्होंने अपने आप काम किया है वे जरूर साफ़ रहेंगे।

११—एक विचारशील विवेकी हिन्दू ने मेरे साथ बातें करते

हुए कहा है कि हिन्दूधर्म में स्पर्श से—निकलते हुए श्वास से—भी सामने वाले पर असर पड़ता है इसलिए उससे दूर रहने की सूचना दी गई है। ऐसे सूक्ष्म परिणामों को समझकर, उससे बचकर, हिन्दू हजारों वर्ष तक टिक सके हैं और सुन्दरों शास्त्रों की रचना कर सके हैं।

१२—यह बात मुझे तो इस प्रकार सच्ची मालूम होती है कि स्पर्श से—दुर्जन के सहवास से हम मैले हो सकते हैं और सत्सङ्ग से शुद्ध हो जाते हैं। किन्तु यह सब तिरस्कार का समर्थन करने के लिए नहीं लिखा गया है और न समाज में विशृङ्खलता फैलाने के लिए, यह तो केवल एकान्त सेवा और संयम के लिए लिखा गया है। यह अन्त्यज के लिए नहीं प्रत्युत सब संसर्गों के लिए लिखा गया है। हमें अपनी आत्मा को शुद्ध करना है और यह स्वच्छता हम अन्त्यज बन्धुओं की सेवा कर, उनकी उन्नति कर सब प्रकार से पा सकते हैं। जो सदा दूसरे के दोषों का विचार कर उससे अलग रहते हैं वे तो पूरे पाखण्डी हैं क्योंकि दूसरे के दोषों का अवलोकन करते हुए वे अपने-आपको इतना पूर्ण मान लेते हैं कि हमारे लिए करने को कुछ भी नहीं रखते अर्थात् नीचातिनीच बन जाते हैं। भंगी-चमार तो अपने अन्दर ही बैठे हुए हैं, उनका बहिष्कार करना है, उनसे छूकर हमें नहाना है। दूसरे भंगी-चमार तो

मैला काम करते हुए भी ऐसे अच्छे, ऐसे सरल, और ऐसे नीतिज्ञ हैं कि वे पूजा करने योग्य हैं। भंगी-चमारों ने दुर्गुणों और दूसरे वर्णों ने सद्गुणों का पट्टा नहीं लिखा लिया है।

१३—डाक्टर का कार्य सदा गन्दगी साफ़ करने का ही है। उसे कभी चौबीसों घण्टे काट-फांस का काम मिले तो उसे करने के लिए वह कभी इन्कार नहीं करेगा। अन्त में वह भी तो अपने निर्वाह के लिए मैल साफ़ करने का कार्य करता है। उस कार्य को हम परोपकार समझते हैं और डाक्टर का आदर करते हैं। मेरी दलील यह है कि डाक्टर का कार्य तो केवल बीमार का उपकार करना है किन्तु भंगी के कार्य से संसार का उपकार होता है और वह डाक्टर के काय से बहुत अधिक आवश्यक और पवित्र है। डाक्टर यदि अपना धन्धा छोड़ दे तो बीमारों को हानि पहुँचे किन्तु भङ्गी अपना कार्य छोड़ दे तो जगत् का नाश ही हो जाय इसलिए आवश्यक कार्य करने वाले को अपवित्र गिन कर उसे दूर रखना बहुत बड़ा पाप है ऐसा समझना कुछ बुरा नहीं।

१४—भङ्गी-चमार का कार्य छोड़ने की प्रवृत्ति को मैं संसार के लिए बहुत हानिकर मानता हूँ।

१५—हमारे पास एक ही उपाय शेष है। जिस प्रकार डाक्टर के काम को हमने पवित्र समझा है उसी प्रकार भङ्गी के कार्य को

भी पवित्र मानना चाहिए। हमको उन्हें अच्छे ढंग से रहने को प्रेरित करना चाहिए, उन्हें दूर रखने के बजाय पास रखना और उनकी सेवा करनी चाहिए। अपने पायखाने को अच्छा रखने की आदत डालनी और यदि खुद को भी साफ़ करने की आवश्यता मालूम पड़े तो उसके लिए तैयार रहना एवं सीखना चाहिए। जब हम भङ्गी के कार्य की पवित्रता को समझ जायंगे तो हमारे जो पायखाने आज नरक के सदृश हो रहे हैं, रसोईघर के अथवा अपने बैठकघर के समान शुद्ध हो जायँगे। मेरा दृढ़-विश्वास है कि भङ्गी और उसके कार्य को तुच्छ गिनकर हमने अनेक रोगों को स्थान दिया है। ब्राह्मणों के घर मैंने भङ्गी के घर से भी मैले देखे हैं। भंगी के घर के पास पायखाना नहीं होता इसलिए वे स्वच्छ होते हैं। अपने पायखाने की गन्दगी और अपनी उस सम्बन्ध की बुरी आदतों से हम में प्लेग, हैजा आदि रोग घुस गये हैं और ये छूत से फैलते हैं ऐसा बहुत से विद्वान् डाक्टरों का निर्णय है। मुझे इस बात का खुद अनुभव है। अपने पायखाने को हम ऐसी स्थिति में ला सकते हैं उसे साफ़ करने में किञ्चित भी घृणा न हो और जो उसमें घुसे उसे स्वच्छ और बिना दुर्गन्ध का मालूम हो। अस्पृश्य के पाप से हम साम्राज्य के अस्पृश्य एवं भङ्गी ही नहीं बने प्रत्युत इस पाप के फल-स्वरूप हम रोगी भी बने एवं हमारे शरीर दुर्बल और तेजहीन हो गये हैं।

सवर्ण हिन्दुओं से विनय

(क्विलोन के भाषण में से)

"जिस प्रकार एक रत्ती संखिया से लोटा-भर दूध बिगड़ जाता है उसी प्रकार अस्पृश्यता से हिन्दू धर्म चौपट हो रहा है।

"दूध का गुण और इस्तेमाल और संखिया का गुण जानते हुए हम जिस प्रकार एक आदमी को दूध के लोटे के पास बैठे हुए संखिया तोड़ते देखकर घबरायँगे और दूध फेंक देंगे उसी तरह मैं बतौर हिन्दू के अनुभव करता हूँ कि अस्पृश्यता का अभिशाप हिन्दू-धर्म के दूध को जहरीला और अशुद्ध बना रहा है। इसलिए मैं मानता हूँ कि ऐसे मामले में धैर्य के लिए तारीफ़ नहीं की जा सकती। ऐसे मामलों में अपने को रोक रखना असंभव है। बुराई के साथ धैर्य रखने के मानी हैं, बुराई के और अपने साथ खिलवाड़ करना। इसलिए यह कहने में मैं झिझकता नहीं हूँ कि ट्रावनकोर राज्य को इस सुधार के मामले में सब से आगे रहना चाहिए और एकबारगी ही इस बुराई को नष्ट कर देना चाहिए। मगर मैं जानता हूँ कि जब तक हिन्दू जनता इसमें पूरी

सहायता न देवे, किसी हिन्दू-राज्य के लिए भी इस बुराई को दूर करना असंभव है। और इसलिए मेरी विनय महारानी साहिबा के बदले खासकर आप लोगों से होगी और इस सभा में बैठे हुए हर एक हिन्दू से मैं व्यक्तिगत विनय करना चाहता हूँ। आपने और मैंने, अछूतों के प्रति अपने कर्त्तव्य से बहुत दिनों तक लापरवाही दिखाई है और इस हद तक हम और आप हिन्दू-धर्म के झूठे प्रतिनिधि रहे हैं। मैं बिना किसी हिचक के आपको सलाह देता हूँ कि जो कोई अस्पृश्यता का समर्थन करने आवे, आप उसकी बात तुरंत इन्कार कर दें। आप याद रखिए कि इस युग में एक आदमी या कई आदमियों की कोई मंडली कोई काम करती है तो वह काम अधिक दिनों तक छिपा नहीं रहता। हमारी जाँच रोज ही होती रहती है और जब तक हम अस्पृश्यता को रखे हुए हैं, हममें कमी बनी हुई है। संसार के सभी धर्मों की जाँच आज हो रही है। हमीं लोग शुतुरमुर्ग़ जैसे अपने अज्ञान में खतरे की ओर से आँखें मूँद लेते हैं। मुझे इसमें जरा भी शक नहीं है कि आज के इस झगड़े में या तो अस्पृश्यता का नाश हो जायगा या हिन्दू-धर्म ही ग़ायब हो जायगा। मगर मैं जानता हूँ हिन्दू-धर्म नष्ट नहीं हो रहा है, मरने भी नहीं जा रहा है क्योंकि मैं देखता हूँ कि अस्पृश्यता तो एक मुर्दा है, जो अपनी आख़िरी साँस से थोड़ी देर और रहने के लिए लड़ रहा है।"

एक अन्त्यज क्या करे ?

एक अन्त्यज-सेवक लिखते हैं—

आपके असहयोग आन्दोलन से, पूज्य स्वामी श्रद्धानन्दजी के दलितोद्धार से, भारत-केसरी लालाजी के अछूतोद्धार से, आर्य-समाज के सुसंगठित प्रचार कार्य से और हिन्दू-महासभा के शुद्धि-संगठन से आज अछूत कहे जाने वाले अन्त्यजों में जागृति पैदा हुई है। बहुत से जाग गये हैं। उन्हें अपने उद्धार का भान हुआ है। अपने पैर पर खड़े होने के लिए वे तैयार हुए हैं। उनमें स्वाभिमान की भावना पैदा हुई है, नवजीवन आया है। लेकिन फिर भी देहात में आज खुले आम उनका अपमान होता है, उन्हें फ़िज़ूल दुःख पहुँचाया जाता है। उनका खादी के कपड़े पहन कर सफ़ाई से रहना तक लोगों की आँखों में खटकता है। ऐसी हालत में वे क्या करें, कोई मार्ग बतलाइयेगा ?

"मैं एक गाँव में गया था। मैं सोलहों आना खादी-भक्त और अन्त्यजों का हितेच्छु ठहरा; इस कारण सीधा अन्त्यजों के मुहल्ले में ही पहुँचा। मुझे वहाँ का वायुमण्डल सुन्दर जान पड़ा

वहाँ के लोग अच्छे दीख पड़े। वहाँ मैंने एक युवक को शुद्ध खादी की पोशाक में देखा। इस कारण मैंने उसे बुलाया और कहा—'भाई, मुझे अपने घर ले चलो।' वह मुझे ले गया। लेकिन रास्ते में उसने मुझसे कहा, 'आपको मेरे घर पर चलते, वहां रहते संकोच तो नहीं होगा न?' मैंने साफ इन्कार किया। मैं उसके घर गया। जाते ही पानी मिला। मैंने पानी पिया। देखकर उस युवक के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। उसने मुझसे कई सवाल पूछे। मैंने उनके जवाब दिये।

उस युवक ने मुझसे कहा,—"मैं हमेशा मन, वचन और कर्म से शुद्ध रहता हूँ। ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त का पालन करता हूँ। उनके सिद्धांत को ही मैं अपना प्राण समझता हूँ। इसके सिवा खादी मेरी अत्यन्त प्रिय वस्तु है। चर्खे को तो मैं अपनी 'माया' (धन-दौलत) समझता हूँ। हर रोज सवेरे चार बजे उठता हूँ। शौचादि से निपटकर ऋषि दयानन्द की बतलाई हुई दिनचर्या पर अमल करता हूँ। अपनी जाति के किसी भी आदमी के साथ रहना मुझे नापसन्द है। क्योंकि बार-बार हर तरह समझाने पर भी उन पर उसका उतना ही असर होता है जितना पत्थर पर पानी डालने का। इससे मैं ऊब गया हूँ और अब इच्छा नहीं होती कि उनके साथ रहूँ। मेरी अन्तरात्मा मुझसे कहती है कि इन लोगों से दूर रहने में ही मेरे जीवन की सार्थकता है। यह

सवाल मुझे बार-बार उलझन में डालता है। आर्य-समाज एक महान् संस्था है। वहाँ बिना किसी रुकावट के हमारा स्वागत किया जाता है, हम अपनाये जाते हैं। लेकिन हमारे गाँवों में हमारी क्या हालत है ? आजकल तो गाँधीजी भी नरम पड़ गये मालूम होते हैं।"

मैं तनिक भी नरम नहीं हुआ हूँ। मैं अपने विचार में जिस मार्ग से अस्पृश्यता को दूर करने की संभावना देखता हूँ उस मार्ग से उसे मिटाने में कोई बात उठा नहीं रख रहा हूँ। मैं देख रहा हूँ कि देश में से अस्पृश्यता की भावना घोड़े के वेग से भागी जा रही है। मैं रात-दिन कामना तो यह करता हूँ कि वह वायु-वेग से चली जाय। और मुझे विश्वास है कि किसी दिन ज़रूर ही वह वायु-वेग से निकल भागेगी। लेकिन तब तक के लिए धीरज की ज़रूरत है। उक्त पत्र में जिन अन्त्यज भाई के उद्गार दिये गये हैं, वे समझ में आने जैसे हैं, लेकिन फिर भी उन्हें शान्ति से काम लेना चाहिए। इस संसार में सुधारक को सदा से शुरुआत में अकेला रहना पड़ता है। अगर सुधारक को इच्छा करते ही साथी मिल जायँ तो उसके सुधार को ज्यादा क़ीमत नहीं रह जाय। अस्पृश्यता हमारे देश की एक बहुत पुरानी बुराई है। और फिर उसे धर्म का चोग़ा पहना दिया गया है। ऐसी बुराई का नाश करने वाले को शीघ्र ही साथी के मिलने की आशा नहीं

रखनी चाहिए। इस दिशा में आज तक जो काम हो सका है, और जितने साथी इसके लिए मिल सके हैं, सो तो केवल प्रभु की कृपा का ही फल है। प्रस्तुत अन्त्यज युवक को इतनी बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जो शुद्धि उन्होंने कष्ट-द्वारा प्राप्त की है, वह लोगों के लिए नहीं बल्कि उनके अपने लिए है। इस कारण इस शुद्धि में से ही उन्हें शान्ति प्राप्त करनी चाहिए। जो यह मानता है कि लोग उसकी शुद्धि की क़द्र करें, वह सच्चा शुद्ध नहीं हुआ है। शुद्धि तो सदा स्वावलम्बिनी होती है। दूसरे, इन युवक को चाहिए कि वह निराश होकर अन्य अन्त्यज भाइयों को छोड़ न दें। जो लोग सदियों से कुचले जाते रहे हैं उन्हें तेजस्वी बनते, जागृत होते थोड़ा समय जरूर लगेगा। उनके प्रति तो धीरज और प्रेम की भावना बढ़ाने की जरूरत है। जो शिक्षा और सुविधायें प्रस्तुत अन्त्यज भाई को मिली हैं वही सारे अंत्यज समाज के लिए भी संभव हैं। अतः हमें चाहिए कि हम उनकी उदासीनता को समझ लें। पत्थर के बारे में इन भाई ने एक बात कही है, दूसरी मैं उन्हें याद दिला देता हूँ। 'रसरी आवत जात तें, शिल पर होत निशान।' इस पंक्ति में पहली बात से ज्यादा सत्य है। जब हिमाचल का पानी पत्थरों से टकराता हुआ नीचे जाता है तो वे पत्थर सूखे ही नहीं बने रहते बल्कि चूर-चूर हो जाते हैं। प्रेम-रूपी पानी से तो पाषाण-हृदय भी पिघल जाता है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

अछूतों के सम्बन्ध में—

द्वितीय गोलमेज़ कान्फ्रेंस की अल्प-संख्यक समिति में दिये गये गांधीजी के भाषण से

मेरे लिए ऐसा कहा गया प्रतीत होता है कि मैं अछूतों को धारासभाओं में स्थान देने के विरुद्ध हूँ। यह सत्य का गला घोंटना है। जो कुछ मैंने कहा है और जो मैं फिर दोहराता हूँ वह यह है कि मैं उनको विशेष प्रतिनिधित्व देने के पक्ष में नहीं हूँ। मुझे विश्वास है कि इससे उनका कोई भला नहीं हो सकता, उल्टा नुक़सान ही होगा। महासभा बालिग़ मताधिकार स्वीकार कर चुकी है, जिसमें करोड़ों अछूत मतदाता हो सकते हैं। यह असम्भव मालूम होता है कि जब छूआछूत दूर होती जा रही है तब इन मतदाताओं के नामज़द प्रतिनिधियों का दूसरे बहिष्कार कर देंगे। धारासभाओं में चुनाव से अधिक जिस बात की इनको आवश्यकता है वह है सामाजिक तथा धार्मिक अत्याचारों से रक्षा। कानून से भी अधिक शक्तिशाली रूढ़ियों ने उनको इतना नीचा गिरा दिया है कि प्रत्येक विचारवान् हिन्दू को उससे लज्जित होकर प्रायश्चित्त करना चाहिए। अतएव मैं ऐसे कठोर क़ानून के पक्ष में हूँ जो मेरे इन देश-भाइयों पर उच्च कहलाने वाली जातियों द्वारा किये जानेवाले तमाम अत्याचारों को जुर्म क़रार दे। परमात्मा का धन्यवाद है कि हिन्दुओं की भावनाओं में परिवर्तन हो रहा है और अल्पकाल ही में छूआछूत हमारे पाप-पूर्ण भूत काल का एक अवशिष्ट चिन्ह मात्र रह जायगी।

निर्दय घाव

अल्प-संख्यक समिति की अन्तिम बैठक में दिये गये गांधीजी के भाषण से—

अन्य अल्प-संख्यक जातियों के दावे को मैं तो समझ सकता हूँ; किन्तु अछूतों की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए 'सब से अधिक निर्दय घाव' है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलङ्क सदैव के लिए क़ायम रहनेवाला है। भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए भी मैं अछूतों के वास्तविक हित को न बेचूँगा। मैं स्वयं अछूतों के विशाल समुदाय का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूँ। यहाँ मैं केवल महासभा की ओर से ही नहीं बोलता, प्रत्युत स्वयं अपनी ओर से भी बोलता हूँ और दावे के साथ कहता हूँ कि यदि सब अछूतों का मत लिया जाय तो मुझे उनके मत मिलेंगे और मेरा नम्बर सबके ऊपर होगा। और मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक दौरा कर के अछूतों से कहूँगा कि अस्पृश्यता जो कि उनका नहीं प्रत्युत कट्टर एवं रूढ़िवादी हिन्दुओं का कलंक है, दूर करने का उपाय पृथक् निर्वाचक मण्डल अथवा व्यवस्थापिका सभाओं में विशेष रक्षित स्थान नहीं है। इस समिति को और समस्त संसार को यह जान लेना चाहिए कि आज हिन्दू समाज-सुधारकों का ऐसा समूह मौजूद है जो कि अस्पृश्यता के इस कलंक को धोने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। हम नहीं चाहते कि हमारे रजिस्टरों में और हमारी मर्दुमशुमारी में अछूत नाम की जुदी जाति लिखी जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और अंग्रेज सदा के लिए अंग्रेज रह सकते हैं। किन्तु क्या अछूत भी सदैव के लिए अछूत रहेंगे? अस्पृश्यता

जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूँगा कि हिन्दू-धर्म डूब जाय। इसलिए डा. अम्बेडकर के अछूतों को ऊँचा उठा देखने की उनकी इच्छा तथा उनकी योग्यता के प्रति अपना पूरा सम्मान प्रकट करते हुए भी मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहूँगा, कि उन्होंने जो कुछ किया है अत्यन्त भूल अथवा भ्रम के वश में होकर किया है और कदाचित् उन्हें जो कटु अनुभव हुए होंगे, उनके कारण उनकी विवेकशक्ति पर परदा पड़ गया है। मुझे यह कहना पड़ता है, इसका मुझे दुःख है; किन्तु यदि मैं यह न कहूँ तो अछूतों के हित, जो मेरे लिए प्राणों के समान है, के प्रति मैं सच्चा न होऊँगा। सारे संसार के राज्य के बदले भी मैं उनके अधिकारों को न छोड़ूँगा। मैं अपने उत्तरदायित्व का पूरा ध्यान रखता हूँ, जब मैं कहता हूँ कि डा. अम्बेडकर जब सारे भारत के अछूतों के नाम पर बोलना चाहते हैं, तब उनका यह दावा उचित नहीं है; इससे हिन्दू-धर्म में जो विभाग हो जायँगे वह मैं जरा भी सन्तोष के साथ देख नहीं सकता। अछूत यदि मुसलमान अथवा ईसाई हो जायँ तो मुझे उसकी कुछ परवा नहीं; मैं वह सह लूँगा, किन्तु प्रत्येक गाँव में यदि हिन्दुओं के दो भाग हो जायँ तो हिन्दू-समाज की जो दशा होगी वह मुझसे सही न जा सकेगी। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं, वे भारत को नहीं पहचानते और हिन्दू-समाज आज किस प्रकार बना हुआ है यह नहीं जानते। इसलिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहूँ कि इस बात का विरोध करनेवाला यदि मैं अकेला होऊँ तो भी मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूँगा।

परिशिष्ट २

[१]

गाँधी जी का पत्र सर होर के नाम

महात्मा गाँधी ने ११ मार्च १६३२ को यरवदा सेण्ट्रल जेल से निम्नलिखित आशय का पत्र सर सेमुएल होर के पास भेजा—

प्रिय सर सेमुएल होर,

आपको कदाचित स्मरण होगा कि गोलमेज-सम्मेलन में अल्प-संख्यकों का दावा उपस्थित होने पर मैंने अपने भाषण के अन्त में कहा था कि मैं दलित जातियों को पृथक्-निर्वाचन का अधिकार दिये जाने का प्राण देकर विरोध करूँगा। यह बात जोश में आकर या अलंकार के लिए नहीं कही गई थी। वह एक गम्भीर वक्तव्य था।

उस वक्तव्य के अनुसार मैंने भारत लौटने पर पृथक् निर्वाचन के, कम से कम दलित वर्गों के लिए, विरुद्ध लोकमत तैयार करने की आशा की थी। पर यह होनहार न था।

मुझे जो पत्र पढ़ने की अनुमति है उनसे मालूम होता है कि किसी भी क्षण सम्राट-सरकार अपने निर्णय की घोषणा कर सकती है। पहले मैंने सोचा था कि यदि निर्णय में दलित वर्गों के लिये पृथक्-निर्वाचनाधिकार हुआ तो मैं ऐसी कार्रवाई करूँगा जो मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उस समय आवश्यक जान पड़े। पर मैं अनुभव करता हूँ कि पूर्व सूचना दिये बिना कार्य करना ब्रिटिश सरकार के साथ अन्याय करना

होगा। स्वभावतः वे मेरे उक्त वक्तव्य को वह महत्व न देंगे जो मैं देता हूँ।

दलित वर्गों को पृथक् निर्वाचनाधिकार देने के संबन्ध में मुझे कौनसी आपत्तियाँ हैं उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं। मैं अनुभव करता हूँ कि मैं उन्हीं में से एक हूँ। उनका मामला दूसरों से बिलकुल भिन्न है। व्यवस्थापक सभाओं में उन्हें प्रतिनिधित्व मिलने के विरुद्ध मैं नहीं हूँ। मैं तो इसे पसंद करूँगा कि उनमें से प्रत्येक बालिग़—स्त्री-पुरुष दोनों—शिक्षा या सम्पत्ति किसी का भी विचार न कर मतदाता बनाया जाय, यद्यपि दूसरों के लिए मताधिकार की योग्यता इससे अधिक हो। पर मेरा मत है कि पृथक्-निर्वाचन उनके लिए और हिंदू-धर्म के लिए हानिकर है। फिर केवल राजनैतिक दृष्टि से यह कैसा ही क्यों न हो। पृथक् निर्वाचन से उन्हें जो हानि होगी उसे समझने के लिए यह जानने की जरूरत है कि वे किस प्रकार उच्च वर्ग के हिन्दुओं के बीच बसे हुए हैं और उनके आश्रित हैं। जहाँ तक हिन्दू-धर्म का सम्बन्ध है वह तो पृथक्-निर्वाचन से छिन्न-भिन्न हो जायगा। मेरे लिए इन वर्गों का प्रश्न मुख्यतः नैतिक और धार्मिक है। राजनैतिक दृष्टि, यद्यपि वह महत्वपूर्ण है, नैतिक और धार्मिक दृष्टि के सामने नगण्य हो जाती है। इस सम्बन्ध में मेरे भाव आपको यह स्मरण करके समझने होंगे कि इन वर्गों की स्थिति के सम्बन्ध में मुझे बचपन से दिलचस्पी है, और उनके लिए मैं अनेक बार अपना सब-कुछ खोने के लिए तैयार हो चुका हूँ। मैं यह आत्म-प्रशंसा के लिए नहीं कह रहा हूँ, कारण मैं अनुभव करता हूँ कि उच्च श्रेणी के हिंदुओं का कोई भी प्रायश्चित्त उस क्षति की

किसी भी अंश में पूर्ति नहीं कर सकता जो उन्होंने दलित वर्ग
को सदियों से जान-बूझ कर गिरा रख कर की है। पर मैं जानता
हूँ कि पृथक्-निर्वाचन न प्रायश्चित्त है और न उस गहरे पतन की
औषधि जिससे दलित वर्ग कष्ट पा रहे हैं।

इसलिए मैं सम्राट-सरकार को सविनय सूचित करता हूँ कि यदि आ
के निर्णय से दलित वर्गों को पृथक् निर्वाचनाधिकार मिलेगा तो मुझे प्राणान्
तक अनशन करना होगा।

मैं जानता हूँ— और मुझे दुःख है—कि क़ैदी की दशा
मेरे ऐसा करने से सम्राट-सरकार को बड़ी परेशानी होगी और
बहुत से लोग इसे बहुत अनुचित समझेंगे कि मेरे पद का मनुष्य
राजनैतिक क्षेत्र में ऐसी कार्य-प्रणाली प्रचलित करे जिसे
अधिक नहीं तो पागलपन कहेंगे। अपने पक्ष-समर्थन के लिए मैं
केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मेरे लिए वह कार्य, जो करने
का मैंने विचार किया है, उद्देश्य-साधन की कोई प्रणाली नहीं
वरन् मेरे अस्तित्व का एक अंग है। यह मेरी आत्मा की पुकार
है जिसकी मैं अवज्ञा नहीं कर सकता चाहे इससे मेरे समझदार
होने की ख्याति नष्ट ही क्यों न हो जाय।

इस समय जहाँ तक मैं देखता हूँ मेरा जेल से छूट जाना भी
मेरे अनशन के कर्तव्य को किसी प्रकार कम आवश्यक न
बना सकेगा।

इतने पर भी मैं आशा कर रहा हूँ कि मेरा सारा भय बिलकुल
व्यर्थ है और ब्रिटिश सरकार दलित वर्गों के लिए पृथक्-निर्वाचन
की व्यवस्था करने का बिलकुल विचार नहीं कर रही है।

दमन की बात

शायद मेरे लिए उस दूसरे विषय का भी उल्लेख कर देना अच्छा होगा जो मुझे व्याकुल कर रहा है और मुझे इसी प्रकार अनशन करने के लिए बाध्य कर सकता है। वह दमन का प्रकार है। मैं नहीं कह सकता कि कब मुझे ऐसा धक्का लगे जो यह त्याग करने के लिए मुझे बाध्य कर दे। दमन क़ानून की उचित सीमा को भी पार करता हुआ दिखाई दे रहा है। देश में सरकारी आतंक फैल रहा है। अंग्रेज और भारतीय अधिकारी पाशविक बनाये जा रहे हैं। छोटे-बड़े भारतीय अधिकारियों का नैतिक पतन हो रहा है कारण जनता के प्रति विश्वासघात और अपने ही भाइयों के साथ अमानुषिक व्यवहार को प्रशंसनीय कह कर सरकार उसके लिए इन्हें पुरस्कृत करती है। देशवासी भयभीत कर दिये जा रहे हैं। भाषण-स्वातंत्र्य नष्ट कर दिया गया है। अमन-क़ानून के नाम पर गुण्डाशाही चल रही है। सार्वजनिक सेवा के लिए घर से निकली हुई महिलाओं की आबरू जाने का भय है।

मेरी राय में, यह सब इसलिए किया जा रहा है कि कांग्रेस स्वतन्त्रता के जिस भाव का समर्थन कर रही है वह कुचल डाला जाय। साधारण क़ानून की सविनय अवज्ञा करनेवालों को दण्ड देकर ही दमन का अन्त नहीं हो रहा है। अनियंत्रित शासन के नये हुक्मों को, जिनका मुख्य उद्देश्य लोगों को नीचा दिखाना है, तोड़ने के लिए यह दमन लोगों को उत्तेजित और बाध्य कर रहा है।

इन कार्यों में मुझे तो लोकतंत्र का भाव बिलकुल नहीं दिखाई दे रहा है। सच तो यह है कि हाल में मैंने इंग्लैण्ड में

जो कुछ देखा उससे मेरी यह राय क़ायम हो गई कि आपका लोकतंत्र सिर्फ ऊपरी और दिखाऊ है। अधिक-से-अधिक महत्व की बातों में व्यक्तियों और समूहों ने पार्लमेण्ट की राय लिये बिना ही निर्णय कर डाले हैं और इन निर्णयों का समर्थन ऐसे सदस्यों ने किया है जो शायद ही जानते हों कि हम क्या कर रहे हैं। मिस्र देश के सम्बन्ध में यही हुआ, १९१४ के युद्ध के सम्बन्ध में यही हुआ और भारत के सम्बन्ध में यही हो रहा है।

लोकतंत्र नामक पद्धति में एक आदमी को इतना बड़ा और अनियंत्रित अधिकार हो कि ३० करोड़ से भी अधिक लोगों के एक प्राचीन राष्ट्र के सम्बन्ध में वह चाहे जैसी आज्ञा दे, तथा उस आज्ञा को काम में लाने के लिए विनाश के सबसे भयंकर यंत्र को मैदान में ले आवे, इस कल्पना के ही विरुद्ध मेरी आत्मा बलवा करती है। मुझे तो यह लोकतंत्र का अभाव मालूम होता है। यह दमन उन दो जातियों के सम्बन्ध को, जो पहले ही ख़राब हो चुका है, और खराब किये बिना नहीं रह सकता।

मैं इस प्रवाह को कैसे रोक सकता हूँ? सविनय अवज्ञा को मैं इसके लिए रोक नहीं सकता। मेरा इस पर धर्म के जैसा विश्वास है। मैं अपने आपको स्वभावतः लोकतंत्रवादी समझता हूँ। मेरे लोकतंत्र में बल-प्रयोग द्वारा अपनी इच्छा को औरों पर लादना संभव नहीं है। अतः जहाँ-जहाँ बल-प्रयोग आवश्यक या उचित समझा जाता है वैसे अवसरों पर उपयोग करने के लिए ही सविनय अवज्ञा की कल्पना की गई है। यह कष्ट उठाने का क्रम है और यदि आवश्यक हो तो सविनय अवज्ञा करनेवाले को मृत्यु तक अनशन करना चाहिए।

वह समय मेरे लिए अभी नहीं आया है। मेरी अन्तरात्मा
ो इसके लिए स्पष्ट शब्दों में आदेश नहीं दे रही है। पर बाहर
घटनाओं से मेरा हृदय भी काँप रहा है। अतः जब मैं
प को यह लिख रहा हूँ कि दलित जातियों के सम्बन्ध में मेरा
नशन करना सम्भव है तब यदि साथ ही यह भी न बता दूँ कि
नशन के सिवा भी इसका एक और सम्भव उपाय है तो मैं
ापसे सच्चा व्यवहार न करूँगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आपके साथ जो पत्र-व्यवहार
रहा है उसे मैंने अपनी ओर से बहुत ही गुप्त रखा है। अवश्य
सरदार वल्लभभाई पटेल और श्री महादेव देसाई, जो अभी
ारे साथ रहने को भेजे गये हैं, इस सम्बन्ध में सब कुछ
नते हैं। पर आप इस पत्र का चाहे जैसा उपयोग अवश्य
करेंगे।

हृदय से आपका,

मो० क० गांधी

ा में—सर सेमुएल होर, ह्वाइट हाल, लण्डन।

[२]

सर सेमुएल होर का जवाब

सर सेमुएल होर ने १३ अप्रैल १९३२ को महात्मा गाँधी को इस आशय का उत्तर भेजा—

प्रिय गांधीजी,

आपकी ११ मार्च की चिट्ठी के उत्तर में यह लिख रहा हूँ और मैं पहले ही कह देता हूँ कि दलित श्रेणियों के लिए पृथक् निर्वाचन के प्रश्न पर आपके भावावेग को मैं पूरी तरह समझता हूँ। मैं यही कह सकता हूँ कि इस प्रश्न के केवल गुणावगुणों पर जो भी निर्णय आवश्यक हो उसे हम करना चाहते हैं। आप जानते ही हैं कि लार्ड लोथियन की कमिटी ने अपना दौरा समाप्त नहीं किया है और वह जिस किसी निश्चय पर पहुँचेगी उसे प्राप्त होने में कुछ हफ्ते अवश्य लग जायँगे। जब हमें यह रिपोर्ट प्राप्त हो जायगी तब हमें उसकी सिफ़ारिशों पर बहुत ही ध्यानपूर्वक विचार करना होगा और हम तब तक कोई निर्णय न करेंगे जब तक हम कमिटी के विचारों के सिवा उन विचारों पर भी विचार न कर लेंगे जिन्हें आपने और आपके समान विचार रखनेवालों ने इतनी शक्ति के साथ प्रकट किये हैं। मुझे विश्वास है कि यदि आप हमारे स्थान में होते तो आप भी ठीक वैसा ही कार्य करते जैसा हम करना चाहते हैं। कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने तक राह देखिए, फिर उसपर पूरी तरह विचार कीजिए और किसी अन्तिम निश्चय

पर पहुँचने के पहले उन मतों पर ध्यान दीजिए जिन्हें दोनों पक्षों ने इस विवादग्रस्त प्रश्न पर प्रकट किये हैं। इससे अधिक मैं नहीं कह सकता। मैं नहीं समझता कि आप मुझसे अधिक कुछ कहने की आशा रखते होंगे।

आर्डिनेन्सों के सम्बन्ध में मैं वे ही बातें दुहरा सकता हूँ जो मैं सार्वजनिक और व्यक्तिगत रूप से कह चुका हूँ। मुझे विश्वास है कि व्यवस्थित सरकार की नींव पर ही जान-बूझकर आक्रमण होते देख इन्हें जारी करना आवश्यक था। मुझे यह भी विश्वास है कि भारत सरकार और प्रान्तीय सरकार दोनों अपने व्यापक अधिकारों का दुरुपयोग नहीं कर रही हैं और ज्यादतियों और प्रतिहिंसा-युक्त कार्यों को रोकने के लिए भरसक कोशिश कर रही हैं। आतंककारी कार्यों से अपने अफ़सरों और जाति के अन्य वर्गों की रक्षा करने तथा क़ानून और व्यवस्था के तत्त्वों को बनाये रखने के लिए जितने समय तक असाधारण उपायों से काम लेने को हम बाध्य हैं उससे अधिक समय तक हम उन्हें जारी न रक्खेंगे।

आपका—

सेमुएल होर

[३]

महात्माजी की प्रधान मंत्री को चिट्ठी

महात्मा गाँधी ने यरवदा सेन्ट्रल जेल से १८ अगस्त १९३२ को प्रधान-मंत्री को इस आशय की चिट्ठी लिखी—

प्रिय मित्र,

इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर ११ मार्च को मैंने सर सेमुएल होर को जो चिट्ठी लिखी वह उन्होंने आपको तथा मन्त्रिमण्डल को दिखा दी होगी। वह चिट्ठी इस चिट्ठी का अंश समझी जाय और इसी के साथ पढ़ी जाय।

मैंने अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व पर ब्रिटिश सरकार का निश्चय पढ़ा है और पढ़कर उदासीन भाव से अलग रख दिया है। मैंने सर सेमुएल को जो चिट्ठी लिखी और सेंट जेम्स पैलेस में १३ नवम्बर १९३१ को गोलमेज सम्मेलन की अल्पसंख्यकों की कमेटी में जो घोषणा की थी उसके अनुसार आपके निर्णय का विरोध मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर करूँगा।

ऐसा करने का उपाय यही है कि मैं प्राण त्यागने तक लगातार अनशन करने की घोषणा कर दूँ और नमक और सोडा के साथ या उसके बिना पानी के सिवा और किसी प्रकार का अन्न ग्रहण न करूँ।

यह अनशन तभी समाप्त होगा जब इस व्रत के रहते ब्रिटिश सरकार अपनी इच्छा से या सार्वजनिक मत के दबाव से अपने

निश्चय पर फिर विचार करें और साम्प्रदायिक निर्वाचन की अपनी योजना दलितवर्गों के सम्बन्ध में वापस ले ले जिनके प्रतिनिधियों का चुनाव साधारण निर्वाचन-क्षेत्रों से हो और सबका समान मताधिकार रहे, फिर यह कितना ही व्यापक क्यों न हो जाय।

यदि बीच में इस रीति से उक्त निर्णय पर फिर से विचार न हुआ तो यह अनशन साधारण अवस्था में अगले २० सितम्बर की दोपहर से आरम्भ होगा।

मैंने यहाँ के अधिकारियों से कह दिया है कि इस चिट्ठी का मजमून आपके पास तार से भेज दिया जाय जिसमें आपको सोचने के लिए काफ़ी समय मिले। पर किसी भी अवस्था में, मैं आपको इतना काफ़ी समय दे रहा हूँ कि धीरे से धीरे मार्ग से जाने पर भी यह चिट्ठी आपको समय से मिल जाय।

मेरी यह भी इच्छा है कि मेरी यह चिट्ठी और सर सेमुएल होर की लिखी हुई चिट्ठी शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित की जाय। मैंने अपनी ओर से पूरी ईमानदारी के साथ जेल के नियमों का पालन किया है और अपनी इच्छा या इन दो चिट्ठियों का मज-मून सरदार वल्लभभाई पटेल और श्री महादेव देसाई इन दो साथियों को छोड़ और किसी को नहीं बताया है। पर यदि आप इसे सम्भव बना दें तो मैं चाहता हूँ कि मेरी चिट्ठियों का प्रभाव जनता पर पड़े। इसीलिए इन्हें शीघ्र प्रकाशित करने का मैं अनु-रोध करता हूँ।

खेद है कि मुझे यह निश्चय करना पड़ा। पर मैं अपने को धार्मिक पुरुष समझता हूँ और इस नाते मेरे सामने कोई दूसरा

मार्ग नहीं रह गया है। सर सेमुएल होर को मैंने जो चिट्ठी लिखी उसमें मैं कह चुका हूँ कि परेशानी से बचने के लिए ब्रिटिश सरकार मुझे छोड़ देने का निश्चय भले ही करे, पर मेरा अनशन बराबर जारी ही रहेगा। क्योंकि अब मैं अन्य किसी उपाय से इस निर्णय का विरोध करने की आशा नहीं कर सकता। और सम्मानयुक्त उपाय को छोड़ किसी दूसरे उपाय से अपनी रिहाई करा लेने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं।

जीवन के कार्यक्रम की पूर्ति

सम्भव है, मेरा निर्णय दूषित हो और मेरा यह विचार बिलकुल ग़लत हो कि दलित वर्गों के लिए पृथक् निर्वाचन रहना उनके या हिन्दुत्व के लिए हानिकर है। यदि ऐसा हो तो अपने जीवन-सिद्धान्त के अन्य अंगों के सम्बन्ध में मेरे ठीक रहने की सम्भावना नहीं। उस दशा में अनशन करके मर जाना मेरी भूल के लिए प्रायश्चित्त होगा और उन असंख्य स्त्री-पुरुषों के सर से एक बोझ दूर हो जायगा जो मेरे ज्ञान पर बालक-जैसा विश्वास रखते हैं। पर यदि मेरा निर्णय ठीक हो और मुझे सन्देह नहीं कि यह ठीक है, तो इस निश्चय से मेरे जीवन का कार्यक्रम उचित रूप से पूर्ण होगा जिसके लिए मैंने २५ साल से भी अधिक समय से यत्न किया है और जिसमें कम सफलता नहीं मिली है।

आपका विश्वसनीय मित्र—

एम० के० गांधी

[४]

मैकडॉनल्ड का पत्र महात्माजी के नाम

प्रधान मन्त्री श्री रैमसे मैकडॉनल्ड ने ८ सितम्बर को नीचे लिखे आशय का पत्र महात्माजी के पास भेजा—

प्रिय गाँधी जी,

आपका पत्र मिला। पढ़कर आश्चर्य, और कहना चाहता हूँ कि, बहुत हो हार्दिक दुःख भी हुआ। इसके सिवा मैं यह कहने के लिए भी बाध्य हूँ कि दलित वर्ग के सम्बन्ध में बादशाह की सरकार के निर्णय का वास्तविक अर्थ क्या है, इसे समझने में आप को भ्रम हो रहा है। हम इस बात को सदा समझते रहे हैं कि आप दलित वर्ग के सदा के लिए हिंदू-जाति से अलग कर दिये जाने के अटल विरोधी हैं। गोलमेज की अल्पसंख्या समिति में आपने अपनी स्थिति बिलकुल साफ़ तौर से बताई थी और अपने १९ मार्च वाले पत्र में सर सेमुएल होर को फिर से भी आपने अपना मत बता दिया था। हम यह भी जानते हैं कि हिन्दू जनता के एक बहुत बड़े भाग का भी इस विषय में वही मत है जो आपका है। अतः दलित वर्ग के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विचार करते समय हमने उसपर बहुत ही सावधानी से विचार किया।

अछूतों की संस्थाओं से मिली हुई बहु-संख्यक अपीलों तथा उनकी सामाजिक बाधाओं के विचार से जिन्हें आम तौर से सभी स्वीकार करते हैं और खुद आप भी अनेक बार स्वीकार कर चुके हैं, कौंसिलों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उनके न्याययुक्त अधि-

कार को रक्षा करना हमने अपना कर्तव्य समझा। साथ ही हमें इस बात का भी उतना ही ध्यान रहा है कि हमारे हाथ से कोई ऐसी बात नहीं होनी चाहिए जो अछूतों को सदा के लिए हिन्दू-जाति से अलग कर दे। अपने ११ मार्च वाले पत्र में आपने खुद ही कहा है कि मैं अछूतों को कौंसिलों में प्रतिनिधित्व दिये जाने के ख़िलाफ़ नहीं हूँ।

सरकारी योजना उचित है

सरकारी योजना के अनुसार अछूत हिंदू-जाति के अंग बने रहेंगे और उनके साथ बराबरी की हैसियत में शामिल होकर वोट दे सकेंगे। पर २० साल तक निर्वाचन में, हिन्दुओं के साथ शामिल रहते हुए भी, थोड़े-से ख़ास हलकों के जरिये अपने स्वार्थों की रक्षा का उपाय करते रहेंगे, जो हमारा निश्चय है कि वर्तमान स्थिति में आवश्यक है। जहाँ-जहाँ ऐसे हलके बनाये जायँगे, अछूत वर्ग साधारण हिन्दू निर्वाचन क्षेत्र के वोट से वंचित न होंगे, बल्कि उन्हें दो-दो वोट देने का अधिकार दे दिया जायगा, जिसमें हिन्दू-जाति के साथ उनका सम्बन्ध अविकल बना रहे। आप जिसे सांप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र कहते हैं अछूतों के लिए वैसे हलके हमने जान-बूझकर नहीं बनाये हैं और संपूर्ण अछूत वोटरों को साधारण अर्थात् हिन्दू निर्वाचन क्षेत्रों में शामिल कर दिया है जिसमें उच्च जाति के हिन्दू उम्मेदवारों को अछूत वोटरों के पास जाकर वोट माँगना पड़े अथवा अछूत उम्मेदवारों को ऊँची जाति वाले हिन्दू वोटरों के पास वोट माँगने जाना पड़े।

इस प्रकार हिन्दू-जाति की एकता की सब प्रकार से रक्षा की गई है। तथापि हमने सोचा कि उत्तरदायी शासन के आरंभिक

काल में जब प्रांतों में शासनाधिकार उसी वर्ग के हाथ में रहेगा जिसका कौंसिल में बहुमत होगा, यह आवश्यक होगा कि दलित वर्ग, जिसके विषय में आप खुद भी स्वीकार करते हैं कि उच्च जाति के हिंदुओं ने शताब्दियों से उन्हें नीची अवस्था में डाल रखा है, ९ में से ७ प्रांतों की कौंसिलों में अपने कुछ ऐसे प्रतिनिधि भी भेज सकें जो उनके अभाव-अभियोगों और आदर्शों को प्रकट कर सकते हैं और उनके विरुद्ध निर्णय होने से रोक सकें अर्थात् जिनके द्वारा इस वर्ग का मत प्रकट हो सके। प्रत्येक न्याय-शील व्यक्ति को इस व्यवस्था की आवश्यकता स्वीकार करनी होगी। हमारे विचार से वर्तमान परिस्थिति में संरक्षित स्थान सहित संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था में दलित वर्ग के लिए अपने ऐसे सदस्य कौंसिलों में भेज सकना संभव होगा जो उनके वास्तविक प्रतिनिधि और उनके सामने जिम्मेदार हों, चाहे मताधिकार की जितनी भी व्यवस्थायें इस समय संभव हैं उनमें से कोई भी क्यों न की जाय। कारण यह कि इस व्यवस्था में उनके प्रायः सभी सदस्य उच्च जातियों के हिन्दुओं द्वरा ही चुने जायँगे।

पृथक निर्वाचन से उत्तम व्यवस्था

हमारी योजना में अछूतों को साधारण निर्वाचन क्षेत्रों में मताधिकार देते हुए उनके लिए थोड़े से अलग हलके भी बना दिये हैं। मुसलमान आदि अल्प संख्याओं के लिए की गई साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था से यह रूप और प्रभाव में सर्वथा भिन्न है। एक मुसलान साधारण हलके में न वोट दे सकता है और न उम्मेदवार हो सकता है। मुसलमानों को जिस स्थान में जितनी जगहें दी गई हैं उससे वे एक भी अधिक नहीं

प्राप्त कर सकते। अधिकतर प्रांतों में उन्हें अपनी जनसंख्या के पड़ते से अधिक जगहें दी गई हैं। पर दलित वर्ग को ख़ास हलकों के द्वारा जो जगहें दी गई हैं वे बहुत अल्प हैं और उनकी जनसंख्या के पड़ते के विचार से नहीं नियत की गई हैं। इस व्यवस्था का एक मात्र उद्देश्य यही है कि वे कौंसिलों में अपने कुछ ऐसे प्रतिनिधि अवश्य भेज सकें जो केवल उन्हीं के चुने हों। हर जगह उनके इन इन विशेष स्थानों की संख्या उनकी आबादी के पड़ते से बहुत कम है।

अनशन किसलिए ?

मैं समझता हूँ कि आप जो अनशन के द्वारा प्राणत्याग का विचार कर रहे हैं, उसका उद्देश्य न तो यह है कि दलित वर्ग दूसरे हिंदुओं के साथ संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र में शामिल हों, क्योंकि यह अधिकार तो उन्हें मिल ही चुका है, और न यही है कि हिंदुओं की एकता बनी रहे, क्योंकि इसका भी उपाय किया जा चुका है, किन्तु केवल यह है कि अछूत लोग, जिनके लिए आज भीषण बाधाएँ उपस्थित होने की बात सभी स्वीकार करते हैं, अपने थोड़े से प्रतिनिधि भी ऐसे न भेज सकें, जो उनके अपने चुने हुए हों और जो उनके भाग्य की निर्णायक कौंसिलों में उनके प्रतिनिधि की हैसियत से बोल सकें। सरकारी योजना के इन अति न्याययुक्त तथा बहुत सोच-विचार कर किये हुए प्रस्तावों को देखते हुए मेरे लिए आपके निश्चय का कोई समुचित कारण देख सकना सर्वथा असम्भव हो गया है और मैं केवल यही सोच सकता हूँ कि वस्तुस्थिति के समझने में भ्रम हो जाने के कारण आपने ऐसा निश्चय किया है।

निर्णय नहीं बदल सकता

जब आपस में समझौता न कर सकने पर भारतीयों ने आम तौर से सरकार से अपील की तब कहीं उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर अपना फैसला सुनाना स्वीकार किया। अब वह उसे सुना चुकी है और अब जो शर्तें उसमें रक्खी गई हैं उनके सिवा और किसी तरह वह बदला नहीं जा सकता। अतः मुझे खेद के साथ आपसे यही कहना पड़ रहा है कि सरकार का निश्चय कायम है और केवल विभिन्न सम्प्रदायों का आपस का समझौता ही उस निर्वाचन व्यवस्था के बदले स्वीकार किया जा सकता है कि जिसे सरकार ने परस्पर विरोधी दावों का सामञ्जस्य करने की सच्ची नीयत से तजवीज किया है।

पत्र-व्यवहार के प्रकाशन की अनुमति

अपका अनुरोध है कि यह पत्र-व्यवहार मय आपके उस पत्र के जो ११ मार्च को आपने सर सेमुएल होर को लिखा था, प्रकाशित कर दिया जाय। चूँकि मुझे यह उचित नहीं जान पड़ता कि नजरबन्द होने के कारण आप जनता के सामने अपने अन-शन के निश्चय के कारणों को रखने से वंचित रहें, इसलिए यदि आपने अपने इस अनुरोध को दुहराया तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लूँगा। फिर भी मैं एक बार आपसे और साग्रह अनुरोध करना चाहता हूँ कि आप सरकारी निर्णय की तफ़सीलों पर विचार करें—और अपने विवेक से गंभीर भाव से प्रश्न करें कि आपने जो करने का विचार किया है क्या वह सचमुच उचित है।

आपका

जे० रैमसे मैकडोनल्ड

[५]

गाँधीजी का प्रधान मन्त्री को उत्तर

महात्मा गाँधी ने यरवडा सेन्ट्रल जेल से ९ सितम्बर १९३२ को प्रधान-मन्त्री को इस आशय की चिट्ठी लिखी—

प्रिय मित्र,

आज तार द्वारा भेजे गये और प्राप्त हुए आपके स्पष्ट और पूर्ण उत्तर के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। तथापि मुझे खेद है कि आपने मेरे निश्चय का ऐसा अर्थ किया जिसका मुझे कभी ध्यान ही न हुआ था। मैं उसी वर्ग की ओर से बोलने का दावा करता हूँ जिनके स्वार्थों की हत्या करने के लिए, आप कहते हैं कि, मैं अनशन करके मर जाना चाहता हूँ। मुझे आशा थी कि इस आखिरी उपाय के कारण कोई ऐसा स्वार्थपूर्ण अर्थ न करेगा। कुछ अनुरोध किये बिना मैं फिर कहता हूँ कि मेरे लिए यह विषय शुद्ध धार्मिक विषय है। केवल यही बात कि 'दलित' वर्गों को द्विविध मत मिले हैं, उन्हें या सामान्य हिन्दू समाज को विच्छिन्न होने से नहीं रोकती। 'दलित' वर्गों के लिए पृथक् निर्वाचन की स्थापना मात्र में मुझे उस विष के इंजेक्शन की गंध मिलती है जिससे हिंदुत्व नष्ट हो सकता है और 'दलित' वर्गों को कुछ लाभ नहीं मिल सकता। कृपा कर मुझे यह कहने दीजिए कि आप कितनी ही सहानुभूति क्यों न रखते हों, आप ऐसे विषय में ठीक-

ठीक निश्चय पर नहीं पहुँच सकते जो हिन्दू और अछूत दोनों के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है और धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्व रखता है। मैं 'दलित' वर्गों के आवश्यकता से भी अधिक प्रतिनिधित्व का विरोध न करूँगा। मैं इसी बात के विरुद्ध हूँ कि वे क़ानून बनाकर हिन्दू-समाज से पृथक् कर दिये जायँ (फिर यह पार्थक्य कितना ही सीमित क्यों न हो) जब तक वे इस समाज के अन्दर रहना चाहते हैं। क्या आप जानते हैं कि यदि आपका निश्चय बना रहा और शासन-विधि काम में आ जाय तो आप हिंदू सुधारकों के, जिन्होंने अपने आपको जीवन की हर दिशा में अपने दलित भाइयों का उद्धार करने के लिए समर्पण कर दिया है, कार्य की आश्चर्यजनक उन्नति को रोक देंगे।

मेरा निश्चय क़ायम

इसलिए मुझे खेदपूर्वक अपने पूर्व निश्चय पर क़ायम रहने को लाचार होना पड़ता है।

आपकी चिट्ठी से भ्रम उत्पन्न हो सकता है इसलिए मैं कह देना चाहता हूँ कि आपके निर्णय के अन्य अंशों से मैंने 'दलित' वर्गों के प्रश्न को अलग कर उसपर ख़ास तौर से जो विचार किया है उसका यह अर्थ नहीं होता कि मैं आपके निर्णय के अन्य अंशों से सहमत हूँ। मेरी राय में उसके अन्य कई अंश बहुत ही आपत्तिजनक हैं। पर मैं उन्हें ऐसा नहीं समझता जो मुझे इतना आत्म-विनाश करने की प्रेरणा करें जितना मेरे विवेक ने 'दलित' वर्गों के सम्बन्ध में मुझे प्रेरणा की है।

आपका विश्वसनीय मित्र—

एम० के गाँधी

[६]

बम्बई सरकार को गाँधीजी का पत्र

महात्मा गाँधी ने १५ सितम्बर को अनशन के निश्चय के सम्बन्ध में बम्बई सरकार के पास अपना जो वक्तव्य भेजा था उसका आशय इस प्रकार है—

मेरे अनशन का निश्चय ईश्वर के नाम पर, और जैसा कि मैं नम्रता के साथ विश्वास करता हूँ, उसके आदेश पर भी किया गया है। मित्रों का आग्रह है कि मैं उसे कुछ दिनों के लिए टाल दूँ, जिसमें जनता को अपना संघटन कर लेने का समय मिल जाय। मुझे खेद से कहना पड़ता है कि अब उसके दिन को कौन कहे, घंटे को बदलना भी मेरे बस की बात नहीं है। प्रधानमन्त्री के पत्र में जो बातें मैं लिख चुका हूँ उनके अतिरिक्त और किसी भी कारण से मेरा उपवास टल नहीं सकता।

किसके खिलाफ़ और किसके वास्ते ?

मेरा भावी अनशन उन लोगों के विरुद्ध है जो मुझमें विश्वास रखते हैं—चाहे वे भारतीय हों या यूरोपियन और उनके वास्ते है जो मुझमें विश्वास नहीं रखते। इसलिए वह अंग्रेज अधिकारी-वर्ग के विरुद्ध नहीं है, पर उन अंग्रेज स्त्री-पुरुषों के विरुद्ध है जो

अधिकारी वर्ग के विरुद्ध उपदेशों को अनसुना करके भी मुझ में विश्वास रखते हैं और मेरे पक्ष को न्याय-संगत मानते हैं। वह मेरे उन देशवासियों के भी विरुद्ध नहीं है जो मुझमें विश्वास नहीं रखते, चाहे वे हिन्दू हों या और कोई, किंतु वह उन अगणित देशवासियों के विरुद्ध है—चाहे वे किसी भी दल और विचार के क्यों न हों—जिनका विश्वास है कि मेरा पक्ष न्याय का पक्ष है। सर्वोपरि, हिंदू-समाज की अन्तरात्मा को सच्चे धर्म के पालने के लिए प्रेरित करना उसका उद्देश्य है।

केवल भावोद्दीपन मेरे संकल्पित उपवास का उद्देश्य न होगा। मैं अपना सारा वजन—जो कुछ भी वह है—न्याय, शुद्ध न्याय के पलड़े पर धर देना चाहता हूँ। अतः मेरी प्राण-रक्षा के लिए अनुचित उतावली और परेशानी न होनी चाहिए। इस वचन में मेरा अटल विश्वास है कि उसकी (भगवान की) मरजी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। उसे इस देह से कुछ काम लेना होगा तो वह उसे बचावेगा। उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी उसे बचा नहीं सकता। मनुष्य की दृष्टि से मैं कह सकता हूँ कि मेरा विश्वास है कि कुछ दिन तक वह बिना अन्न के जी सकती है।

मन नहीं बदला तो मुझे मरने दो

पृथक् निर्वाचन मेरे निश्चय के लिए एक निमित्त मात्र था। वर्णाश्रमी हिन्दू नेताओं और दलित नेताओं के काम चलाऊ समझौते से काम न चलेगा। यदि हिन्दू जनता का सामुदायिक अंतःकरण अस्पृश्यता को जड़मूल से उखाड़ फेंकने को अभी

तैयार नहीं हुआ है तो मेरा बलिदान कर देने में तनिक भी आगा पीछा न करना चाहिए।

जो लोग संयुक्त-निर्वाचन के विरोधी हैं उनपर तनिक भो दबाव न डालना चाहिए। उनके तीव्र विरोध को मैं सहज ही समझ सकता हूँ। मेरा अविश्वास करने का उन्हें पूरा अधिकार है। क्या मैं उसी हिन्दू वर्ग का नहीं हूँ—जो भ्रमवश उच्च वर्ग अथवा सवर्ण वर्ग कहा जाता है—जो इतना सब हो जाने पर समाज के अन्दर बना हुआ है ?

अम्बेडकर-पंथियों की भूल

पर उनके विरोध को सकारण मानते हुए भी मैं मानता हूँ कि वे भूल कर रहे हैं। वे दलित जातियों को हिन्दू समाज से काट कर सर्वथा अलग कर ले सकते हैं और उनका पृथक् वर्ग बना सकते हैं। यद्यपि यह हिन्दू-धर्म के लिए एक चिरस्थायी जीवित कलंक रूप होगा, पर मुझे इसकी परवा न होगी, बशर्ते कि इससे अछूतों का सच्चा हित होता हो। पर मैंने अछूतों के सभी श्रेणियों का बहुत निकट से परिचय प्राप्त किया है और इस जानकारी के कारण मुझे निश्चय हो गया है कि उनका जोवन सवर्ण हिंदुओं के, जिनके बीच वे रहते और जिन पर उनका जीवन अवलंबित है—जोवन से इस प्रकार मिला-जुला है कि उन्हें अलग करना असंभव है। दोनों वर्ग एक ही कुटुम्ब के व्यक्ति हैं। अछूत यदि हिंदुओं के साथ विद्रोह करने और हिंदू-धर्म को सदा के लिए नमस्कार कर देने को तैयार हो जायँ तो मुझे इस पर आश्चर्य न होगा। पर जहाँ तक मैं समझ सकता

हूँ, वे ऐसा न करेंगे। हिन्दू-धर्म में कोई ऐसी अनिर्वचनीय सूक्ष्म वस्तु है जो उनको इच्छा के विरुद्ध भी उन्हें उससे अलग नहीं होने देती। और इस कारण मेरे-जैसे व्यक्ति के लिए, जिसे उनका वास्तविक अनुभव है, यह अनिवार्य हो जाता है कि वह अपने प्राण देकर भी अछूतों के प्रस्तावित पृथक्करण का विरोध करें।

हिंदू सुधारकों का कर्तव्य

इस विरोध का अर्थ बड़ा गम्भीर है। जिस समझौते से दलित वर्ग को हिंदू-समाज के घेरे के अंदर पूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिलती वह कदापि इस योग्य न होगा कि प्रस्तावित पृथक्करण के बदले स्वीकार किया जा सके। अपने ऊपर लिये हुए कर्तव्य के संबन्ध में तनिक भी चालाकी या झुठाई से काम लिया गया तो इसका नतीजा केवल यही होगा कि मेरा प्राणत्याग कुछ दिनों के लिए टल-भर जायगा, और इसके बाद उन लोगों के विषय में भी यही बात होगी जो इस विषय में मेरे ही जैसा विचार रखते हैं।

इसके बाद उत्तरदायी हिन्दू नेताओं को इस बात पर विचार करना होगा कि यदि सामाजिक, नागरिक और राजनीतिक क्षेत्रों में दलित वर्ग पर आज-के-से अत्याचार होते ही रहे तो क्या वे मेरे जैसे एक सुधारक का नहीं, बल्कि सुधारकों की एक वर्द्धमान सेना के चिर अनशनरूपी सत्याग्रह का सामना करने को तैयार होंगे? मेरा विश्वास है कि आज भारत में ऐसे सुधारक काफ़ी संख्या में मौजूद हैं, जो दलित जातियों के उद्धार और उसके द्वारा हिन्दू धर्म को उसके युगयुगांतर के एक अंधविश्वास से मुक्त करने के प्रयत्न में अपने प्राणों को तुच्छ समझें।

मेरे साथ काम करनेवाले सुधारक भाइयों को भी इस उप-वास का अर्थ भलीभाँति समझ लेना चाहिए। यह या तो भ्रांति है, तो मुझे अवश्य चुपचाप उसका प्रायश्चित्त करने देना चाहिए और ईश्वरीय प्रेरणा है तो यह हिन्दू धर्म की छाती पर से एक भारी चट्टान को हटा देगा। ईश्वर करे, मेरी यंत्रणा हिन्दू धर्म के अंतःकरण को शुद्ध कर दे और उनके हृदयों को द्रवित भी कर सके जिनकी प्रवृत्ति तत्काल मुझे कष्ट पहुँचाने की हो रही है।

अनशन तोड़ने की शर्त

मेरे उपवास के मुख्य हेतु के विषय में कुछ भ्रम मालूम होता हो इसलिए मैं फिर यह बता देना चाहता हूँ कि उसका उद्देश्य दलितवर्ग के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था का—चाहे वह किसी भी प्रकार की क्यों न हो—विरोध करना है। ज्यों ही यह धमकी वापस ले ली गई मेरा अनशन समाप्त हो जायगा। स्थान-संरक्षण के खिलाफ मेरे पास जबर्दस्त दलीलें हैं और इस समस्या को हल करने का सर्वोत्तम प्रकार क्या होगा, इस विषय में भी मेरे निश्चित विचार हैं। पर एक क़ैदी की हैसियत से मैं अपने प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए अपने आपको अधिकारी नहीं समझता। तथापि संयुक्त निर्वाचन के आधार पर सवर्ण हिन्दुओं और दलितवर्ग के जिम्मेदार नेताओं के बीच कोई सम-झौता हो, और वह सब प्रकार के हिन्दुओं की बड़ी-बड़ी सार्व-जनिक सभाओं में स्वीकृत हो जाय, मैं उसे मान लूँगा।

एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। यदि दलित वर्ग के प्रश्न का संतोषजनक निपटारा हो जाय तो इसका यह मतलब

नहीं लगाना चाहिए कि सांप्रदायिक प्रश्न के अन्य भागों के सम्बन्ध में सरकार ने जो निर्णय दिया है उसे मानने के लिए मैं बाध्य हूँ। मैं स्वयं उसके और भी अनेक अंशों का विरोधी हूँ, जिनके कारण मेरी समझ में कोई भी स्वतन्त्र एवं लोकतन्त्र शासन-प्रणाली के अनुसार कार्य करना प्रायः असम्भव है। इस प्रश्न का निर्णय संतोष-जनक रूप से हो जाने का यह मतलब भी नहीं निकालना चाहिए कि जो शासन-विधान तैयार होगा, उसे मान लेना ही मेरे लिए लाजिमी होगा। ये ऐसे राजनीतिक सवाल हैं जिन पर विचार करना और जिनके सम्बन्ध में अपना निर्णय देना भारतीय कांग्रेस का ही काम है। वे व्यक्तिगत रूप से मेरे विचार-क्षेत्र से बिलकुल बाहर हैं। फिर इन प्रश्नों के सम्बन्ध में तो मैं अपनी निजी राय भी प्रकट नहीं कर सकता, क्योंकि मैं तो इस समय सरकार का क़ैदी हूँ। मेरे अनशन का सम्बन्ध एक निर्दिष्ट, एक संकुचित क्षेत्र से ही है। दलित वर्गों का प्रश्न प्रधानतया एक धार्मिक प्रश्न है, और उसके साथ मैं अपने को विशेष रूप से सम्बद्ध समझता हूँ, क्योंकि मैं अपने जीवन में हमेशा ही उसपर विचार करता रहा हूँ। मैं उसे अपने लिए एक ऐसी पवित्र धरोहर समझता हूँ जिससे मैं दूर नहीं भाग सकता।

"मेरा अनुसरण मत कीजिए"

ज्ञान-प्राप्ति और तपस्या के लिए उपवास एक बहुत पुरानी प्रथा है। मैंने ईसाई धर्म तथा इस्लाम में भी इसका उल्लेख देखा है। हिन्दूधर्म में तो आत्मशुद्धि एवं तपस्या के उद्देश्य से किये

गये उपवास के उदाहरण भरे पड़े हैं। किन्तु यह एक विशेष एवं उच्च उद्देश्य के साथ-साथ धर्म समझकर ही किया जाना चाहिए। फिर मैंने तो अपने लिए यथाशक्ति इसे वैज्ञानिक रूप दे डाला है। अतः इस विषय का विशेषज्ञ होने के नाते मैं अपने मित्रों और सहानुभूति प्रदर्शित करनेवालों को सचेत कर देना चाहता हूँ कि आप लोग बिना सोचे-समझे अथवा सहानुभूति के क्षणिक उन्माद में पड़कर मेरा अनुकरण न करें। जो लोग ऐसा करने के लिए इच्छुक हों, उन्हें कठिन परिश्रम और अछूतों की निःस्वार्थ सेवा द्वारा अपने को उसके योग्य बना लेना चाहिए, तब यदि उचित समय आने पर वे उपवास करेंगे तो उनके हृदय में भी स्वतन्त्र रूप से प्रकाश का आविर्भाव हो सकता है।

अन्त में मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि यह उपवास मैं पवित्र-से-पवित्र उद्देश्यों से प्रेरित होकर ही कर रहा हूँ, किसी भी व्यक्ति के प्रति क्रोध या द्वेष की भावना से प्रेरित होकर नहीं। मेरे लिए तो यह अहिंसा का ही एक रूप और उसका अन्तिम प्रयोग है। अतः यह स्पष्ट है कि जो लोग उन लोगों के प्रति वादविवाद में किसी तरह का द्वेषभाव या हिंसा प्रदर्शित करेंगे, जिन्हें वे मेरे प्रतिकूल या मैं जिस उद्देश्य की सिद्धि के लिए यत्न करता हूँ उसके विरुद्ध समझते हों, तो इस कार्य द्वारा वे मेरी मृत्यु का आवाहन और भी शीघ्रतापूर्वक करेंगे। सब उद्देश्यों की नहीं तो कम-से-कम इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए तो यह परमावश्यक है कि अपने विरोधियों के साथ पूर्ण सौजन्य का व्यवहार किया जाय और उनके भावों के प्रति आदर दिखाया जाय।

मो० क० गांधी

परिशिष्ट ३

जन्म से स्पृश्य; स्वेच्छा से अस्पृश्य

[करीब १० महीने पहले यरवदा जेल में प्रवेश करने के बाद आज शाम को महात्मा गाँधी की पत्र-प्रतिनिधि से पहले ही पहल बात-चीत हुई। उस समय आपने कहा कि मैं जन्मतः स्पृश्य पर स्वेच्छा से अस्पृश्य हूँ। यह बात-चीत नीचे के एक कमरे में हुई। अस्त होनेवाले सूर्य की किरणें खिड़की से आकर कमरे को प्रकाशित कर रही थीं। ये किरणें गाँधीजी के सिर, चश्मे और चाँदी की घड़ी के साथ क्रीड़ा करती हुई उनके अपने हाथ से कती हुई सुन्दर खादी की धोती पर विश्राम कर रही थीं। महात्माजी हमेशा की तरह धीरे और शांत स्वर में बातें कर रहे थे। कभी-कभी जब आप अपने निश्चय का आध्यात्मिक कारण बताने लगते तब आपका स्वर अधिक गम्भीर हो जाता। उनके प्रगाढ़ गांभीर्य में कभी-कभी विनोद का पुट भी रहता था। आपने एक बार कहा कि मैं जेल के रसोईघर का सुपरिंटेंडेण्ट बनाया गया हूँ। बातचीत के समय जेल-सुपरिंटेण्डेण्ट मेजर भंडारी उपस्थित थे।]

भजनरूप भोजन

महात्माजी ने कहा कि "अनशन १२ बजे दिन को शुरू हुआ। उस समय श्री अब्बासतय्यबजी की कन्या कुमारी रेहाना तय्यबजी का हिन्दी भजन गाया गया। उस भजन के पहले चरण का आशय यह है—'ऐ मुसाफ़िर उठ, शय्या का त्याग कर क्योंकि सवेरा हो गया है।' मेरी लम्बी कष्ट-दायक अनशन-यात्रा में यह भजन भोजन का काम देगा।"

जिस समय अनशन शुरू हुआ उस समय सरदार वल्लभभाई और श्री महादेव देसाई उपस्थित थे। दोनों दो दिन-तक अनशन में गाँधीजी का साथ देंगे। आज महात्माजी ने आख़िरी बार ११॥ बजे भोजन किया। भोजन में केवल गरम पानी, सोडा, शहद

और दो मीठे नीबू थे। वे बिल्कुल तन्दुरुस्त हैं और उनका वजन १०३ पौंड था यानी पिछले हफ्ते से १ पौंड अधिक था।

बातचीत में गाँधीजी ने अनशन के नैतिक और आध्यात्मिक रूप पर जोर दिया, ईसा और मुहम्मद के उदाहरणों की चर्चा की और कहा कि मैं बहुत ही तुच्छ और छोटे पैमाने पर उनका अनुकरण कर रहा हूँ जिसमें ईश्वर के साथ लड़ाई ठान सकूँ।

पत्र-प्रतिनिधियों का बड़े ही प्रेम से स्वागत करने के बाद गाँधीजी ने अपने स्वभाव के अनुसार तुरन्त ही वह प्रश्न छेड़ दिया जो उनके लिए सब से प्रमुख था। उनसे पहले कुछ प्रश्न इस सम्बन्ध में किये गये कि अनशन-काल में उनका दैनिक कार्यक्रम क्या रहेगा। इसके बाद उनसे पूछा गया कि डाक्टर अम्बेडकर की इस माँग पर आपका क्या मत है कि पहले आपको अपनी स्थिति विस्तार के साथ बतानी और शर्तें प्रकट करनी चाहिए।

गाँधीजी ने कहा कि मेरी सब बातें सदा ही प्रकट रही हैं। जहाँ तक इस मामले से सम्बन्ध है, मैं जेल के सीखचों के अन्दर से कुछ नहीं कह सकता। पर अब मुझे मौक़ा मिल गया है जो मुझे कुछ ही घण्टे पहले दिया गया, इसलिए मैंने पत्र-प्रतिनिधियों से पहली बार मुलाक़ात की।

स्थान सुरक्षित रखने का प्रश्न

"१५ तारीख़ को सरकार के पास मैंने जो वक्तव्य भेजा था वह यदि शीघ्र अखबारों में प्रकाशित किया जाता तो उससे मेरे निश्चय पर प्रकाश पड़ जाता। सारांश में, निश्चय यह है कि मेरा अनशन केवल पृथक् निर्वाचन के विरुद्ध है, कानून-द्वारा स्थान

सुरक्षित करने के विरुद्ध नहीं। यह कहना कि दलित वर्ग के लिए क़ानून द्वारा स्थान सुरक्षित रखने के मेरे कट्टर विरोध से मेरे पक्ष को हानि पहुँचती है, केवल अंशरूप में सत्य है। क़ानून द्वारा स्थान सुरक्षित रखने का मैं वस्तुतः विरोधी था—अब मैं विरोधी नहीं हूँ, पर क़ानून द्वारा स्थान सुरक्षित रखने की योजना मेरी स्वीकृति या अस्वीकृति के लिए मेरे सामने कभी रखी ही नहीं गई। इसलिए इस विषय पर मेरे कुछ निश्चय करने का प्रश्न ही न था। क़ानून द्वारा स्थान सुरक्षित रखने के प्रश्न पर जब मैंने अपने मत पर और विचार किया, तब अवश्य ही मैंने उसका जोरदार शब्दों में विरोध किया। मेरा नम्र मत है कि स्थान सुरक्षित रखने से दलित वर्ग का हित होने की अपेक्षा उनकी इस अर्थ में हानि होगी कि इससे उनकी राष्ट्रीय उत्क्रांति बन्द हो जायगी। क़ानून द्वारा स्थान सुरक्षित करना एक प्रकार का सहारा है और जो आदमी किसी सहारे पर निर्भर करता है वह अपने आपको उतने ही हद तक कमजोर बना लेता है।"

जन्मतः स्पृश्य पर स्वेच्छा से अस्पृश्य

"यदि लोग मेरी हँसी न उड़ावेंगे तो मैं नम्रतापूर्वक अपना दावा पेश करूँगा जो मैं हमेशा ही कहता रहा हूँ। वह दावा यह है कि मैं जन्मतः स्पृश्य हूँ पर स्वेच्छा से अस्पृश्य हूँ और मैंने अपने ढंग से अछूतों का—उनकी ऊँची जातियों का ही नहीं क्योंकि मैं कह देना चाहता हूँ कि यह हमारे लिए शर्म की बात है कि अछूतों में भी छोटी-बड़ी जातियां और श्रेणियाँ हैं—प्रतिनिधि बनने के लिए गुण प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। इसलिए मेरी महत्वाकांक्षा यह रही है कि जहाँ तक संभव हो मैं अछूतों

को सब से नीच श्रेणी का—जैसे वह श्रेणी जिस पर नजर पड़ने से या जिसके पास पहुँचने से ही अपवित्रता हो जाती है—प्रतिनिधि बनूँ और अपने आपको उनके साथ मिला दूँ। जहाँ कही मैं जाता हूँ, मेरे मन में उनका विचार हमेशा बना रहता है क्योंकि यह विष-प्याला मैं भर पेट पी चुका हूँ। मैंने इन्हें मलाबार में देखा, कुछ से उड़ीसा में भेंट हुई और मुझे विश्वास है कि उनकी उन्नति स्थान-संरक्षण से न होगी, उनकी उन्नति उन्हीं के बीच रह कर हिन्दू-सुधारकों के कठिन परिश्रम से होगी। मैं समझता हूँ कि इस पृथक्करण से सुधार की सब आशायें मर जातीं, इसीलिए मेरी संपूर्ण आत्मा ने इसके विरुद्ध बलवा किया।"

"मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि पृथक् निर्वाचन उठा लेने से मेरी प्रतिज्ञा का शब्दशः पालन तो हो जायगा पर उसके भाव की रक्षा कदापि न होगी और स्वेच्छा से बने हुए एक अस्पृश्य के नाते मैं स्पृश्य और अस्पृश्य में किसी तरह किये गये समझौते से संन्तुष्ट न हो जाऊँगा। अस्पृश्यता का जड़-मूल से नाश यही मैं चाहता हूँ, इसी के लिए मैं जीवित हूँ और इसी के लिए मरने में मुझे आनन्द होगा। इसलिए मैं 'सच्चा समझौता' चाहता हूँ जिसकी जीवन-दायिनी शक्ति सुदूर भविष्य में नहीं, आज दिखाई देगी और इसलिए इस समझौते पर स्पृश्यों के भारत-व्यापी प्रदर्शन की मुहर लगनी चाहिए जिसमें वे दिखाऊ अभिनय करके एक दूसरे से न मिलें, पर सच्चे बन्धु-भाव से आलिंगन करें। अपने विगत ५० साल के जीवन के इस स्वप्न को सत्य-सृष्टि में देखने के लिए ही मैंने अग्नि-द्वार में प्रवेश किया है। ब्रिटिश सरकार का निश्चय तो निमित्त-मात्र था, एक निश्चित निदान पर

पहुँचा देनेवाला लक्षण। और चूँकि मेरा दावा है कि इन मामलों में मेरा निदान एक कुशल वैद्य की भांति अचूक होता है, मैंने रोग के लक्षण को पहचान लिया और इसलिए पृथक् निर्वाचन उठा लेना मेरे लिए मेरे कार्य का आरंभ मात्र होगा और मैं उन सब नेताओं को सावधान कर देता हूँ जो एकत्र हुए हैं कि जल्दी में आकर कोई निश्चय न करें। मुझे अपने प्राणों की कुछ परवा नहीं। इस महान कार्य के लिए ऐसे सैकड़ों आदमियों के प्राण-त्याग से, मेरी राय में, उस पाशविकता का एक तुच्छ प्रायश्चित्त होगा जो हिन्दुओं ने अपने ही धर्म के निरीह स्त्री-पुरुषों पर किया है। इसलिए मैं उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे कठोर न्याय-पथ से एक इंच भी अलग न हों।"

केवल धार्मिक और नैतिक प्रश्न

"मैं अपने अनशन को न्याय की तराज़ू पर तब तक तौलना चाहता हूँ जब तक वर्णाश्रमी हिन्दू जाग नहीं पड़ते। राजनीति से इसका किसी भी रूप में संबंध नहीं। मैं यह नहीं कहता कि इसका कोई राजनीतिक फल ही न दिखाई देगा, पर मूल प्रश्न धार्मिक और नैतिक स्वरूप का है। मैंने यहाँ धर्म का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है क्योंकि मैं समझता हूँ कि अस्पृश्यता पर आक्रमण करके मैं प्रश्न की तह तक पहुँच गया हूँ और इसलिए इस प्रश्न का अलौकिक महत्व है—राजनीतिक शासन-प्रणाली के अर्थ में स्वराज्य से भी बहुत अधिक महत्व का है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि ऐसी शासन-प्रणाली भारी बोझ-स्वरूप होगी यदि उसको नैतिक आधार न मिलेगा जो करोड़ों दलितों के हृदय में इस आशा के रूप में उत्पन्न हुआ है कि उनके सर से यह

भारी बोझ उठाया जा रहा है। और चूँकि अंग्रेज अफसर चित्र के इस जीवित अंश को देख नहीं सकते, वे अपने अज्ञान और आत्म-सन्तोष के कारण ऐसे प्रश्नों का फैसला करने का साहस करते हैं जिसका सम्बन्ध करोड़ों लोगों के जीवन-मरण से है। यहां मेरा मतलब वर्णाश्रमी हिन्दुओं और अछूतों, दलन करने वालों और दलितों दोनों से है। नौकरशाही को भी उसके इस प्रगाढ़ अज्ञान से जागृत करने के लिए—आशा है कि इन शब्दों से किसी को दुःख देने का अपराधी मैं न होऊँगा—मेरी अन्तरात्मा ने मुझे प्राणपण से विरोध करने के लिए लाचार किया।"

गांधीजी ने सहानुभूति में दूसरों के अनशन करने की निन्दा की। क्योंकि, गांधीजी ने कहा, मेरा दृढ़ विश्वास है कि मैंने यह अनशन ईश्वर की आज्ञा के अनुसार किया है। इसलिए जबतक उस आदमी की अन्तरात्मा इसी तरह का निश्चित आदेश नहीं देती तबतक अनशन करने का उसे कुछ अधिकार नहीं। आत्मशुद्धि के लिए या किसी पक्ष के साथ अपनी एकता प्रकट करने के लिए एक दिन अनशन करना सदा ही अच्छा कार्य है। पर मुझे लोगों के अनेक तार मिले हैं जिनमें मुझे बताया गया है कि वे तबतक अनशन करना चाहते हैं जब तक सम्राट की सरकार यह निश्चय बदल नहीं देती। मुझे विश्वास है कि यदि कोई इस प्रकार अनशन करेगा तो वह लोगों के सामने खराब उदाहरण रखेगा और इससे न उसे ही लाभ होगा, न किसी दूसरे को तथा बहुत संभव है कि इससे उसे आध्यात्मिक हानि हो।

परिशिष्ट ४

दलित वर्ग के प्रतिनिधित्व की विभिन्न योजनाएँ

दलित वर्ग के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में अबतक बनी विभिन्न योजनाओं में इस वर्ग को प्रान्तीय कौंसिलों में कितनी जगहें देने की सिफ़ारिश की गई है यह नीचे लिखे नक़्शे से मालूम हो जायगा।

प्रांत	कुल सदस्यों की संख्या	इण्डियन सेंट्रल कमेटी	साइमन कमीशन	गोलमेज का अल्पसंख्यकों का समझौता	ब्रिटिश सरकार का निर्णय	राजा-मुंजे समझौता	पूना पक्ट में
मद्रास	२१५	२०	२४	४३	१८	३२	३०
बम्बई	२००	१४	१२	२८	१०	१६	१५
बंगाल	२५०	१०	४५	४४	१०	६१	३०
संयुक्तप्रान्त	२२८	१२	४३	४५	१२	५७	२०
पंजाब	१२५	७	१३	१७	०	२३	८
बिहार उड़ीसा	१७५	७	१८	२४	७	२४	१८
मध्यप्रान्त	११२	७	११	२२	१०	२६	२०
आसाम	१०८	१३	११	१४	४	१४	७
कुल	१४१३	९०	१७७	२३७	७१	२५३	१४८

परिशिष्ट ५

पूना का समझौता

कौंसिलों में दलित वर्ग के प्रतिनिधित्व तथा उनके हित से सम्बन्ध रखने वाले कुछ दूसरे मामलों में दलित वर्ग और शेष हिन्दू संप्रदाय के नेताओं के बीच नीचे लिखी शर्तों पर पूना समझौता हुआ—

(१) प्रांतीय कौंसिलों में साधारण जगह में से नीचे लिखे अनुसार जगहें दलित वर्गों के लिए सुरक्षित रहेंगी—

मद्रास	३०
बंबई और सिंध	१५
पंजाब	८
बिहार उड़ीसा	१८
मध्यप्रांत	२०
आसाम	७
बंगाल	३०
संयुक्तप्रांत	२०
कुल	१४८

प्रधान मंत्री के निर्णय में प्रांतीय कौंसिलों के लिए निर्धारित सदस्य-संख्याओं के आधार पर ये संख्याएँ रखी गई हैं।

(२) इन स्थानों के लिए निर्वाचन संयुक्त होगा पर निर्वाचन-प्रणाली नीचे लिखे अनुसार होगी—

निर्वाचन-क्षेत्र की साधारण निर्वाचक-सूची में दलित वर्ग के जितने निर्वाचक रहेंगे उनका एक निर्वाचक-संघ होगा जो दलित वर्ग के सुरक्षित प्रत्येक स्थान के लिए दलित वर्ग में से ४ प्रतिनिधि चुनेगा—संघ के प्रत्येक सदस्य को एक ही वोट देने का अधिकार होगा और जिन चार उम्मेदवारों को सब से अधिक मत मिलेंगे वे ही दलित वर्ग के चार प्रतिनिधि होंगे—और इस प्रारम्भिक चुनाव के चार प्रतिनिधि साधारण चुनाव के चार उम्मेदवार होंगे जिनमें से एक संयुक्त निर्वाचन द्वारा दलित वर्ग का प्रतिनिधि चुना जायगा।

(३) केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल में भी दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व संयुक्त निर्वाचन के सिद्धांत पर स्थित होगा। यहाँ भी इस वर्ग को सुरक्षित स्थान मिलेंगे और निर्वाचन-प्रणाली वैसी ही होगी जैसी प्रान्तीय कौंसिलों के लिए।

(४) केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल में ब्रिटिश भारत के लिए निर्धारित साधारण स्थानों में से १८ प्रतिशत स्थान दलित वर्ग के लिए सुरक्षित रहेंगे।

(५) केंद्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के लिए ४ उम्मेदवार चुनने को पूर्वकथित प्रारम्भिक निर्वाचन प्रणाली दस वर्ष बाद उठ जायगी, यदि वह नीचे लिखी शर्त (६) के अनुसार आपस के समझौते से इसके पहिले ही न उठ गई हो।

(६) प्रांतीय और केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं में सुरक्षित स्थानों द्वारा दलित वर्ग के प्रतिनिधित्व की प्रथा तब तक जारी रहेगी जब तक इस समझौते से संबंध रखने वाले सम्प्रदायों के आपस के समझौते से और कोई दूसरा निश्चय न हो।

(७) दलित वर्ग के लिए केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के मताधिकार की योग्यता लोथियन कमेटी की सिफारिश के अनुसार होगी ।

(८) किसी स्थानीय संस्था के निर्वाचन या सरकारी नौकरी पर नियुक्त होने के लिए कोई केवल इसी कारण अयोग्य न समझा जायगा कि वह दलित वर्ग का सदस्य है । इसकी पूरी कोशिश की जायगी कि इस सम्बन्ध में दलित वर्ग को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिले, बशर्ते कि सरकारी नौकरी के लिए निर्धारित योग्यता दलित वर्ग के सदस्य में हो ।

(९) प्रत्येक प्रान्त को शिक्षा के लिए दी जाने वाली आर्थिक सहायता में से यथेष्ट धन दलित वर्ग के सदस्यों को शिक्षा-संबन्धी सुविधाएँ देने के लिए अलग कर दिया जायगा ।

हस्ताक्षर—

मदनमोहन मालवीय	एम पिल्लई,
डाक्टर अम्बेडकर	सी० बी० मेहता
सी. राजगोपालाचार्य	गवई
श्रीनिवासन्	देवधर
तेज बहादुर सप्रू	स० बालू
एम. आर० जयकर	कमोलकर
घनश्यामदास बिडला	राजभोज
एम० सी० राजा	ए० वी० ठक्कर

राजेन्द्रप्रसाद तथा अन्य नेतागण

उपवास-समाप्ति पर गाँधीजी का वक्तव्य

महात्मा गाँधी ने उपवास समाप्ति पर इस आशय का वक्तव्य प्रकाशित कराया —

अनशन-व्रत ईश्वर का नाम लेकर शुरू किया था और उसी का नाम लेकर गुरुदेव (श्री रवीन्द्रनाथठाकुर) और परचुरे शास्त्री नाम के एक कैदी विद्वान् पंडित की उपस्थिति में जो एक दूसरे के सामने बैठे थे तथा मेरे चारों तरफ एकत्र प्रियजनों के समक्ष खतम किया गया। पहिले कविवर ने अपना एक बंगला गीत गाया। फिर परचुरे शास्त्री ने उपनिषद् से मंत्र पढ़ा। बाद मेरा प्रिय गीत 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये जे पीर पराई जाणे रे' गाया गया।

पिछले सात दिनों के अन्दर भारत-भर में जो भव्य प्रदर्शन हुए उनमें ईश्वर का हाथ स्पष्ट दिखाई देता है। अनशन की सफ़लता की कामना करते हुए दुनिया के कितने ही स्थानों से मुझे जो तार मिले उन्होंने मुझे तब शक्ति दी जब मेरा शरीर, मन और आत्मा कष्ट पा रहा था जिसका मुझे इन सात दिनों में अनुभव हुआ। पर यह कार्य यह कष्ट उठाने योग्य ही था। एक बार यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित होने पर तबतक उसे न बुझने देना चाहिए जब तक हिन्दुस्तान में अस्पृश्यता का थोड़ा भी अंश बचा हुआ हो। और यदि ईश्वर की यही इच्छा हो कि मेरे जीवन के साथ इसका अंत न होगा तो मुझे विश्वास है कि ऐसे हज़ारों सच्चे सुधारक हैं जो हिन्दू धर्म से यह भयानक अभिशाप को दूर करने के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर देंगे।

कृतज्ञता-प्रकाश

चारों तरफ दृष्टिपात करने पर जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, इस समझौते से परस्पर हृदयों का मेल हुआ है और एक हिन्दू की हैसियत से मैं एक ओर डाक्टर अम्बेडकर, श्री श्रीनिवास और उनके दल के प्रति तथा दूसरी ओर श्री राजा के प्रति कृतज्ञ हूँ। सदियों के पाप के लिए तथोक्त वर्णाश्रमी हिन्दुओं को दण्ड देने के बहाने वे हठ और दुराग्रह का भाव दिखा सकते थे। यदि वे ऐसा करते तो कम से कम मैं उनके इस भाव पर रोष न प्रकट कर सकता और ऐसी हालत में मेरी मृत्यु उन यंत्रणाओं के बदले में लिया गया तुच्छ मूल्य होता जो सदियों से अछूतों को उठानी पड़ रही हैं। पर उन्होंने श्रेष्ठ मार्ग ग्रहण किया और दिखा दिया कि उन्होंने सब धर्मों में निहित क्षमा के सिद्धान्त का पालन किया है।

समझौते का भाव

मैं आशा करता हूँ कि सनातनी हिन्दू अपने को इस क्षमा के योग्य साबित करेंगे और समझौते की हर शर्त के शब्दों और भावों के अनुसार कार्य करेंगे। समझौते से तो मुख्य कार्य का आरंभ मात्र होता है। यद्यपि उसका राजनीतिक अंश महत्वपूर्ण है तथापि सुधार के व्यापक क्षेत्र में उसे बहुत कम स्थान मिलता है। भविष्य में सनातनी हिन्दुओं को सुधार का ही कार्य—सामाजिक और धार्मिक बाधाओं को पूर्ण रूप से दूर करना जिसके कारण अधिकांश हिन्दू समाज पीड़ित है—हाथ में लेना होगा। मैं सुधारक भाइयों और सनातनी हिन्दुओं को सावधान कर देता हूँ कि यदि अछूतोद्धार-कार्य तत्परता के साथ निर्धारित समय के अन्दर

न किया गया तो मैंने जो अनशन बंद किया है उसे फिर आरम्भ करने का निश्चित वचन दे दिया है । मैंने समय निर्धारित करने का विचार किया था पर मैं समझता हूँ कि आत्मा की निश्चित प्रेरणा मिले बिना मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए । स्वतंत्रता का संदेश प्रत्येक अछूत के घर तक पहुँचना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब सुधारक प्रत्येक गाँव में जाय । फिर भी उत्साह में आकर और मुझे फिर से अनशन का कष्ट न उठाने देने की तीव्र इच्छा के कारण किसी को बल-प्रयोग न करना चाहिए । हमें धीरज के साथ परिश्रम करके और कष्ट उठाकर अज्ञान और अन्धविश्वासवालों को अपने पक्ष में मिलाना चाहिए ।

अन्य जातियों को सलाह

मेरी यह भी इच्छा है कि जो यह आदर्श समझौता हुआ है उनका अनुसरण अन्य जातियाँ भी करें । इससे नव-युग, परस्पर विश्वास, उदारता और सब जातियों की मौलिक एकता के भाव का उदय होगा ।

यहाँ मैं केवल हिन्दू मुस्लिम और सिख प्रश्न पर कुछ कहता हूँ । मुसलमानों के प्रति मेरा वही भाव है जो १९२०-२२ में था । मैं इस समय भी अपने प्राण देने को तैयार हूँ जैसा मैं दिल्ली में उनमें एकता और स्थायी शांति स्थापित करने के लिए तैयार था । मैं आशा और प्रार्थना करता हूँ कि इस आंदोलन के फलस्वरूप इस दिशा में भी स्वेच्छा से प्रयत्न होगा । फिर निःसन्देह अन्य जातियाँ भी अलग न रह सकेंगी ।

अन्त में सरकार, जेल कर्मचारी और मेरी देख-भाल के लिए नियुक्त डाक्टरों को धन्यवाद देता हूँ । उन्होंने कोई भी बात उठा

न रखो। जेल-कर्मचारियों पर कार्य का भारी बोझ पड़ा औ
मैंने देखा कि उन्हें यह परिश्रम करना नहीं खला। मैं छोटे-ब
सब कर्मचारियों को धन्यवाद देता हूँ।

मेरे प्राण जमानत पर रख लो

समझौते पर शीघ्र निश्चय करने के लिए मैं ब्रिटिश मन्
मण्डल को भी धन्यवाद देता हूँ। इस निश्चय की शर्तें मेरे पा
भेजी गई हैं। मैंने उसे निःशंक होकर हाथ में नहीं उठाया।
समझता हूँ कि उसमें स्वभावतः ही समझौते का वही अंश स्वी
कार किया गया है जिसका सम्बन्ध ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के स
प्रदायिक निर्णय से है। मैं समझता हूँ कि इस समय सम्पू
समझौता स्वीकार करने में उन्हें शासनसम्बन्धी कठिनाइ
मालूम पड़ी होंगी। पर मैं अपने 'हरिजन' मित्रों को—अब
उनको इसी नाम से पुकारना चाहता हूँ—विश्वास दिलाना चाह
हूँ कि जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं सम्पूर्ण समझौते से बंध ग
हूँ और उसकी उचित पूर्ति के लिए वे मेरे प्राणों को तब त
जमानत के तौर पर रख सकते हैं जब तक हम अपनी ही इच्
से कोई दूसरा और अधिक अच्छा समझौता नहीं कर लेते।

महात्माजी के वक्तव्य

[सरकार-द्वारा अस्पृश्यता-निवारण के आंदोलन के सम्बन्ध में भेंट एवं प्रचार की सुविधा प्रदान किये जाने के बाद महात्माजी ने, पूना की जन-सेवक समिति द्वारा, ये वक्तव्य प्रकाशित कराये हैं।]

[१]

कई कारणों से जो मेरे अधिकार के बाहर थे, मैं अनशन तोड़ने के बाद अस्पृश्यता के प्रश्न को उतनी अच्छी तरह न सुलझा सका जितना मेरा विचार था। इस कार्य के संबंध में सार्वजनिक रूप से प्रचार करने की इजाजत अब सरकार ने मुझे दे दी है, अतः मैं अब उन सैकड़ों चिट्ठी-पत्रियों का जवाब दे सकता हूँ जो मुझे यरवदा पैक्ट की टीका के रूप में लिखी गई थीं, या अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन में उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रश्नों पर मेरी राय या सलाह लेने के लिए लिखी गई थीं। इस प्रारंभिक वक्तव्य में मैं केवल मुख्य-मुख्य प्रश्नों पर ही विचार करूँगा।

दूसरे अनशन की सम्भावना

मैं पहले यही प्रश्न उठाता हूँ—फिर अनशन शुरू करने की संभावना है ? मुझे जिन्होंने चिट्ठियाँ लिखीं उनमें से कुछ का कहना है कि अनशन एक प्रकार की जबर्दस्ती है और अनशन करना ही नहीं चाहिए था और इसलिए उसे फिर कभी नहीं रू करना चाहिए। अन्य कुछ लोगों का कहना है कि इस बात

के लिए—मैंने जैसा अनशन किया वैसे अनशन के लिए हिन्दू-धर्म में या किसी भी धर्म में कुछ प्रमाण नहीं। मैं अभी धार्मिक स्वरूप पर विचार नहीं करना चाहता। इतना कहना बस होगा कि ईश्वर के ही आदेश से मैंने अनशन शुरू किया और उसी की आज्ञा मिलने पर वह फिर शुरू किया जायगा। पर जब यह पहली बार शुरू किया गया तब वह निःसंदेह अस्पृश्यता को जड़-मूल से हटा देने के लिए किया था। उसने जो स्वरूप धारण किया वह मेरी इच्छा का फल नहीं था। मंत्रि-मंडल के निश्चय से मेरे जीवन की नाजुक अवस्था शीघ्र निकट आ पहुँची पर मैं जानता था कि मन्त्रिमण्डल का निश्चय बदल देने का कार्य केवल आरंभ मात्र है। केवल राजनीतिक निश्चय को बदलने के लिए विराट शक्ति संचालित नहीं कि जा सकती जब तक उसकी तह में अधिक गम्भीर भाव न हो। जिन लोगों से इसका सम्बन्ध था उन्होंने सहज ही इस भाव को समझ लिया और उसके अनुसार कार्य किया।

मेरे स्मरण में तो शायद ऐसा कोई आदमी नहीं जिसने मेरे समान भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक इतनी बार यात्रा की हो, या इतने गाँवों में गया हो, या जिसका लाखों आदमियों से संबन्ध रहा हो। ये सब मेरा जीवन जानते हैं। इन्होंने सुना है कि मैं स्पृश्यों और अस्पृश्यों में या जाति-जाति में कुछ भेद नहीं जानता। उन्होंने मुझे अकसर उन्हीं की भाषा में बोलते हुए सुना है और इसे हिन्दू धर्म का कलंक—अभिशाप कहते हुए सुना है। मेरे अस्पृश्यता का इस तरह विरोध करने पर भारत भर में हुई सार्वजनिक सभाओं या निजी बैठकों में शायद ही कभी किसी

ने विरोध किया हो। जनता ने अस्पृश्यता की निंदा के प्रस्ताव पास किये हैं और अपने समाज से उसे निकालने की प्रतिज्ञा की है तथा सैकड़ों अवसरों पर लोगों ने अपनी प्रतिज्ञा के लिए ईश्वर को साक्षी रखा और उसका आशीर्वाद माँगा है कि अपने वचन का पालन करने के लिए वह उन्हें शक्ति दे। इन्हीं लाखों आदमियों के विरुद्ध मैंने अनशन किया था और इन्हीं के सहज प्रेम के कारण पाँच ही दिनों में इतना परिवर्तन हो गया और यरवदा पैक्ट तैयार हुआ और इन्हीं लोगों के विरुद्ध फिर अनशन किया जायगा, यदि इस पैक्ट का पूर्ण रूप से पालन न किया गया। अब सरकार का इससे कुछ सम्बन्ध नहीं। उसने अपना उत्तर-दायित्व बड़ी तत्परता से पूर्ण किया। यरवदा पैक्ट के निश्चयों के अधिकतर अंश की पूर्ति इन्हीं लाखों आदमियों को करनी है जो वर्णाश्रमी हिन्दू कहे जाते हैं और जो ऊपर वर्णित सभाओं में भीड़ लगाया करते थे। इन्हीं लोगों को अपने दलित भाई-बहनों को अपनाकर गले लगाना है, अपने मन्दिरों, अपने मकानों और स्कूलों में निमन्त्रण देकर बुलाना है। गाँवों के अस्पृश्यों को यह अनुभव हो जाना चाहिए कि उनकी बेड़ियाँ कट गईं, वे उसी प्रभु के पुजारी हैं जिसे गाँव के दूसरे आदमी पूजते हैं तथा इनको जो अधिकार और सुविधाएँ हैं वे ही उन्हें भी हैं।

शर्तों के पालने के लिए जमानत

पर यदि वर्णाश्रमी हिन्दुओं ने समझौते की इन महत्वपूर्ण शर्त्तों का पालन न किया तो क्या मैं ईश्वर और मनुष्य को अपना मुँह दिखा सकता हूँ? डाक्टर अम्बेडकर, रावबहादुर राजा तथा दलित वर्ग के अन्य मित्रों से मैंने यहाँ तक कह देने का

साहस किया कि समझौते का वर्णाश्रमी हिन्दुओं की ओर से पूर्ण रूप से पालन कराने के लिए आप मुझे जमानत रख लें। यदि अनशन कभी शुरू किया ही गया तो वह उन लोगों पर जबरदस्ती करने के लिए न होगा जो सुधार के विरोधी हैं, पर यह उन लोगों से काम कराने के लिए अंकुश का काम देगा जो मेरे साथी रह चुके हैं या जिन्होंने अस्पृश्यता को हटाने की प्रतिज्ञा की है। यदि वे अपना वचन भंग कर देंगे या अपने वचनों का पालन करने का उनका कभी इरादा ही न था तथा उनका हिन्दू-धर्म निरा ढोंग था, तो मेरे लिए जीवन में कुछ भी आनन्द न रह जायगा। इसलिए मेरे अनशन से उनपर कुछ भी प्रभाव न पड़ना चाहिए जो सुधार के विरोधी हैं, न उन्हीं पर प्रभाव पड़ना चाहिए जो मेरे साथी थे और जिन लाखों लोगों ने मुझे यह विश्वास दिलाया था कि अस्पृश्यता-विरोधी आंदोलन में वे मेरे और कांग्रेस के साथ हैं, पर जिनकी बाद में विचार करने पर यह धारणा हो गई हो कि अस्पृश्यता ईश्वर और मनुष्यता के विरुद्ध कोई अपराध नहीं।

मेरी राय में अपनी और दूसरों की शुद्धि के लिए अनशन करना अति प्राचीन प्रथा है और यह प्रथा तब तक बनी रहेगी जब तक मनुष्य ईश्वर को मानता रहेगा। यह पीड़ित हृदय की सर्वशक्तिमान् प्रभु से प्रार्थना है। मेरा तर्क बुद्धिमत्तापूर्ण हो या मूर्खतापूर्ण पर मैं अपनी स्थिति से तबतक हटाया नहीं जा सकता जब तक मैं इसकी मूर्खता या भूल देख नहीं लेता। यह केवल उसी समय शुरू किया जायगा जब अन्तरात्मा की प्रेरणा होगी और जब यरवदा पैक्ट की शर्तों के पालन में वर्णा-

अभी हिन्दुओं की अपराधयुक्त असावधानी के कारण उस पैक्ट का स्पष्ट रूप से भंग हो जायगा। ऐसी असावधानी का अर्थ होगा—हिन्दूधर्म का विश्वासघात । इसे देखने के लिए जीवित रहना मैं पसंद न करूँगा ।

शीघ्र दूसरे अनशन की सम्भावना

निकट भविष्य में दूसरे अनशन की सम्भावना है और यह केरल में गुरुवयूर मंदिर खोलने के सम्बन्ध में है। मेरे अत्यन्त आग्रह करने पर ही श्री केलप्पन ने तीन महीने के लिए अपना अनशन, जिससे वे मृत्यु के दरवाजे के बहुत नजदीक पहुँच गये थे, स्थगित कर दिया। मुझे अपनी इज्ज़त रखने के लिए उनके साथ अनशन करना ही पड़ेगा यदि १ जनवरी १९३३ को या इसके पहले यह मंदिर अस्पृश्यों के लिए ठीक उन्हीं शर्तों पर नहीं खुल जायगा जिन शर्तों पर स्पृश्य उसमें जाते हैं और यदि श्री केलप्पन के लिए फिर से अनशन शुरू करना आवश्यक हो जाय।

इन अनशनों की सम्भावनाओं पर मुझे इसलिए विस्तार से विचार करना पड़ा है कि दो या तीन स्थानों से मुझे क्रोध-भरी चिट्ठियाँ मिली हैं। तथापि साथियों को इन सम्भावनाओं से व्यथित नहीं होना चाहिए। इन्हें दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि इससे सम्बन्ध रखनेवाले सब अपनी पूरी शक्ति लगा कर कार्य करें जिसमें इस प्रसंग का उपस्थित होना ही असम्भव हो जाय।

सहभोज और अंतर्जातीय विवाह

चिट्ठी लिखनेवालों ने पूछा है कि क्या सहभोज और अंतर्जातीय विवाह अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन का अंग है। मेरी राय में नहीं है। इनका सवर्णों में उतना ही संबन्ध है जितना अवर्णों से। इसलिए अस्पृश्यता-विरोधी कार्य करने वाले के लिए यह आवश्यक नहीं कि सहभोज तथा अंतर्जातीय विवाह के सुधारों में लग जाय। व्यक्तिगत रूप से मेरी राय है कि यह सुधार अनुमान से पहले हो रहा है। सहभोज या अंतर्जातीय विवाह का निर्बन्ध हिन्दू धर्म का अंग नहीं। यह एक खास प्रथा है जो हिन्दू-धर्म में शायद उस समय घुस आई जब उसका ह्रास हो रहा था और समाज को छिन्न-भिन्न होने से बचाने के लिए यह चलाई गई। ये बन्धन ढीले पड़ रहे हैं। इन पर जोर देने से जीवन की उन्नति के लिए आवश्यक मूल सिद्धान्तों से जनता का ध्यान हट गया है।

इसलिए जहाँ कहीं लोग अपनी खुशी से ऐसे कार्यक्रम में भाग लेते हैं वहाँ स्पृश्यों और और अस्पृश्यों, हिन्दुओं और अहिन्दुओं को भोजन पार्टियों के लिए निमंत्रण मिला हो तो मैं इसे अच्छा लक्षण समझ कर इसका स्वागत करता हूँ। पर यह कितना ही वांछनीय क्यों न हो, मैं इस सुधार को उस भारत-व्यापी सुधार का अंग बनाने का कभी खयाल भी न करूँगा जो इसके पहले ही हो जाना चाहिए था। अस्पृश्यता, जिस रूप में हम उसे देखते हैं, वह घुन है जो हिन्दू धर्म के प्राणों को ही खा रही है। खान-पान और विवाह के बन्धनों से हिन्दू-समाज की बाढ़ रुकती है। मैं समझता हूँ कि यह अंतर मौलिक है।

आन्दोलन के प्रचंड वेग में इसे बहुत अधिक महत्व देना और इस प्रकार मुख्य प्रश्न को ही बिगाड़ देना मूर्खता होगी। जनता से एकाएक यह कहना कि अस्पृश्यता—निवारण के कार्य को उससे भिन्न दृष्टि से देखो जिससे देखना उन्हें सिखाया गया है, जनता के साथ विश्वासघात भी हो सकता है। इसलिए जहाँ कहीं जनता तैयार हो वहाँ भले ही सहभोज हुआ करें पर इसे भारतव्यापी आंदोलन का अंग न बनाना चाहिए।

सनातनी होने का दावा

अपने को सनातनी कहने वालों की मुझे चिट्ठियाँ मिली हैं। कुछ में क्रोध-भरे शब्द हैं। इनके लिए अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का सार है। कुछ मुझे धर्मत्यागी समझते हैं। कुछ का खयाल है कि मैंने क्रिश्चियन तथा इस्लाम धर्मों से अस्पृश्यता आदि के विरोधी विचार ग्रहण किये हैं। कुछ ने अस्पृश्यताका प्रतिवाद करते हुए वेदों के प्रमाण दिये हैं। इन सब को इस वक्तव्य में उत्तर देने का मैंने वचन दिया है, इसलिए चिट्ठी लिखनेवाले इन लोगों को यह बताने का साहस करता हूँ कि मैं सनातनी होने का दावा करता हूँ स्पष्ट ही सनातनियों की उनकी परिभाषा मेरी परि-भाषा से भिन्न है। मेरे लिए सनातन धर्म वह प्रधान धर्म है जो पीढ़ियों से चला आ रहा है, जिसका अस्तित्व इतिहास-काल के भी पूर्व था और जिनका आधार वेद तथा उनके बाद लिखे गये ग्रन्थ हैं। मेरे लिए वेद, ईश्वर और हिन्दूधर्म समान अनिर्वचनीय है।

यह कहना केवल आंशिक सत्य है कि वे वेद चार ग्रन्थ हैं जो छपे हुए मिलते हैं, ये ग्रन्थ अज्ञात द्रष्टाओं के उपदेशों के

अवशेष हैं। इन मूल निधियों को बाद की पीढ़ियों ने अपनी बुद्धि के अनुसार बढ़ाया। फिर उस महान् तथा उच्चमना पुरुष गीता के निर्माता का जन्म हुआ। उन्होंने हिन्दू धर्म का समन्वय करके हिन्दू संसार के सामने उपस्थित किया। यह अत्यन्त गम्भीर दार्शनिक भाव से भरा हुआ होने पर भी एक सरल जिज्ञासु इसे आसानी से समझ सकता है। अध्ययन करने की इच्छा रखने वाले हर हिन्दू के लिए यह पुस्तक खुली है। यदि अन्य सब धर्म-ग्रन्थों की राख हो जाय तो भी इस अमूल्य पुस्तिका के ७०० श्लोक यह बताने के लिए काफ़ी हैं कि हिन्दू-धर्म क्या है और उसके अनुसार किस प्रकार रहना चाहिए। मैं सनातनी होने का दावा करता हूँ क्योंकि ४० वर्षों से मैं इस ग्रन्थ के उपदेशों के अनुसार रहने का प्रयत्न करता आया हूँ। इसके प्रधान विषय से जो बातें विपरीत हैं उन्हें मैं छोड़ देता हूँ। किसी धर्म या उप-देशक से उसका विरोध नहीं। मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ यह कह सकता हूँ कि मैंने बाइबल, कुरान, जेंद अवस्ता, तथा संसार के अन्य धर्मग्रन्थों का उतनी ही भक्ति के साथ अध्ययन किया है जितना गीता का। इस भक्ति-पाठ से मेरा गीता पर का विश्वास दृढ़ हो गया है। इन से मेरा दृष्टिकोण और साथ ही मेरा हिन्दू धर्म भी व्यापक हो गया है। जोरोस्टर, जीसस और मुहम्मद के जीवन चरित्रों को मैंने जैसा समझा है उससे गीता के कितने ही अंशों पर प्रकाश पड़ा है। इसलिए इन सनातनी मित्रों ने मुझे ताना देने के लिए जो कुछ कहा है वह मेरे लिए संतोष की सामग्री बन गई है। मैं हिन्दू कहाने में गर्व करता हूँ क्योंकि मुझे यह शब्द इतना व्यापक जान पड़ता है कि यह समस्त भूमण्डल के

पैग़म्बरों के पग़ामों के प्रति न केवल सहिष्णुता का भाव प्रकट करता है वरन् इन्हें अपने अन्दर शामिल भी करता है। जीवन-शक्ति देनेवाले इस ग्रन्थ में मुझे अस्पृश्यता के लिए कहीं प्रमाण नहीं मिलता। इसके विपरीत यह मेरी बुद्धि को अपील करके तथा मेरे हृदय को इससे भी गंभीर अपील करके तथा अपनी आकर्षण शक्ति तथा भाषा से मुझे यह विश्वास करने को लाचार करता है कि प्राणिमात्र एक हैं, सब ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं तथा उसी के पास जायँगे। उस आदरणीय माता ने जिस सनातन धर्म की शिक्षा दी है उसके अनुसार जीवन बाह्य विधि-विधानों से बना हुआ नहीं है पर आत्यंतिक शुद्धता और अपने आपको शरीर, आत्मा और मन से परब्रह्म में मिला देना ही जीवन है। मैं गीता का यह संदेश लेकर लाखों की संख्या में एकत्र जनता के पास गया हूँ और उन्होंने मेरी बात सुनी। मुझे पूरा विश्वास है कि उन्होंने मेरी राजनीतिक बुद्धिमानी या भाषण-चातुर्य के कारण मेरी बात नहीं सुनी वरन् इसलिए मेरी बात सुनी कि उन्होंने सहज ही पहचाना कि मैं उन्हीं में से एक हूँ, उन्हीं के धर्म का आदमी हूँ। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये मेरा यह विश्वास दृढ़ होता गया कि सनातन धर्म का दावा करने में मैं भूल नहीं कर सकता और यदि ईश्वर की इच्छा हुई तो वह मुझे इस दावे पर अपनी मृत्यु से मुहर लगाने देगा।

यरवदा सेंट्रल जेल

मोहनदास करमचन्द गांधी

ता० ४–११–३२

एक पत्र-प्रेषक, यद्यपि वे सुशिक्षित हैं, लिखते हैं कि हरिजनों के सवर्ण हिन्दुओं की बराबरी का दरजा पाने के पहले उन्हें इसकी पात्रता प्राप्त करनी होगी, अपनी गन्दी आदतें, और मुरदार खाना छोड़ना होगा। एक दूसरे सज्जन यहाँ तक फ़रमाते हैं कि जो भंगी-चमार गन्दे माने हुए धन्धों से जीविका कमाते हैं उन्हें वे धन्धे छोड़ देने चाहिए। ये आलोचक इस बात को भूल जाते हैं कि हरिजनों में जो बुरी आदतें दिखाई पड़ती हैं, सवर्ण हिन्दू ही उनके लिए जिम्मेदार हैं। उच्च कहानेवाली जातियों ने उन्हें साफ-सुथरे रहने की सुविधाओं से वंचित कर दिया तथा इसके लिए कोई प्रोत्साहन भी न रहने दिया।

भंगी और चमार का काम अन्य बहुतेरे धन्धों से अधिक गंदा नहीं है, अलबत्ता ये धन्धे गन्दे तरीके से किये जा रहे हैं। पर यह भी तो उच्च जातियों की घमण्ड-भरी उपेक्षा और अपराध के दरजे तक पहुँच जानेवाली लापरवाही का ही परिणाम है।

मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि भंगी का और चमार का काम इस तरह किया जा सकता है जिसमें सफ़ाई और तन्दुरुस्ती की पूरी तरह से रक्षा हो सके। प्रत्येक माता अपने बच्चे की मेहतरानी होती है और आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र का प्रत्येक विद्यार्थी चमार का काम करता है, इसलिए कि उसे आदमी की लाश चीरनी और उसकी खाल उतारनी पड़ती है। पर उनके धन्धों को हम पवित्र कार्य मानते हैं। मेरा कहना

है कि साधारण भंगी और चमार का धंधा भी माताओं और डाक्टरों के कार्यों से कम पवित्र और कम उपयोगी नहीं है।

हरिजनों को इसी रूप में अपनाओ

सवर्ण हिन्दुओं का यह समझना अनुचित होगा कि वे हरिजनों पर अनुग्रह कर रहे हैं। जो कुछ भी वे इस समय हरिजनों के लिए कर रहे हैं वह उनके प्रति पीढ़ियों से किये हुए पापों का बहुत देर से किया हुआ स्वल्प प्रायश्चित्तमात्र है। हमें उन्हें वर्तमान रूप में ही स्वीकार करना होगा और यह हमारे पूर्वकृत पापों का समुचित दण्ड होगा। पर निश्चय जानिए कि हमारा निस्संकोच भाव से आलिंगन के लिए उनकी ओर अपने हाथ बढ़ाना ही उन्हें साफ़-सुथरे रहने की प्रेरणा करने को काफ़ी होगा और सवर्ण हिन्दू अपनी ही सुख-सुविधा के विचार से साफ़ रहने की सुविधाएँ उनके लिए प्रस्तुत कर देंगे।

हरिजनों पर हमारे अन्याय

हरिजनों पर हमने कैसे-कैसे अन्याय कर रखे हैं,इसे याद कर लेना अच्छा होगा। सामाजिक दृष्टि से हरिजनों की हैसियत वही है जो कोढ़ी की है। आर्थिक दृष्टि से उनकी स्थिति गुलामों से बदतर है। धर्माचरण के सम्बन्ध में यह हाल है कि उनका उन स्थानों में प्रवेश तक निषिद्ध है जो व्यर्थ ही भगवान् के स्थान कहे जाते हैं। सड़क, पाठशाला, कुँआ, अस्पताल, बम्बा, सार्वजनिक बाग़-बग़ीचों आदि का उपयोग वे उसी तरह नहीं कर सकते जिस तरह सवर्ण हिन्दू से कुछ नियत फ़ासले पर उनका पहुँच जाना भी और कहीं उनके सामने पड़ जाना ही अपराध है !

रहने के लिए उन्हें नगर और गाँव के सबसे खराब हिस्से में जगह दी जाती है, जहाँ वे एक प्रकार से नाई-धोबी आदि की सुविधा से सर्वथा वंचित होते हैं। ऊँची जाति का वकील अथवा डाक्टर-वैद्य उसी तरह उनकी सहायता न करेगा जिस तरह समाज के अन्य लोगों की करता है। आश्चर्य तो यह है कि इतना सब होते हुए भी वे जीवित हैं और हिन्दू-धर्म के नाम-लेवा बने हुए हैं। वे इस तरह कुचल दिये गये हैं कि कुचलनेवालों के साथ लड़ने के लिए उठ नहीं सकते। इन दुःखद और लज्जाजनक बातों को दुहराने का मतलब यह है कि कार्यकर्ता पूना-समझौते का अर्थ साफ़ तौर से समझ लें। लगातार प्रयत्न करके ही इन दलित भाइयों को ऊपर उठाना, हिन्दू-धर्म को शुद्ध करना और फिर संपूर्ण हिन्दू जाति तथा उसके साथ भारत को ऊपर उठाने का काम किया जा सकता है, और किसी तरह ये बातें होने की नहीं।

अन्यायों की इस साधारण उद्धरणी से हमें स्तब्ध न हो जाना चाहिए। यदि उपवास वाले सप्ताह में किये गये प्रदर्शन सवर्ण हिन्दुओं के सच्चे पश्चात्ताप के निदर्शन थे तो सब अच्छा ही होगा और शीघ्र ही हरएक हरिजन स्वतंत्रता के सुखद स्पर्श का अनुभव कर लेगा। पर इस परम अभीष्ट फल की प्राप्ति होने के पूर्व स्वतन्त्रता का संदेश दूर से दूर बसे हुए गाँवों तक पहुँचाना होगा। वस्तुतः गाँवों का काम नगरों की अपेक्षा, जहाँ लोकमत शीघ्र संघटित कर लिया जा सकता है, कहीं अधिक कठिन है।

कार्यकर्ताओं के प्रति

अब अखिल भारतीय अस्पृश्यता-निवारण संघ बन चुका है और कार्यकर्ताओं को चाहिए कि संघ से मिलकर कार्य करें।

यहाँ मैं उस बात को दुहराना चाहता हूँ जो डाक्टर अम्बेडकर ने मुझ से कही थी। उन्होंने कहा था—"अब उस पुराने ढंग से कदापि काम न होना चाहिए जिसमें सुधारक यह माना करते थे कि पीड़ित वर्ग की आवश्यकताओं को जितना हम समझते हैं उतना वह स्वयं नहीं समझता।" और फलतः उन्होंने और कहा—"अपने कार्यकर्ताओं को ताकीद कर दीजिए कि हरिजनों की सब से बड़ी आवश्यकता क्या है और वह किस तरह पूरी की जा सकती है, इसको उन्हीं के प्रतिनिधियों से पूछ कर मालूम करें। साथ बैठकर मिठाई खाना अच्छा प्रदर्शन है, पर उसका अतिरेक हो सकता है। इसमें कुछ अनुग्रह करने का भाव है। मुझे खुद कोई इसके लिए बुलावे तो मैं कदापि न जाऊँगा, इससे कहीं अधिक गौरवयुक्त प्रकार यह होगा कि बिना किसी तरह का हो-हल्ला मचाये हम लोग साधारण सामाजिक अवसरों पर निमंत्रित किये जायँ। मंदिर-प्रवेश का कार्य भी, यद्यपि वह अच्छा और आवश्यक कार्य है, पीछे के लिए छोड़ा जा सकता है। सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हरिजनों की आर्थिक स्थिति सुधारी जाय और नित्य के संबंध में उनके साथ भद्रता का व्यवहार किया जाय।" उन्होंने अपने निज के अनुभव से जो कतिपय हृदय-विदारक बातें सुनाई थीं उनको मैं यहाँ न दुहराऊँगा, मेरे मन ने उनके तर्क का बल स्वीकार कर लिया और मुझे आशा है कि इस वक्तव्य को पढ़नेवाला प्रत्येक व्यक्ति उसे स्वीकार करेगा।

कुछ सलाहें

सुधारकों ने मुझे कितनी ही सलाहें दी हैं। एक यह है कि प्रत्येक हिंदू अपने घर में एक हरिजन को रखे और वह सब प्रकार घर का एक आदमी माना जाय। यह सलाह स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द की है। दूसरी सलाह एक अहिन्दू सज्जन ने भेजी है जिन्हें इस देश के हित की गहरी चिन्ता रहती है। उनकी राय है कि प्रत्येक संपन्न हिन्दू गृहस्थ एक हरिजन लड़के वा लड़की को, संभव हो तो अपनी ही देख-रेख में, उच्च शिक्षा दिलाने का ख़र्च उठावें और ये शिक्षित युवक-युवतियाँ अन्य हरिजनों के उद्धार का कार्य करें। दोनों ही सलाहें विचारणीय और स्वीकार्य हैं। जिन सज्जनों के पास ऐसी कोई उत्तम सलाह हो उनसे मेरा अनुरोध है कि वे उसे नवस्थापित संघ के पास भेज दें। पत्र-लेखकों को मेरी मजबूरियों का ध्यान रखना चाहिए। जेल की चहारदीवारी के भीतर से मैं संघ और जनता को सलाहें देने के सिवा और क्या कर सकता हूँ। योजनाओं को कार्यान्वित करने के काम में मैं शामिल नहीं हो सकता। उन्हें यह भी जानना चाहिए कि मेरी रायें अधूरी और अकसर दूसरों से सुनी-सुनाई बातों के सहारे ही कायम की जाती हैं और नई बातें मालूम होने पर उनमें संशोधन होना सम्भव है, इसलिए उन्हें सावधानी के साथ ही ग्रहण करना चाहिए।

पूने के समझौते के लाभ

यद्यपि पूने का समझौता एक बीती बात है—जो होना था हो चुका—फिर भी मैं उस आपत्ति के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ जो एक लेखक ने उसके विषय में उठाई है और

समाचार-पत्रों में भी जो बात दबी जबान से कही गई थी। समझौते के राजनीतिक भाग के विषय में पूछा गया है कि उससे आपको क्या मिला ? अवश्य ही हरिजनों को उससे बहुत अधिक मिल गया जितना प्रधान मन्त्री ने उन्हें दिया था। निःसन्देह, ठीक यही इस समझौते का लाभ है। ब्रिटिश सरकार के निश्चय का विरोध मैं इस कारण करता था कि वह हरिजनों को रोटी के बदले ईंट-पत्थर देता था। इस समझौते ने उन्हें रोटी के टुकड़े दिये हैं। मुझे तो खुद डाक्टर मुंजे की तरह तब प्रसन्नता होती जब हिन्दुओं के हिस्से की सारी जगहें हरिजनों को मिल जातीं। सवर्ण हिन्दुओं और हिन्दू-धर्म के लिए इससे बड़ा लाभ और कोई नहीं हो सकता। मेरा यह सुनिश्चित मत है, और नई बातें मालूम होने से उसके बदलने की संभावना नहीं कि दलनकर्ता दलित को जितना ही देते हैं उतना ही लाभ में रहते हैं। उसी अनुपात में उनके सिर से ऋण का भार उतर जाता है, यही उनका लाभ है। सवर्ण हिन्दू जब तक इस प्रश्न को इस विनीत, पश्चात्तापमय और धार्मिक भाव से न देखेंगे, समझौते के शेष अंश का पालन उस भाव से कदापि न हो सकेगा जो उपवास-सप्ताह में हिन्दू-समाज में व्याप्त दिखाई देता था।

राजाओं को बधाई

मैं उन राजाओं को बधाई देना चाहता हूँ जिन्होंने अपने राज्य के मंदिरों के द्वार हरिजनों के लिए खोल दिये हैं और अन्य प्रकारों से भी अस्पृश्यता को अपने राज्यों से निकाल बाहर किया है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि ऐसा करके उन्होंने अपनी और अपनी प्रजा की ओर से थोड़ा प्रायश्चित्त कर दिया है। मैं

आशा करता हूँ कि उन राज्यों के हिन्दू इन घोषणाओं के वचनों का पालन करेंगे और हरिजनों को इस प्रकार अपना लेंगे कि वे भूल जायँगे कि किसी समय हिन्दू-समाज ने उन्हें घृणा के साथ अपने से दूर कर रखा था।

अति सामीप्य के कारण हमारे लिए यह समझना कठिन है कि यह अस्पृश्यता का विष अपनी निर्धारित सीमा से बहुत आगे तक पहुँच गया है और इसने सम्पूर्ण राष्ट्र की जड़ को खोखली बना दिया है। "छुओ मत" का भाव सारे वायुमण्डल में व्याप्त है। अतः यदि इस बुराई की जड़ पर कुल्हाड़ी चला दी गई तो मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही हम जाति-जाति और मजहब-मजहब के भेद-भावों को भूल जायँगे और यह मानने लगेंगे कि जिस तरह समस्त हिन्दू एक हैं उसी तरह सब हिंदू, मुसलमान, सिख, पारसी, और ईसाई भी एक ही मूल वृत्त की भिन्न-भिन्न शाखायें हैं। धर्माचारी बहुत हैं, पर धर्म एक ही है। यही वह शिक्षा है जो मैं चाहता हूँ कि अस्पृश्यता-निवारण के अन्दोलन से हम सब लोग ग्रहण करें। और यदि हम उसे धर्म-भाव तथा अटूट संकल्प-पूर्वक चलाते गये तो यह शिक्षा हमें अवश्य प्राप्त होगी।

यरवदा सेन्ट्रल जेल
५—११—३२

मोहनदास करमचन्द गांधी

एक सज्जन ने, जिनसे मैं भली भाँति परिचित हूँ तथा जो
अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन से सहानुभूति रखते हुए भी उसके
सम्पूर्ण कार्य-क्रम से सहमत नहीं हैं, एक लम्बा पत्र हिन्दी में
भेजा है, जिसका भाव इस प्रकार है:—

मुझे शंका है कि यह आन्दोलन सारे देश में सीमा का
व्यतिक्रम कर रहा है। मैं समझता हूँ कि कहीं-कहीं कार्य-कर्त्ता-
गण अनुचित उपायों का अवलंबन कर रहे हैं—जैसे पुराने विचार-
वालों को गालियाँ देना तथा पवित्र नामों का मखौल उड़ाना।
यदि कोई यह बतलाने का साहस करता है कि जिस चरम सीमा
पर यह आन्दोलन जा रहा है वह आपके भाषणों तथा लेखों की
भावना से भिन्न है तो उसे तुरन्त उपहास का पात्र बना दिया
जाता है और धर्म का शत्रु घोषित कर दिया जाता है, यहाँ तक
कि उसको इसके भयानक परिणाम तक की धमकी दी जाती है।
इन लोगों को अछूतों के साम्पत्तिक तथा नैतिक हितों की तनिक
भी चिन्ता नहीं प्रतीत होती। वे समझते हैं कि उनके प्रयत्नों का
आदि और अन्त यही है कि हरिजनों के साथ अबाधरूप से
भोजन कर लिया जाय और उनकी टोलियों को लेकर मन्दिरों पर
चढ़ाई कर दी जाय चाहे यह बात मन्दिर के संरक्षकों की इच्छा के
विरुद्ध ही क्यों न हो। मेरा विश्वास है कि आपकी यह इच्छा
कदापि नहीं है कि यह आन्दोलन केवल नेत्राकर्षक प्रदर्शनों
के गढ़े में पड़ जाय जिससे कट्टर पन्थियों के हृदयों को तो ठेस
पहुँचे परन्तु हरिजनों का तनिक भी उपकार न हो।"

पिछले मास में अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी लगभग एक सौ पत्र मुझे मिले हैं उनमें से एकमात्र यही पत्र कार्यकर्त्ताओं की हिंसा की सीमा तक पहुँची हुई प्रवृत्ति की शिकायत करता है। मेरे पत्र-प्रेषक ने कार्यकर्ताओं को जो चेतावनी दी है केवल उसीका ध्यान रखकर मुझे इन शिकायतों को प्रकाशित करने की आवश्यकता अनुभव हुई है। मैं जानता हूँ कि वे जानकर अत्युक्तिपूर्ण बातें न लिखेंगे। मैं तो कहता हूँ कि धर्म क्या किसी भी बात में जबरदस्ती न होनी चाहिए। हिंसा—चाहे वह किसी रूप में किसी भी जाति, धर्म अथवा दैशिकता 'नैशनेलिटी' के विरोध में क्यों न हो—के विरुद्ध मेरे दृढ़ विचारों को सारी जनता जानती है।

अतएव इस आन्दोलन के संचालकों को यह जान लेना चाहिए कि मुझे भावी अनशन से बचाने की उत्सुकता में वे अनुचित उपायों द्वारा इसकी गति को जबरदस्ती तीव्र न करें। उनका ऐसा कार्य मेरे अन्तकाल को निकट लाने वाला होगा। जिस आन्दोलन के लिए परमात्मा ने मुझे वह छोटा-सा अनशन करने की प्रेरणा की थी उसी को आचार-भ्रष्ट होते देखना मेरे लिए जीवित ही मृत्यु के समान होगा। हरिजनों तथा हिन्दूधर्म के हितों को रक्षा गड़बड़ उपायों से नहीं होगी। यदि संसार भर में नहीं तो भारतवर्ष में तो धार्मिक सुधारों का यह सब से बड़ा आन्दोलन है क्योंकि इसका सम्बन्ध गुलामो का जीवन व्यतीत करने वाले ६ करोड़ मानवजीवों से है।

इससे असहमति प्रकट करने वाला कट्टर समुदाव विनय तथा विचारशीलता का व्यवहार किये जाने योग्य है। हमें उन

लोगों को प्रेम, त्याग तथा संयम से विजय करना है तथा अपने जीवन की पवित्रता को उनके हृदयों पर स्वतः ही प्रभाव डालने देना है। हमें अपने सत्य में विश्वास तथा विरोधियों को अपने विचार का बनाने के लिए प्रेम की आवश्यकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ६ करोड़ मानव-जीवों को सदियों के अत्याचार से छुड़ाना केवल दिखावटी प्रदर्शनों के द्वारा नहीं हो सकता। इसके लिए चारों ओर आक्रमण करने वाले ठोस तथा रचनात्मक कार्यक्रम की आवश्यकता है। इस भारी प्रयत्न के लिए उच्चतम धार्मिक भावों से प्रेरित सहस्रों स्त्री, पुरुष, बालक तथा बालिकाओं की सम्मिलित शक्ति की आवश्यकता है। जो इस आन्दोलन के विशुद्ध धार्मिक पहलू के महत्व को न समझते हों उनसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि इससे पृथक् हो जायँ और जिनमें विश्वास तथा लगन हो—चाहे ऐसों की संख्या कितनी ही कम या अधिक क्यों न हो—उनको यह कार्य करने दें।

अस्पृश्यता-निवारण का वास्तव में बड़ा भारी राजनैतिक परिणाम होगा परन्तु यह आन्दोलन राजनैतिक नहीं है। यह आन्दोलन केवल हिन्दूधर्म को शुद्ध करने के लिए है और यह शुद्धि विशुद्ध साधनों से ही प्राप्त हो सकती है। ईश्वर का धन्यवाद है कि भारत के विभिन्न भागों में ऐसे सहस्रों साधन कार्य कर रहे हैं। उतावले शंकावादी धैर्यपूर्वक देखें तथा इंतजार करें परन्तु जल्दबाज और निराशावादी अविवेकपूर्ण अडंगेबाजी से आन्दोलन को हानि न पहुँचावें चाहे उनके कार्यों का उद्देश्य कितना ही प्रशंसनीय क्यों न हो।

यरवदा सेण्ट्रल जेल
९-११ ३२

मोहनदास करमचंद गांधी

[४]

एक सम्वाददाता मुझे लिखते हैं–"मेरे ख़याल में आप का पिछला व्रत बहुत ही बुरी तरह का दबाव सिद्ध हुआ। मैं यरवदा पैक्ट के बारे में भी अपनी राय छिपाना नहीं चाहता। मेरे विचारों से बहुत से लोग सहमत हैं। लेकिन वे आप के व्यक्तित्व में विश्वास और श्रद्धा रखने के कारण आपके इस कार्य का विरोध नहीं करते। मेरा ख़याल है कि वह पैक्ट दुनिया का दुर्भाग्य है, जो आपके दुर्भाग्य-पूर्ण उपवास के बिना कभी न बनता। आपके एक आदरणीय मित्र ने मुझे कहा था कि यदि इस प्रश्न के साथ महात्माजी की मृत्यु का सम्बन्ध न होता तो मैं कभी इस पैक्ट से सहमत न होता। बहुत से हिन्दू इस पैक्ट पर खेद प्रकट करते हैं और कहते हैं कि यदि आपने यही लन्दन में स्वीकार कर लिया होता, जो अब किया है तो इस पैक्ट की आवश्यकता ही न पड़ती।

"आपने अपने वक्तव्य में लिखा है कि यह उपवास लाखों के हित के लिए किया गया है। आपका यह इरादा होगा, लेकिन वस्तुत: यह थोड़े से ऐसे आदमियों को मनाने के लिए किया गया था जिनके मानने के लिए और कोई तरीक़ा न था। पांच दिनों में ही आपके उपवास के कारण वे अपना निश्चय बदलने पर बाधित हुए। अब आप दूसरा उपवास करने की सोच रहे हैं।

आप जैसे सार्वजनिक और प्रसिद्ध नेता की आलोचना से मुझे दुःख होता है लेकिन चुप रहना भी ईमानदारी नहीं है। आज जनता आपके विचारों का विरोध नहीं करती, केवल इसी से यह मान लेना कि जनता आपके विचारों से सहमत है, ठीक नहीं। जनता आपके प्रति सन्मान प्रकट करती है और इसलिए आपके विरुद्ध नहीं बोलती।"

मैंने इस लम्बे पत्र से कई अनावश्यक पैराग्राफ तथा कई प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम नहीं दिये। यह मेरे लिए बड़े दुःख की बात होगी कि उन नेताओं ने केवल मेरी मृत्यु की धमकी से अपने विचारों को दबाकर मेरी बातें स्वीकार कर लीं। यदि यह सच है, तो उन्होंने देश का बड़ा अहित किया है और वे मेरे उपवास की धार्मिक भावना को समझने में असमर्थ हुए हैं। सार्वजनिक जीवन में सत्य के लिए मित्रता का बलिदान कर देना चाहिए। हालांकि यह बहुत कठिन, अप्रिय तथा दुःखप्रद है। इस पैक्ट में उन्हें सीटों का रिजर्व रखना, सम्मिलित चुनाव और दलितों के द्वारा प्रारम्भिक चुनाव पर निश्चय ही कोई एतराज न होगा। वे हरिजनों के सामाजिक और धार्मिक अधिकारों को, जिनसे वे बहुत समय से वंचित कर दिये गये हैं, देने में भी एतराज नहीं कर सकते। केवल एक चीज पर वे एतराज कर सकते हैं और वह है उन्हें दी गई सीटों की संख्या। लेकिन इन सीटों से अधिक सीटें उन्हें राजा-मुंजे पैक्ट में दी गई थीं। जैसा मैं कह चुका हूँ, कि उच्चवर्णीय हिन्दू उन्हें बहुत अधिक सीटें नहीं दे सकते थे, यदि वे वस्तुतः उन्हें अपने से भिन्न न समझते और अपना ही अङ्ग मानते।

मुझे वस्तुतः बहुत दुःख है यदि पैक्ट में हरिजनों को उनकी योग्यता से बहुत अधिक सीटें मेरे उपवास की धमकी से दे दी गई हैं। इसलिए यदि मरे सम्वाददाता की लिखी बातें सच हैं, तो मैं कहूँगा कि मेरा उपवास दुगने तौर पर न्याय्य और उचित था। मुझे ऐसे समाज में जीवित रहने की परवा नहीं करनी चाहिए, जिसमें अपने भाइयों के साथ साधारण-सा न्याय करने में बहुत अधिक सोच-विचार किया जाता हो। और मेरा उपवास तिगुने रूप से उचित और न्याय्य ठहरता है यदि मेरे साम्वाददाता की कही हुई अगली यह बात सच है कि लाखों आदमी वस्तुतः मेरे अस्पृश्यता-विरोध को स्वीकार नहीं करते और वे केवल मेरे "महान् व्यक्तित्व" तथा "राजनैत्तिक नेतृत्व" के कारण उसे स्वीकार करते हैं या विरोध नहीं करते। ऐसे असत्य-तामय वातावरण में मेरा जीवन भाररूप ही है। जितनी जल्दी ही सार्वजनिक नेता और जनता मेरे जैसे 'महात्मा' के विरुद्ध भी अड़ना तथा आग्रह करना सीख लें उतना ही अधिक मेरे,देश के के लिए और उनके खुद के लिए अच्छा होगा। इस वातावरण को शुद्ध करने के लिए मुझे बड़ी प्रसन्नता से उपवास करना चाहिए। मेरे संवाददाता ने अपनी बात ठीक समय पर सुझाई है।

मैं एक बार फिर अपने सारे जोर के साथ सब को यह जता देना चाहता हूँ कि अस्पृश्यता-निवारण का आन्दोलन तथा मेरा उपवास किसी पर उसके उन विचारों के प्रतिकूल दबाव डालने के लिए नहीं है, जो वे देश और समाज के भले के लिए उचित समझते हैं। मेरा उपवास किन्हीं खास व्यक्तियों, या संख्या के विरुद्ध नहीं है। यह तो उन लाखों आदमियों को प्रभावित तथा

उद्घलित करने के लिए हैं, जो मेरे दिल में हैं तथा जिनमें और मेरे बीच में एक अटूट बन्धन है।

मेरे सम्वाददाता ने यह सलाह दी है कि यदि मैं लन्दन में वह स्वीकार कर लेता, जो अब किया है, तो इस पैक्ट की जरूरत ही न होती। इस संबन्ध में इससे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं लण्डन में वह नहीं कर सकता था, जो भारत में कर सकना सम्भव था। सम्वाददाता, यद्यपि उस समय लन्दन में थे, उन सब अवस्थाओं को नहीं जानते, जिन्हें मैं जानता हूँ।

जनता को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि इस पैक्ट के विरुद्ध मेरे पास बहुत से पत्र आते रहते हैं। मेरे ख़याल में यही एक पत्र ऐसा आया है।

दो-तीन चिट्ठियों में मेरे दबाव की शिकायत तो है, परन्तु पैक्ट द्वारा हरिजनों को कुछ देने का विरोध नहीं है। इस चिट्ठी के बरख़िलाफ़ मुझे सैकड़ों तार व पत्र मिले हैं, जिनमें मेरे उपवास का समर्थन किया गया है। मेरा उपवास तथा पैक्ट दोनों एक साथ हैं। भारत में तथा पश्चिम में दो-एक के सिवा सभी ने मेरे उपवास के आध्यात्मिक प्रभाव को स्वीकार किया है लेकिन अपने स्वभाव के अनुसार मैं सीधे रास्ते पर रहूँगा और मैं ऐसे आलोचनात्मक पत्रों को प्रकाशित करूँगा और खास कर उन लोगों के पत्रों को, जिन्हें मैं जानता हूँ कि उन्होंने सद्भाव से लिखे हैं जैसा कि मेरे इस सम्वाददाता ने किया है।

यरवदा सेण्ट्रल जेल,

९-११-३२

मोहनदास करमचंद गांधी

पुनश्च :—

इस वक्तव्य को देते समय मुझे अस्पृश्यता-निवारिणी सभा के मन्त्री श्रीयुत ठक्कर का तार मिला है कि दलितों की संख्या ६ करोड़ नहीं है, बल्कि ४ करोड़ है।

(५)

"गत सप्ताह सम्पूर्ण आन्दोलन के सम्बन्ध में परामर्श करने श्रीयुत राजभोज और उनके मित्र मुझसे मिलने आये थे। इस प्रसंग में उनसे जो कुछ मैंने कहा था उसी के एक अंश का संक्षेप में मैं इस वक्तव्य में वर्णन करना चाहता हूँ। उनका एक सवाल यह भी था कि इस आन्दोलन को सहायता पहुँचाने के लिए हरिजन क्या कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में वे बहुत कुछ कर सकते हैं। उनके साथ समान व्यवहार करने से अस्वीकार करने के औचित्य को प्रमाणित करने के लिए उच्च हिन्दुओं द्वारा उनके विरुद्ध अभियोग आरोपित किये जायंगे, यह समझ रखना चाहिए। मैं इस सम्बन्ध में पहले ही बहुत जोरदार शब्दों में कह चुका हूँ कि असंख्य हरिजनों की शोचनीय अवस्था के लिए सारा दोष उच्च हिन्दुओं का है और यह बिलकुल सत्य है कि अस्पृश्यता का निवारण हो जाते ही उनकी दशा भी सुधर जायगी। किन्तु अस्पृश्यता-निवारण के लिए इसे शर्त नहीं बनाया जा सकता।

हरिजन कैसे साफ़-सुथरे रह सकते हैं ?

किन्तु फिर भी हरिजन कार्यकर्त्ताओं का यह प्रत्यक्ष कर्तव्य है कि वे वर्तमान अवस्था में जहां तक सम्भव हो सके अंदरूनी सुधार-कार्य करते रहें। इसलिए हरिजन कार्यकर्त्ताओं को (१) हरिजनों में स्वच्छता और शरीर-विज्ञान की उन्नति (२) गन्दे पेशों को जैसे पाखाना और चमड़ा खींचना आदि कामों को अधिक उन्नत प्रणाली द्वरा करने, (३) मरे जानवरों के मांस तथा गो मांस भक्षण को बन्द करने, (४) शराब का पीना बन्द कराने, (५) जहाँ दिन के स्कूल हों संतानों को उनमें भेजने के लिए।माता-पिता को राजी करने और रात्रि पाठ-शालाओं में स्वयं माता-पिता को पढ़ने के लिए जाने को राजी करने और (६) अपने ही बीच में अस्पृश्यता-निवारण करने में अपनी तमाम शक्ति लगानी चाहिए। अब मैं यहाँ पर यह खुलासा कर देना चाहता हूँ कि इन सब बातों से क्या मतलब है। कम से कम हमारे देश की जलवायु में दैनिक स्नान और साफ-सुथरे कपड़ों का पहनना सब जगह आवश्यक है। मैं यह जानता हूँ कि हरिजनों की बस्तियों में पानी आसानी से नहीं मिलता। उनको सार्वजनिक तालाबों और कुओं में जाने नहीं दिया जाता और वे इतने ग़रीब हैं कि साफ कपड़ा बदलते रहने की अवस्था उनकी नहीं है। यह आम तौर से मानी बात है कि एक पूरे लोटा भर पानी से आदमी साफ स्नान कर सकता है इसका उपाय यह है कि एक साफ तौलिये को अच्छी तरह पानी में भिगो कर उससे खूब अच्छी तरह सिर सहित सारी देह को मलकर बाद में एक सूखे तौलिये से पोंछ डालना

चाहिए। नित्य स्नान करने की दशा में उसी तौलिये का पानी निचोड़कर देह पोंछने का भी काम लिया जा सकता है। इस देश की जैसी जलवायु है उसमें वे ही कपड़े आसानी के साथ, केवल लंगोट पहन कर, धोये और सुखाये जा सकते हैं। मैं जानता हूँ कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसमें कोई नई बात नहीं है फिर भी इन्हीं आरम्भिक बातों को मुझे सैकड़ों कार्यकर्त्ताओं को समझाना पड़ा है। यहाँ तक कि पढ़े-लिखे ग्रेजुएट भी स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी इन मूल बातों के सम्बन्ध में उतना ही अबोध पाये गये हैं जितना पाखाना साफ करने की समुन्नत प्रणाली के सम्बन्ध में।

ऊँची जातिवालों के अज्ञान और स्वार्थपरता ने मनुष्यों का मलमूत्र सफ़ाई के साथ उठा सकने को प्रायः असम्भव बना दिया है। अस्पृश्यता के कारण पाखाने इतने गन्दे होते हैं कि उनकी गन्दगी वर्णनातीत है। वे इतना अन्धेरे, चारों तरफ से बन्द और इस ढङ्ग से बने रहते हैं कि केवल एक अंश ही थोड़ा-बहुत साफ किया जाने लायक़ होता है और वह भी बड़ी गन्दी हालत में। इन पाखानों में जाना प्रतिदिन नरक में उतरना होता है।

यदि जलवायु इतनी सहायक न होती तो इस अज्ञान के कारण अकाल मृत्युओं की संख्या न जाने कितनी और बढ़ जाती। तथापि हरिजन, जिनको यह आवश्यक सामाजिक कार्य पूरा करना है, वर्तमान प्रतिकूल अवस्थाओं में भी कम से कम पाखानों की सफाई हो जाते ही फौरन स्नान कर सकते हैं और सफाई के लिए वे थोड़ी सी राख की जगह खूब अधिक सूखी मिट्टी से काम ले सकते हैं। एक कुशल भंगी होने के कारण, जिसका मुझे दावा है, इस सम्बन्ध में मैं बहुत सी बातें बता सकता हूँ जिनसे

बहुत सस्तेपन, सफ़ाई और सुन्दरता के साथ काम किया जा सकता है, खासकर यदि ग्रामवासी और नागरिक मदद करें। किन्तु इस दिलचस्प मजमून पर इस वक्तव्य में अधिक नहीं लिख सकता। जिनको जानने की उत्सुकता हो वे साधारणतया स्वच्छता और स्वास्थ्य एवं ख़ास कर ग्राम-स्वास्थ्य-विज्ञान पर लिखी मेरी किताबें पढ़ें। ×

सफ़ाई का काम करते समय भंगियों को इस काम के लिए अलग रखी हुई एक पेशे-सम्बन्धी पोशाक पहननी चाहिए। काम करानेवालों को अपने भंगियों को ऐसी एक पोशाक देनी चाहिए। सफाई के साथ चमड़ा खींचने की प्रणाली इससे कहीं अधिक कठिन काम है। तथा कथित उच्च जातियों के अपने ऐसे काम के सहकर्मियों एवं देशवासियों के प्रति भयंकर उपेक्षा दिखाने के कारण मृतक पशुओं के उठाने लेकर चमड़ा तैयार करने तक का काम बिलकुल भद्दे ढङ्ग से किया जा रहा है जिसके फलस्वरूप देश को अकथनीय आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है और चमड़ा भी निम्न कोटि का बनता है। स्वर्गीय† श्री मधुसूदनदास ने, जो एक बड़े भारी धर्म-वेत्ता थे और जिन्होंने स्वयं खाल खींचने और उसको पकाने तथा चमड़ा बनाने की आधुनिक प्रणाली सीखी थी, एक तालिका तैयार की थी जिसमें उन्होंने बताया था कि इस अस्पृश्यता के अन्धविश्वास के कारण धर्म के छद्मवेश में देश को सालाना क्या नुकसान होता है। हरिजन कार्यकर्त्ताओं को चमड़ा तैयार करने

× ये पुस्तकें हमारे यहाँ मिल सकती हैं —प्रकाशक।

† श्री मधुसूदनदास मरे नहीं जीवित हैं। महात्माजी ने अपनी, उन्हीं के शब्दों में, इस 'मूर्खतापूर्ण भूल' पर खेद प्रकट किया है।

की नवीन प्रणाली सीखकर चमारों को उसे सिखाना चाहिए।

भंगियों को यह बात अच्छी तरह सिखानी चाहिए और उनको इसके लिए कृतसंकल्प करा देना चाहिए कि गृहस्थ के दैनिक भोजन से जो कुछ बच जाता है जो वास्तव में उनके सामने अति क्रूर ढंग से फेंक दिया जाता है, कदापि स्वीकार न करें। वर्षों की आदत ने भङ्गियों के स्वाद की भावना को भी मृत बना दिया है इसीसे वे दूसरे आदमी का उच्छिष्ट भोजन खाने में कोई दोष नहीं समझते। वे अपने मालिकों के बढ़िया सुस्वादु उच्छिष्ट भोजन के लिए लालायित रहते हैं। मैं ऐसे भङ्गियों को जानता हूँ जिन्होंने अपने लड़कों को स्कूलों से इसलिए हटा लिया है कि वहाँ उनको यह सिखाया गया है कि वे इन उच्छिष्ट पदार्थों का स्पर्श तक न करें और अपने घर में बनी बाजरे अथवा जुआर की रोटी खाकर सन्तुष्ट रहें।

चमारों को मृत पशुओं का मांस और गो-मांस भक्षण छोड़ने का उपदेश दिया जाना चाहिए। शाकाहारी की हैसियत से मैं तो यही चाहूँगा कि हरिजन, जैसा बहुतों ने किया भी है, मांस खाना ही बिलकुल छोड़ दें। किन्तु यदि वे इस सुधार के लिए तैयार नहीं हैं तो उनको मृत पशुओं का मांस तो अवश्य ही छोड़ देना चाहिए क्योंकि यह एक तो स्वास्थ्य के लिए बहुत अहितकर है और दूसरे मानव-जाति द्वारा बहुत ही गर्हित समझा जाता है और हिन्दू-धर्म में निषेध होने के कारण गो-मांस भक्षण भी उनको छोड़ देना चाहिए। मैं जानता हूँ कि मुर्दा पशुओं का माँस मृतक पशुओं को उठाने का मूल्य है। डा० अम्बेदकर ने मुझसे कहा था कि कहीं-कहीं ग्रामवासी उनको मारते हैं जिन्होंने मृत

पशु का मांस खाना छोड़ दिया है और यह कहते हैं कि यह मांस खाना उनका धर्म है। असल बात यह है कि उनको डर है कि यदि वे मृत-पशु का मांस खाना छोड़ देंगे तो मृतक पशुओं के उठाने का उचित मूल्य मांगेंगे। चाहे जो कठिनाइयाँ क्यों न हों मुर्दे का मांस और गो-मांस-भक्षण उनको हर हालत में छोड़ देना चाहिए। इसी एक आत्मसंयम से हरिजन उच्च लोगों की दृष्टि में अच्छे समझे जाने लगेंगे और सुधारकों का काम भी अधिक सरल हो जायगा।

चौथी और पांचवी बात पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। वे स्वयं स्पष्ट हैं। आखिरी बात अस्पृश्यों के भीतर अस्पृश्यता के दूर करने की है। इसकी सख्त जरूरत है। यदि यह डबल अस्पृश्यता एक ही प्रवाह में न दूर हुई तो अस्पृश्यता का निवारण अति दुरूह हो जावेगा। हरिजन कार्य-कर्त्ताओं के लिए यह अत्यन्त कठिन कार्य है किन्तु यदि वे यह समझेंगे कि यह आन्दोलन प्रधानतया धार्मिक है और हिन्दुत्व के भीतर जो गन्दगी घुसी है उसे निकाल बाहर करने के लिए है तो उनको आवश्यक साहस होगा और इस महान् सुधार को पूरा करने में आत्मविश्वास उत्पन्न होगा। मेरे लिए यह कहने और जोर देने की जरूरत ही नहीं है कि ऐसे आन्दोलन में कार्यकर्त्ताओं का निःस्वार्थ और विशुद्ध चरित्रवान् होना अत्यन्त आवश्यक है। मैंने यह ऐसा रचनात्मक कार्यक्रम सामने रखा है जिससे हरिजनों के बीच के अत्यन्त उच्चाभिलाषी सुधारकों को अवश्य सन्तोष होगा और उनका सारा समय तथा शक्ति उसमें लगेगी।

हरिजनों को इस समय क्या न करना चाहिए ?

दो-एक ऐसी बातें हैं जो अभी हरिजनों को न करनी चाहिएँ। किसी हरिजन को किसी के ख़िलाफ़ उपवास किसी हालत में न करना चाहिए और न उनके सत्याग्रह करने की ही आवश्यकता है। उनको उच्च हिन्दुओं को देखते रहना चाहिए, जो इस समय कसौटी पर कसे जा रहे हैं। वे देखें कि उस प्रतिबन्ध को दूर करने के लिए वे क्या करते हैं जिसने हरिजनों को उनसे अलग कर रखा है। स्थानीय उच्च हिन्दुओं के साथ उनको झगड़ा न करना चाहिए। उनका व्यवहार सर्वथा नम्र और प्रशंसनीय होना चाहिए, ख़ास कर इस समय तो बहुत ही अधिक। धर्म की मर्यादा की रक्षा आत्मसंयम द्वारा ही की जा सकती है, अत्याचारियों के प्रति हिंसा द्वारा नहीं। यह हो सकता है कि बहुत-सी चीज़ें वे बल के द्वारा प्राप्त कर लें पर उनका गौरव इसी में है कि वे अपने अधिकार उच्च हिन्दुओं को अपने पक्ष में करके उनसे प्रेमपूर्वक प्राप्त करें और आज इस बात के समझने का काफ़ी कारण है कि लाखों हिन्दू ऐसे हैं जिनको अपने अपराध का बोध हो गया है और उसके लिए वे हरिजनों को क्षतिपूर्ति देने की सतत चेष्टा करते हैं। उनको अपने कार्य के पूर्ण औचित्य और उसको प्राप्त करने के लिए आत्म-कष्ट-सहन की योग्यता में पूर्ण विश्वास रखना चाहिए। अपने अगले वक्तव्य में जिन उच्च हिन्दुओं ने यह पूछा है कि उनको आन्दोलन की मदद करने के लिए क्या करना चाहिए उनको अवश्य जवाब दूंगा।

यदि हरिजनों में केवल श्रीयुत राजभोज ही जैसे हैं जिन्होंने मुझसे पूछा है कि आन्दोलन को अग्रसर करने के लिए हरिजनों को क्या करना चाहिए, तो मैं कहूँगा कि भारत के कोने-कोने से उच्च वर्ण हिन्दुओं के यहाँ से जिनमें स्त्री-पुरुष, छात्र आदि हैं, ऐसी बीसियों चिट्ठियाँ आई हैं, जिनके द्वारा मुझसे पूछा गया है कि वे अपने अन्य कार्यों में बाधा दिये बिना भी किस प्रकार हरिजन और आन्दोलन को सहायता पहुँचा सकते हैं। चूँकि अस्पृश्यता-निवारण का आन्दोलन सामूहिक एवं सार्वजनिक है, और उसका सम्बन्ध केवल हृदय के परिवर्तन से है इसलिए हरिजनों के प्रति केवल भावों के परिवर्तन करने एवं तदनुकूल उचित व्यवहार करने में वहुसंख्यक उच्च वर्ण के हिन्दुओं के दैनिक कार्यों में किसी प्रकार की बाधा या रुकावट पड़ने की न तो सम्भावना है और न आवश्यकता है। हरिजनों की सेवा करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति का जो सर्वोपरि कर्तव्य है, वह है अस्पृश्यता-निवारण के सिद्धान्त को समझ लेना। यदि प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष अस्पृश्यता के निवारण करने में किसी प्रकार को आपत्ति नहीं है, और इसके ऊपर वे उन हरिजनों को मन्दिरों में प्रवेश कराने और सार्वजनिक स्थानों जैसे स्कूलों, सरायों, सड़कों, अस्पतालों, शफाखानों आदि का उपयोग करने देने के इच्छुक हों, अथवा थोड़े में यह कहा जासकता है

कि यदि उच्च वर्णवाले हरिजनों को अपने ही समकक्ष धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से उठा कर रखना चाहते हैं, तो उनकी केवल इस इच्छा से काम नहीं चलेगा। इतना करके तो व्यक्तिगत रूप से उन्होंने काफ़ी आगे। क़दम बढ़ा लिया पर उस प्रश्न को हल करने के लिए केवल इतना ही नहीं करना है और न तो इतने मात्र से सन्तोषजनक कार्य हो सकता है। इतनी दूर तक आगे बढ़ जाने पर प्रश्नकर्ता अब यह जानना चाहते हैं कि अस्पृश्यता-निवारण को अग्रसर करने के लिए इसके अतिरिक्त वे और क्या कर सकते हैं। इस प्रकार के प्रश्नकर्त्ताओं को अपने आस-पास की सीमा के बाहर अपनी कार्य-शक्ति लगाने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें उचित है कि जिनके साथ वे नित्यप्रति मिलते-जुलते हैं, उनके ही बीच अपने मत का प्रचार करें, और यदि उन लोगों पर, इनकी (प्रश्नकर्त्ताओं की) अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी बातों का कुछ असर नहीं पड़े तो इन्हें चाहिए कि यदि उन्होंने स्वयं भली-भांति इस आंदोलन का अध्ययन कर लिया है तो अपने पड़ोसियों को अपने विचार समझायें, अथवा यदि वे लोग अपने विचारों का दूसरों पर प्रभाव डालने में पूर्णरूप से योग्य नहीं हैं, या उस कार्य में असमर्थ हों तो उन्हें चाहिए कि इस सम्बन्ध के साहित्य का संग्रह करें और उन व्यक्तियों को इस प्रकार की पुस्तकें एवं साहित्य पढ़ने के लिए दें और जो व्यक्ति अपना सारा समय इस आन्दोलन में लगाते हों एवं इस कार्य में दक्ष हों, उनके साथ ऐसे व्यक्तियों का परिचय करा दें जो अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी बातों से सहमत नहीं होते हों अथवा जिन पर इन बातों का आसानी से असर नहीं पड़ता हो। यदि वे देखें कि अड़ोस-पड़ोस के

लोगों।पर आन्दोलन की भावना का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और यदि उनका कोई प्रभाव हो तो उनको वहाँ पर सार्वजनिक व्याख्यानों और प्रदर्शनों का आयोजन करना चाहिए और ऐसी सभाओं में व्याख्याताओं को निमन्त्रित करना चाहिए। उच्च हिन्दुओं।के भीतर काम करने के सम्बन्ध में यह सब कहा गया है।

किन्तु वास्तव में जरूरत यह है कि स्त्री-पुरुषों की एक विशाल संख्या हरिजनों के बीच में जाकर काम करे। जिन उच्च हिन्दुओं ने मेरा पांचवां वक्तव्य पढ़ा है उन्होंने अवश्य ही यह देखा होगा कि बिना अधिक समय, शक्ति और धन खर्च किये ही हरिजनों के बीच में अत्यधिक मूक और प्रभावपूर्ण कार्य करने का बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा है। सफाई की ओर प्रवृत्त करने और वैसी आदत डालने की शिक्षा देने के कार्य में उच्च हिन्दू हरिजन कार्यकर्त्ताओं को बड़ी सफलता के साथ मदद दे सकते हैं। अभीष्ट जलाशयों तक बिना किसी रुकावट के पहुँचने की सुविधाओं की व्यवस्था करके भी वे इस ओर मदद पहुँचा सकते हैं।

उनको चाहिए कि हरिजनों की बस्तियों के समीप के सार्वजनिक कुओं और तालाबों के सम्बन्ध में उनका उपयोग करनेवाले उच्च हिन्दुओं के पास पहुँचें और उनको यह समझावें-बुझावें कि हरिजनों को भी उन स्थानों का व्यवहार करने का क़ानूनन अधिकार है और जब उन उच्च हिन्दुओं से जो उन स्थानों का व्यवहार करते हैं, हरिजनों के व्यवहार के लिए स्वीकृति मिल जाय तो उस समय उनका यह देखते रहना कर्तव्य होना चाहिए कि हरिजन उन स्थानों का व्यवहार इस प्रकार करें जिसमें दूसरों को किसी तरह की असुविधा अथवा तकलीफ

न हो। पाखाना साफ़ करने के सम्बन्ध में उनको मकान-मालिकों के पास जाना चाहिए और उनको इस बात की आवश्यकता बतानी चाहिए कि स्वास्थ्यप्रद प्रणाली से पाखाना साफ़ करने की सुविधाएँ वे हरिजनों के लिए कर दें। इसके लिए यह स्वभावतः आवश्यक है कि पाखानों के बनाने और रात का मैला साफ़ करने की वैज्ञानिक प्रणाली का वे अध्य-यन करें। मकान-मालिकों से वे भंगियों के लिए खास क़िस्म की पोशाक दिलाने की व्यवस्था करा दें और खुद बिना किसी अगर-मगर और हिचकिचाहट के पाखाना साफ़ करके हरिजनों को दिखा दें और उनको यह अनुभव करा दें कि इस प्रकार का काम करना किसी तरह से हेय अथवा गर्हित काम नहीं है। उच्च हिन्दू भंगियों को अपने दैनिक भोजन का उच्छिष्ट भाग दिया करते हैं उसे रोकने के लिए इन कार्यकर्त्ताओं को इसके विरुद्ध प्रचार भी करना चाहिए और जहाँ इनका वेतन कम है वहाँ चाहिए कि वे लोग उनके मालिकों को सुन्दर वेतन देने के लिए समझायें।

अब चमारों की समस्या को लीजिए। इसके लिए ऐसे कार्य-कर्त्ताओं की जरूरत है जो स्वेच्छापूर्वक अपने अवकाश के समय काम करते हों। मृत जानवरों की खाल किस तरह स्वास्थ्यप्रद ढंग से खींची जा सकती है, इसका अध्ययन करने के लिए उनके हृदय में मानवसमाज के साथ प्रर्याप्त प्रेम और उत्साह हो। ऐसा करने से वे चमारों को भी यह प्रणाली सिखा सकेंगे। अवश्य ही वे एक बात कर सकते हैं। इस तरह के मरे जानवरों को ठिकाने लगाने की एक प्रथा वे बना लें और इस बात का ध्यान रखें कि

चमारों को उससे यह निश्चय हो जाय कि इस काम से उनको उचित मजूरी मिलेगी ।

जिन व्यक्तियों के पास क्षमता और समय हो उनको चाहिए कि वे दिन और रात्रि की पाठशालाएँ चलावें, छुट्टियों के दिन हरिजनों के बालकों को गोठ, एवं प्रकृति के दृश्य दिखाने के लिए अपने साथ ले जायँ अथवा जब कभी कोई अवसर आवे हरिजनों के घर जाकर उनके पास उठें-बैठें और जहाँ आवश्यकता हो दवापानी की व्यवस्था भी करा दें। मतलब कहने का यह कि हरिजनों को आप से आप इस बात का अनुभव हो कि उनके जीवन का एक नया अध्याय आरंभ हुआ है और वे अब अपने को हिन्दू-समाज का उपेक्षित तथा हेय अंग न समझें।

विद्यार्थियों को कार्यक्षेत्र मे आगे आना चाहिए

ऊपर मैंने जिन-जिन कामों का उल्लेख किया है, छात्र-जगत् बड़ी आसानी और योग्यतापूर्वक उन सब का सम्पादन कर सकता है। यदि यह काम नीरव उत्साह, संकल्प और बुद्धिमानी के साथ अधिकाधिक स्त्री-पुरुषों द्वारा किया जाय तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि हम अपने लक्ष्य की ओर कहीं अधिक अग्रसर हो जायँगे और उस समय यह महसूस होगा कि जिन बातों का मैंने उल्लेख किया है उससे अधिक कई बातें अभी पड़ी हैं जिनकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है ।

यद्यपि जिन सवालों का जवाब देने की कोशिश मैं इस वक्तव्य में करूँगा, पूर्व वक्तव्यों में कम या अधिक उनका बहुत-कुछ उत्तर दिया जा चुका है फिर भी चूँकि लोग अब भी पत्रों में बराबर मुझसे पूछते हैं, मैं अधिक से अधिक ऐसे सवालों को एकत्र कर एक वक्तव्य में उनका उत्तर देना चाहता हूँ। एक ने पूछा है कि "क्या आप लोगों को उनकी इच्छा के खिलाफ़ काम करने को बाध्य नहीं कर रहे हैं?" कम से कम मेरा ऐसा इरादा नहीं है। इस उपवास के करने का उद्देश्य है कमजोर को दृढ़ बनाना, अकर्मण्यों को कर्मिष्ठ बनाना और अविश्वासियों में विश्वास पैदा करना। जो इस सुधार के विरोधी हैं, उनपर मेरे उपवास का कोई असर तो पड़ेगा ही नहीं बल्कि यदि इसका नाशक अन्त होगा तो वे अपने दृष्टिकोण से उसका स्वागत करेंगे। एक नाराज संवाददाता ने ठीक यही बात लम्बे-चौड़े शब्दों में लिखने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं की। एक दूसरे संवाददाता लिखते हैं—"आपके लिए तो यह कहना बहुत ठीक है कि आप ऐसा और वैसा करना नहीं चाहते। किन्तु ऐसे बहुत से कट्टरपन्थी हैं जो आपके जरूरत से ज्यादा उत्साही भक्तों की मार के भय से समष्टि का साथ पकड़ेंगे।" इस प्रकार के तर्क हमेशा पेश किये जा सकते हैं। मैंने अपने जीवन में बहुत से आन्दोलनों का नेतृत्व किया है, जिनमें कभी उपवास की आवश्यकता नहीं हुई, किन्तु जिस अभियोग का उत्तर मैं यहाँ पर दे रहा हूँ वह न जाने कितने बार मेरे खिलाफ मुझको मेरे इरादे से डिगाने के लिए लगाया जा चुका है। इस आनेवाले उपवास के अनभीष्ट परिणाम चाहे जो भी क्यों न हों, इज्जत का सवाल के होने के सिवा भी, यह

इसलिए भी अवश्य किया जाना चाहिए कि इससे जिन लाखों मनुष्यों का मुझमें विश्वास है वे उचित और अपने योग्य प्रयत्न करने के लिए विकल हो उठेंगे। प्रत्येक धार्मिक आन्दोलन का यही रूप होना चाहिए।

दूसरा सवाल है—"क्या आप हिन्दुओं के एक दल को दूसरे दल के विरुद्ध नहीं उभाड़ रहे हैं?" बड़े जोर के साथ कहूँगा, नहीं, कदापि नहीं। कोई भी सुधार क्यों न हो कुछ न कुछ विरोध का होना अनिवार्य है। किन्तु एक सीमा के भीतर समाज में विरोध और आन्दोलन का होना उन्नति का शुभ लक्षण है। सनातनियों और सुधारकों के बीच में स्थायी फूट होने का मुझे भय नहीं है। मुझसे कदापि यह सम्भव नहीं कि मैं सनातनी विरोध की उपेक्षा अथवा सनातनी भावना का अनादर करूँ। इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है कि उनमें से कुछ का विचार है कि सनातन धर्म खतरे में है फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि सनातनी और सुधारक के बीच में कम से कम सैद्धान्तिक क्षेत्र में बहुत ही सूक्ष्म मतभेद है।

मुझे जितने सनातनी पत्र मिले हैं क़रीब-क़रीब सब में इन बातों को स्वीकार किया गया है—

(१) हम मानते हैं कि हरिजनों की हालत सुधारने के लिए बहुत कुछ किये जाने की आवश्यता है।

(२) हम मानते हैं कि हरिजनों के साथ बहुत से उच्च हिन्दू ज्यादती करते हैं।

(३) हम स्वीकार करते हैं कि उनकी संतानों को शिक्षा मिलनी चाहिए। उनके रहने को अच्छे स्थान-मकान होने चाहिएँ।

(४) उनके स्नान और स्वयं पानी भरने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(५) उनको पूरे राजनीतिक अधिकार मिलने चाहिएँ ।

(६) पूजा के लिए काफ़ी सुविधाएँ मिलनी चाहिएँ ।

(७) वे सब नागरिक अधिकार मिलने चाहिएँ जो दूसरों को मिले हैं । किन्तु हमें उनको स्पर्श करने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए, खासकर जबतक वे अपनी वर्तमान अवस्था में हैं ।

तो मैं उनसे कहता हूँ कि जब आप यह स्वीकार करते हैं कि आपके साथ एक ही समान उनको रखने की आवश्यकता है तो आप दुःखी क्यों होते हैं ? यदि दूसरे उच्च हिन्दू आपसे एकदम आगे बढ़ जाँय और उन्हीं शास्त्रों के अनुसार जिन पर आप विश्वास करते हैं वे हरिजनों को अछूत न समझना तथा उनसे मिलकर रहना अपना कर्तव्य समझें तो आप लाल क्यों हो पड़ते हैं ? जिस तरह आप अपने काम करने की स्वतन्त्रता की रक्षा चाहते हैं और जोर-जबर्दस्ती की भावना का उचित प्रतिवाद करते हैं, इसी प्रकार निश्चय ही आप यह भी न चाहेंगे कि सुधारक लोग हरिजनों की दशा सुधारने की स्कीम को कार्यान्वित करने में डराये-धमकाये जाँय ।

धन की आवश्यकता

मैं एक उत्तमतर तरीका बताता हूँ ।

चूँकि हरिजनों की दशा सुधारने की आवश्यकता आप भी सुधारकों की तरह महसूस करते हैं पर आपने अभी तक अपने भावों को क्रियात्मक रूप नहीं दिया है इसलिए सुधारक जो धन एकत्र कर

रहे हैं उसमें मुक्तहस्त से दान दीजिए। और इन सुधारकों को ही अपना प्रतिनिधि मानकर सामान्य योजना में सहायता दीजिए और हिन्दू-धर्म सम्बन्धी उनकी व्याख्या का उतना ही आदर कीजिए जितना आप अपनी व्याख्या का उनसे कराना चाहते हैं।

अबतक हरिजनों के साथ संसर्ग रखनेवाले सुधारक के कार्य पर आपने व्यावहारिक रूप से कोई अड़चन नहीं डाली। आपने उसको अपने रास्ते जाने दिया है। आपने उसका बहिष्कार नहीं किया। इसलिए अब आपके विरोध में, केवल इसलिए कि आंदोलन अब पहले से अधिक सक्रिय और व्यापक हो गया है कोई तत्व की बात नहीं है।

मन्दिरों का उपयोग

एक कठिनाई फिर भी रास्ते में खड़ी है। उन सार्वजनिक मन्दिरों और सार्वजनिक स्थानों तथा संस्थाओं का उपयोग कौन करे, जिनसे इस समय हरिजन वञ्चित रहते हैं? सनातनी उनका उपयोग करें या हरिजनों के साथ सुधारक। यदि प्रत्येक दल क्रोध और पारस्परिक असम्मान की भावना की तिलांजलि दे दे, तो इस कठिनाई के पार करने का बड़ा सरल और सुगम उपाय है। गाँव-गाँव और शहर-शहर में आसानी के साथ इस प्रश्न पर लोकमत संग्रह किया जा कता है और जिस दल के पक्ष में बहुमत हो वही मन्दिरों-सहित सार्वजनिक स्थानों, का व्यवहार करे। यदि सनातनियों का बहुमत हो तो सुधारकों और हरिजनों के लिए समान सार्वजनिक सुविधाओं के निर्माण के व्यय में वे भी सुधारकों के साथ अपना हिस्सा अदा करें।

मैं सुधारकों को हरिजनों के साथ रखता हूँ क्योंकि यदि वे अपने नमक और धारणाओं के सच्चे होंगे तो समय की प्रगति के साथ वे भी अपना यह कर्त्तव्य समझने लगेंगे कि जिन सार्वजनिक स्थानों के।व्यवहार का अधिकार हरिजनों को नहीं है उसका वे भी कदापि व्यवहार न करें।

इस प्रकार विचार करने पर सनातनियों को समान स्थान बनाने का खर्चा उन्हें उठाना चाहिए इस बात में अन्याय मालूम होगा क्योंकि सनातनी इस बात से सहमत हैं कि हरिजन भी उन सब सार्वजनिक स्थानों के अधिकारी हैं जिनका वे व्यवहार करते हैं और हरिजन अब तक वंचित रखे गये हैं। सनातनियों को अपने आप ही कोई कल्पित चित्र अपने मन में बैठाकर उसके पीछे न भागना चाहिए।

उनको साफ-साफ मालूम हो जाना चाहिए कि यरवदा पैक्ट और अस्पृश्यता निवारण संघ के अनुसार, अस्पृश्यता-निवारण का कार्य, जो कुछ मैंने कहा है, उससे कुछ अधिक नहीं है। इसमें अंतर्जातीय भोज और विवाह शामिल नहीं हैं। यह सोचकर सनातनियों को घबराना न चाहिए कि बहुत से हिन्दू, जिसमें एक मैं भी हूँ, बहुत आगे निकल जायँगे। उनको किसी के व्यक्तिगत विचार और व्यक्तिगत कार्य पर माथापच्चा करने की जरूरत नहीं। यदि जिसे वे मानते हैं, उसपर उनको गहरा विश्वास है तो जो कुछ भविष्य में होनेवाला है उसकी चिन्ता कर घबराने का कोई कारण नहीं।

यदि किसी खास सुधार में इतनी अन्तःस्फूर्ति है और यदि वह समय की पुकार के अनुसार आया है तो कोई सांसारिक शक्ति उसकी प्रगति को रोक नहीं सकती।

क्या राजनीति पर इसका आघात न पहुँचेगा ?

तीसरा प्रश्न यह है कि "क्या आप सामाजिक एवं धार्मिक प्रश्नों पर सर्वसाधारण के ऊपर जबरदस्ती अपने विचारों को मढ़कर राजनैतिक स्वतन्त्रता के मार्ग में बाधा नहीं पहुँचा रहे हैं ?" मैं इस सवाल का जवाब बिना उस सीमा का उल्लङ्घन किये नहीं दे सकता जो मेरे लिए एक कैदी की भांति बांध दी गई हैं और वह सीमा सिर्फ अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन सञ्चालन की ही है। किन्तु इतना मैं कह सकता हूँ कि जो मुझे तनिक भी पहचानते हैं उनको जानना चाहिए कि मैं राजनैत्तिक, सामाजिक, धार्मिक और अन्य प्रश्नों के बीच में कोई गहरी लकीर नहीं खींचता। सदैव मैंने इन सबको एक दूसरे का आधार धेय समझा है और एक का हल हो जाने ही से दूसरों का हल नजदीक आ जाता है।"

यरवदा सेण्ट्रल जेल
१६-११-३२

मोहनदास करमचंद गाँधी

"बहुत से संवाददाताओं ने मुझ से पूछा है—'आप कहते हैं कि मैं शास्त्रों पर विश्वास करता हूँ। हमारी समझ में नहीं आता, इसके क्या मतलब हैं? क्योंकि आप बहुत-सी ऐसी बातें नहीं मानते जिनका शास्त्र समर्थन करते हैं। गीता भी, जिसकी आप दुहाई देते हैं, शास्त्रों को मानकर चलने का आदेश देता है।"

मैं यहाँ फिर वही दोहराता हूँ जिसे पिछले किसी वक्तव्य में कह चुका हूँ कि जो गीता के प्रधान विषय के अनुकूल नहीं है, वह चाहे जो कुछ हो, शास्त्र नहीं है, चाहे वह जहाँ भी छपा हुआ क्यों न मिलता हो। मैं अपने कट्टरपन्थी मित्रों का दिल तो नहीं दुखाना चाहता किन्तु अपना उद्देश और अधिक स्पष्ट करना चाहता हूँ। मैं ऐसी किसी चीज को शास्त्रों की सत्ता कह कर नहीं मानता जो नैतिकता के विश्वमान्य प्रारंभिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल हो। ये शास्त्र उन आरंभिक सिद्धान्तों का उल्लंघन नहीं, वरन पोषण करने के लिए हैं और मेरे लिए अकेली गीता ही पर्याप्त है क्योंकि उसमें न केवल आरंभिक नैतिक सिद्धान्तों की पुष्टि ही मिलती है वरन् सर्वस्व अर्पण करके भी उनको मानकर चलने के लिए आपके सामने वह पुष्ट प्रमाण और तर्क उपस्थित करती है। यदि यह स्वर्ण नियम न होता, जिसकी चर्चा मैंने की है, तो शास्त्रों और स्मृतियों के परस्पर-विरोधी साहित्य के जङ्गल और सुन्दर छपी तथा बंधी संस्कृत पुस्तकों के ढेरों में मेरी तरह के

साधारण व्यक्तियों को भटकना पड़ता। इनमें प्रत्येक को प्रतिद्वंद्वी पण्डित ईश्वरीय प्रमाण मानते हैं। कितनी ही स्मृतियाँ हैं, जिनको एक सीमित क्षेत्र के बाहर कोई जानता भी नहीं और उस सीमित क्षेत्र में सौ आदमियों के द्वारा वे पूजी जाती हैं। कोई उनकी उत्पत्ति अथवा रचनाकाल नहीं बता सकता। इस प्रकार की एक जिल्द मुझे दक्षिण भारत में देखने को मिली। मैंने विद्वान दोस्तों से उसके सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने कहा वे इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते।

"बहुत से ऐसे आगम हैं, जो जाँच करने पर एक दूसरे का खण्डन करते पाये जाते हैं और उनका मान्य प्रभाव सिवाय थोड़े से परिमित स्थान के और कहीं नहीं। यदि ये सब ग्रन्थ हिन्दुओं के लिए मान्य मान लिये जायँ तो शायद ही कोई ऐसा अनैतिक रिवाज होगा जिसका समर्थन उनमें न मिले। यहाँ तक कि मनुस्मृति में भी, यदि उससे सन्दिग्ध सूत्र निकाल न दिये जाँय, तो ऐसे स्थल मिलेंगे जो उसमें उपदिष्ट उच्च आदेशों तथा नीति के ऊपर पानी फेर देते हैं।

"इसलिए भगवद्गीता में केवल एक बार आये हुए 'शास्त्र' शब्द के जो अर्थ मैंने लगाये हैं वह कोई पुस्तक या ऐसे नियमों का संग्रह नहीं है जो गीता से बाहर के हों। इसका अर्थ एक जीवित प्रमाण में प्रकट होने वाला शुद्ध एवं सत्य व्यवहार है। मैं जानता हूँ कि आलोचकों को इससे संतोष न होगा और एक साधारण व्यक्ति की हैसियत से मैं किसी का पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकता। किन्तु मैं अपने आलोचकों की उत्सुकता, यह बताकर कि मैं शास्त्र से क्या समझता हूँ, दूर कर सकता हूँ।

"दूसरा प्रश्न, जो पूछा गया है, यह है—"आपके ईश्वरीय पथ-प्रदर्शन या अंतरात्मा की पुकार से आपका क्या तात्पर्य है और यदि प्रत्येक व्यक्ति इसी तरह का दावा करने लग जाय और वह अपने पड़ोसी से बिलकुल भिन्न प्रकार का आचरण करने लग जाय तो आपका और दुनिया का क्या हाल होगा ?"

"यह बड़ा सुन्दर प्रश्न है और यदि ईश्वरीय सत्ता अपने आत्मसंरक्षण की कोई व्यवस्था न करती तो हमें रोज ही यही सुनने को मिलता। इसलिए दावा तो सब कर सकते हैं किंतु बहुत ही थोड़े लोग अपने दावे को प्रमाणित कर सकते हैं। कोई व्यक्ति यदि झूठ-मूठ यह दावा करे कि वह ईश्वरीय आदेश के अनुसार कार्य कर रहा है अथवा अपनी अन्तर्ध्वनि का आदेश बजा रहा है तो उसकी दुर्गति उससे भी कहीं अधिक भयङ्कर होगी जो इस बात का झूठा दावा करता है कि वह किसी राजकीय सत्ता के आदेशानुसार काम कर रहा है और दर असल उसका सम्बन्ध राजसत्ता से कुछ भी नहीं है। वह राज-सत्ताधारी छद्मवेशी तो भेद खुल जाने पर केवल शारीरिक दण्ड सहकर ही निस्तार पा जाता है, किन्तु ईश्वरीय सत्ता की झूठी दुहाई देनेवाले के शरीर और आत्मा दोनों का विनाश हो जायगा। उदार आलोचक मेरे ऊपर फ़रेब का आरोप तो नहीं करते किन्तु कहते हैं कि सम्भव है है मैं महान् भ्रम और माया के वश होकर काम करता होऊँ। इसका परिणाम भी मेरे लिए झूठा दावा करने से भिन्न न होगा। इसलिए मेरे लिए, जो एक विनम्र सत्यान्वेषी होने का दावा करता है, अत्यन्त सावधान होकर रहने और मन की अवस्था के मानदण्ड को बिलकुल ठीक रखने की आवश्यकता है। जो ईश्वर के सामने अपना

अस्तित्व शून्य में मिला देगा, ईश्वर उसी का पथ-प्रदर्शन करेगा।

मैंने जो दावा किया है वह न तो असाधारण है और न निराला ही है। जो अकपट भाव से ईश्वर के सामने आत्म-समर्पण कर देंगे ईश्वर उनके जीवन को स्वयं नियन्त्रित करेगा। गीता के शब्दों में ईश्वर उनके द्वारा अपना काम करता है जो उसी में मिल गये हैं। यहाँ माया का प्रश्न ही नहीं है। मैंने बिलकुल वैज्ञानिक सत्य कहा है जिसकी सत्यता की सब परीक्षा कर सकते हैं। जिसमें संकल्प है वह इसकी प्राप्ति भी बहुत सरलता से कर सकता है।

अंत में मैं यह कह देना चाहता हूँ कि किसी को मेरे दावे के लिए व्यग्र होने की आवश्यकता नहीं है। जो कुछ लोगों से करने के लिए कहता हूँ वह तर्क और बुद्धि से प्रमाणित किया जा सकता है। मेरे सामने से हट जाने पर भी अस्पृश्यता को तो दूर-हटाना ही पड़ेगा। मेरा उपवास ईश्वरीय आदेशानुसार है या नहीं इसके लिए चिंता करके व्यर्थ परेशानी मोल लेने की जरूरत नहीं, मेरे अन्तरंग साथियों को भी चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। उनको मेरे स्नेह के कारण और दूने उत्साह एवं शक्ति से इस ओर काम करना चाहिए। यदि यह मालूम हो कि उपवास एक मित्र की इच्छाकृत बेवकूफी का काम था तो भी शोक की कोई बात नहीं। जिनको मुझसे न स्नेह है न मुझपर विश्वास है वे इससे अविचलित न होंगे। इसलिए मेरे उपवास के ऊपर ही निरंतर राग अलापते रहने से सर्वसाधारण का मन विकृत होगा और राष्ट्र के सामने जो महान् कार्य है उसभी ओर से ध्यान बंट जायगा इसलिए मैं यह वक्तव्य—पाठकों का ध्यान कुछ चित्रों की

ओर आकर्षित कर जो मुझे मेरे बहुसंख्यक पत्र-लेखकों से प्राप्त हुए हैं,—समाप्त कर दूँगा। बम्बई के उपनगर विलेपार्ले के एक सम्पन्न हिन्दू-द्वारा चित्रित एक दृश्य है। इस उपनगर में १७ सौ घर हैं। म्युनिसिपालिटी की ७० हजार की आमदनी है, जिसमें ३१ हजार रुपये सफ़ाई आदि में ख़र्च कर दिये जाते हैं। भंगी ऐसे कार्टरों में रखे जाते हैं जहाँ न सड़क है, न पानी का कोई बन्दोबस्त है। जमीन नीची है। पाखानों के काम में लाई हुई पुरानी जर्जर टीनों से ही उनके घर बने हैं। रोशनी का भी कोई प्रबन्ध नहीं है। आसपास बड़ी गन्दगी है। कूड़ा डालने का स्थान भी उसी जगह है। ऐसी गन्दी जगह में भंगियों को रहना पड़ता है। इन बस्तियों के आस-पास खेत हैं, जो प्रायः पानी के के नीचे रहते हैं। मच्छड़, मस भरे रहते हैं। सांप और बिछुओं की भरमार है। ३१ परिवार इस अवस्था में रहते हैं। इन परिवारों में ३५ पुरुष २५ स्त्रियाँ ३४ लड़के और १५ लड़कियाँ हैं। इन में केवल ९ बालक बड़ी कठिनाई से पढ़-लिख सकते हैं। बाक़ी सब बिलकुल निरक्षर हैं।

यदि इस उपनगर के रहनेवाले इच्छा करते तो अपने इन पड़ोसियों के रहने का सुन्दर बंदोबस्त कर दे सकते थे। पानी, रोशनी हवा आदि का प्रबन्ध कर देते और वे सारी सुविधायें उनको मिलतीं जो शहरों में हुआ करती हैं। यहाँ सनातनी और सुधारक दोनों के काम करने की जरूरत है। मेरे अभियोग का यह जवाब नहीं है कि विलेपार्ले की म्यूनिसिपाल्टी की सिर्फ ७० हजार की आय है जिसमें ३१ हजार वह सफ़ाई में ख़र्च कर देती है। मैं जानता हूँ कि विलेपार्ले के रहने वाले इतने सम्पन्न हैं कि वे

समाज के इन काम के आदमियों के लिए अपने ऊपर बड़े मजे से टैक्स लगा सकते हैं। किन्तु इसमें देर लगेगी। हिन्दू-निवासियों का यह कर्त्तव्य है कि रातोंरात काफी फण्ड इकट्ठा करें और भंगियों के रहने के लिए घरों तथा अन्य आवश्यकताओं का उचित प्रबन्ध कर दें। इतना कर लेने पर अतिरिक्त सालाना व्यय के लिए म्यूनिसिपाल्टी से कहना न्यायसङ्गत होता है, जो उसे उठाना ही पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार के एक रोमांचकारी दृश्य का वर्णन मि० ए० वी० ठक्कर ने किया है। उन्होंने बिहार में दानापुर के आस-पास की इस तरह की बस्तियों का जो चित्र खींचा है वास्तव में वह भयावह है। क्या ही अच्छा होता कि अस्पृश्यता के लिए शास्त्रों में क्या लिखा है और क्या नहीं है, इस सम्बन्ध के बे-मतलब के वाद-विवाद में न पड़कर हममें से प्रत्येक व्यक्ति इन 'अछूतों' की दयनीय दशा सुधारने में अपने को लगा दे।

मन्दिर-प्रवेश-सत्याग्रह *

पिछले सप्ताह जब कि कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक हो रही थी, मुझे केरल के प्रतिनिधियों तथा अन्य कांग्रेस कार्य-कर्त्ताओं से मन्दिर-प्रवेश-सत्याग्रह के सम्बन्ध में कई बार बात-चीत करनी पड़ी। इन लोगों के विवरण को ठीक करके प्रश्नोत्तर के रूप में देने की अपेक्षा मैं उन के प्रश्नों का जो उत्तर उपयुक्त समझता हूँ, वह नीचे दे रहा हूँ। उत्तर इस ढंग से लिखा गया है कि उससे प्रश्नों का दिया जाना अनावश्यक हो जाता है।

१—यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि यद्यपि अस्पृश्यता-निवारण के प्रश्न की राजनैतिक गुरुता सर्वतोधिक महत्व-पूर्ण है किन्तु निर्विवाद रूप से और मुख्यतः यह हिन्दुओं के हल करने का, एक धार्मिक प्रश्न है और इस प्रकार यह उनके लिए इसके राजनैतिक स्वरूप को गौण कर देता है। मतलब यह है कि सवर्ण हिन्दुओं के अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी कर्तव्य को किसी भी हालत में किसी राजनैतिक आवश्यकता के मातहत नहीं किया जा सकता, फलतः अस्पृश्यता का अन्त करने के लिए होनेवाले प्रयत्न वर्तमान राजनैतिक स्थिति के कारण कदापि स्थगित न होने दिये जाने चाहिए।

---

* यह लेख गाँधीजी ने, इस वर्ष के आरम्भ में ही, अपनी गिरफ्तारी से पूर्व, ऐसे समय में लिखा था, जब कि कार्य-समिति की बैठकों के कारण उन पर कार्य का बहुत बोझ था और उनकी गिरफ्तारी की प्रतिक्षण सम्भावना बनी रहती थी।

२—एक धार्मिक और नैतिक कार्य में सुधारक को सब प्रकार के परिणामों का मुक़ाबला करना और विशिष्ट वर्ग की सहानुभूति को अस्थायी रूप से गवाँ बैठने का ख़तरा तक उठाना पड़ता है। इसलिए जो लोग यह विश्वास करते हैं कि अस्पृश्यता एक ऐसा अभिशाप है जिसको जिस तरह भी सम्भव हो दूर किया जाना आवश्यक है, वे इस भय से कि इस कार्य को करते हुए वे नगण्य अल्पमत में हो जायँगे, अपने प्रयत्न को न रोकेंगे।

३—यदि मन्दिरों में अछूतों का प्रवेश आरम्भ हो जाने से वर्तमान पुजारी लोग हड़ताल कर दें और आवश्यक पूजा आदि करना छोड़ दें, तो उनकी जगह तुरन्त ही दूसरे पुजारी नियुक्त कर दिये जाने चाहिएँ और अब तक जिस जाति के लोग पुजारी होते आये हैं, वह जाति यदि नये पुजारी देने से इनकार कर दे, तो मुझे दूसरी जाति वाले को भी पुजारी बना देने में ज़रा भी सङ्कोच न होगा, बशर्ते कि उस में आवश्यक योग्यता और धार्मिक विश्वास हो। हक़ीक़त यह है कि जहाँ तक मुझे पता है, इस कार्य पर, पुजारी लोग अपनी आजीविका के लिए इतने निर्भर हैं कि वे अधिक समय तक हड़ताल जारी रख ही नहीं सकेंगे। पूजा करने का अधिकार पुश्तैनी है, इस बात का भी मेरी उक्त राय पर कोई असर नहीं होता, क्योंकि यदि इस प्रकार के अधिकार का अधिकारी किसी भी कारण से अपने अधिकार का उपयोग करने से इनकार करता है, तो इसका परिणाम स्वयं उसी को भुगतना चाहिए।

४—यदि मन्दिर के अधिकारी मन्दिर का कोई एक कोना अछूतों के लिए खुला कर देने की बात कहें तो वह पर्याप्त न समझना

चाहिए। ऐसी कोई भी रुकावट जो किसी अन्य सवर्ण हिन्दू के के लिए नहीं है, अछूतों के लिए बर्दाश्त नहीं की जा सकती। हाँ, जो लोग अछूतों के साथ नहीं मिलना चाहते, उनके लिए एक कोना अलग किया जा सकता है। उस हालत में ये लोग अपनी इच्छा से अछूत बन जायँगे।

५—हमें बाढ़ या प्राचीर को जबर्दस्ती तोड़ना या लांघना नहीं चाहिए। यह एक प्रकार की हिंसा होगी, और यह कहना काफ़ी न होगा कि बाढ़ या प्राचीर निर्जीव वस्तुएँ हैं, क्योंकि जिन हाथों ने ये बाढ़ लगाई हैं, वे सजीव हैं।

६—उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट होगा, कि मन्दिर-प्रवेश-सत्याग्रह करने से पहिले सत्याग्रह करने वाले का मन्दिरों में विश्वास होने की शर्त आवश्यक है। मन्दिर-प्रवेश एक धार्मिक अधिकार है। इसलिए किसी अन्य व्यक्ति का मन्दिर-प्रवेश करना सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता। वाइकम सत्याग्रह के समय जब श्री जार्ज जोसफ़ सत्याग्रह कर के जेल गये, तो मैंने उन्हें कहलाया कि वे ग़लती पर हैं। वे मेरी इस राय से सहमत हुए, और इसलिए तुरन्त ही माफ़ी माँग ली और जेल से बाहर आ गये। मन्दिर-प्रवेश-सत्याग्रह स्पृश्य अर्थात् उच्च जाति के कहाने वाले हिन्दुओं के लिए प्रायश्चित्त है। पाप करने वाले वे हैं, और इसलिए उन्हें अपने इन अछूत सहधर्मियों को मन्दिर में साथ जाकर दण्ड आमन्त्रित कर प्रायश्चित्त करना चाहिए। इसलिए ग़ैर-हिन्दू सत्याग्रह को छोड़ कर दूसरे तरीक़ों से मदद कर सकते हैं। उदाहरणार्थ गुरुद्वारा आन्दोलन के समय जब कि अन्य जातियों ने विभिन्न रूप से सिखों की सहायता की, सत्याग्रह

केवल उन सिखों ने ही किया,—वे ही कर सकते थे, जिनका कि अखण्डपाठ में विश्वास था।

मेरी राय में अकेले अछूतों को ही सत्याग्रह नहीं करना चाहिए। स्पृश्य अर्थात् उच्च जाति के हिन्दू सुधारकों को उस का नेतृत्व करना चाहिए। ऐसा समय आ सकता है, जब कि स्वयं अस्पृश्य अर्थात् अछूत ही सत्याग्रह करें। इस सब का अभिप्राय यह है कि पेश्तर इसके कि सत्याग्रह आरम्भ किया जाय, स्पृश्य हिन्दुओं में लोकमत काफ़ी सजग और सक्रिय हो जाना चाहिए। यह वह हथियार है जिस में प्रयोग की सफलता लोकमत के संग्रह पर निर्भर करती है। इसलिए इसके प्रयोग के पहले सब प्रकट कर उपायों का अवलम्बन कर लिया जाना नितान्त आवश्यक है।

७—किसी भी सर्वथा प्राइवेट जायदाद के मन्दिर में प्रवेश की मांग नहीं की जा सकती। किन्तु जब कोई व्यक्ति किसी प्राइवेट जायदाद पर बने हुए मन्दिर के लिए, सर्वसाधारण को तो खुले प्रयोग की आम इजाज़त दे देता है, किन्तु अकेले अछूतों के लिए प्रतिबन्ध लगा देता है तो वह मन्दिर प्राइवेट नहीं रह जाता।

८—यह सुझाया गया था कि सत्याग्रह-द्वारा मन्दिर-प्रवेश करना सर्वथा बन्द कर दिया जाय और क़ानून बना कर इस अधिकार को प्राप्त किया जाय। मैं इस विचार से सर्वथा असहमत हूँ। आमतौर पर और प्रतिनिधि-शासन में तो निश्चित रूप से, लोकमत बनने के बाद क़ानून बनता है और लोकमत बनाने के लिए वास्तविक और उचित रूप से संचालित सत्याग्रह से बढ़ कर और कोई त्वरित उपाय मैं नहीं जानता।